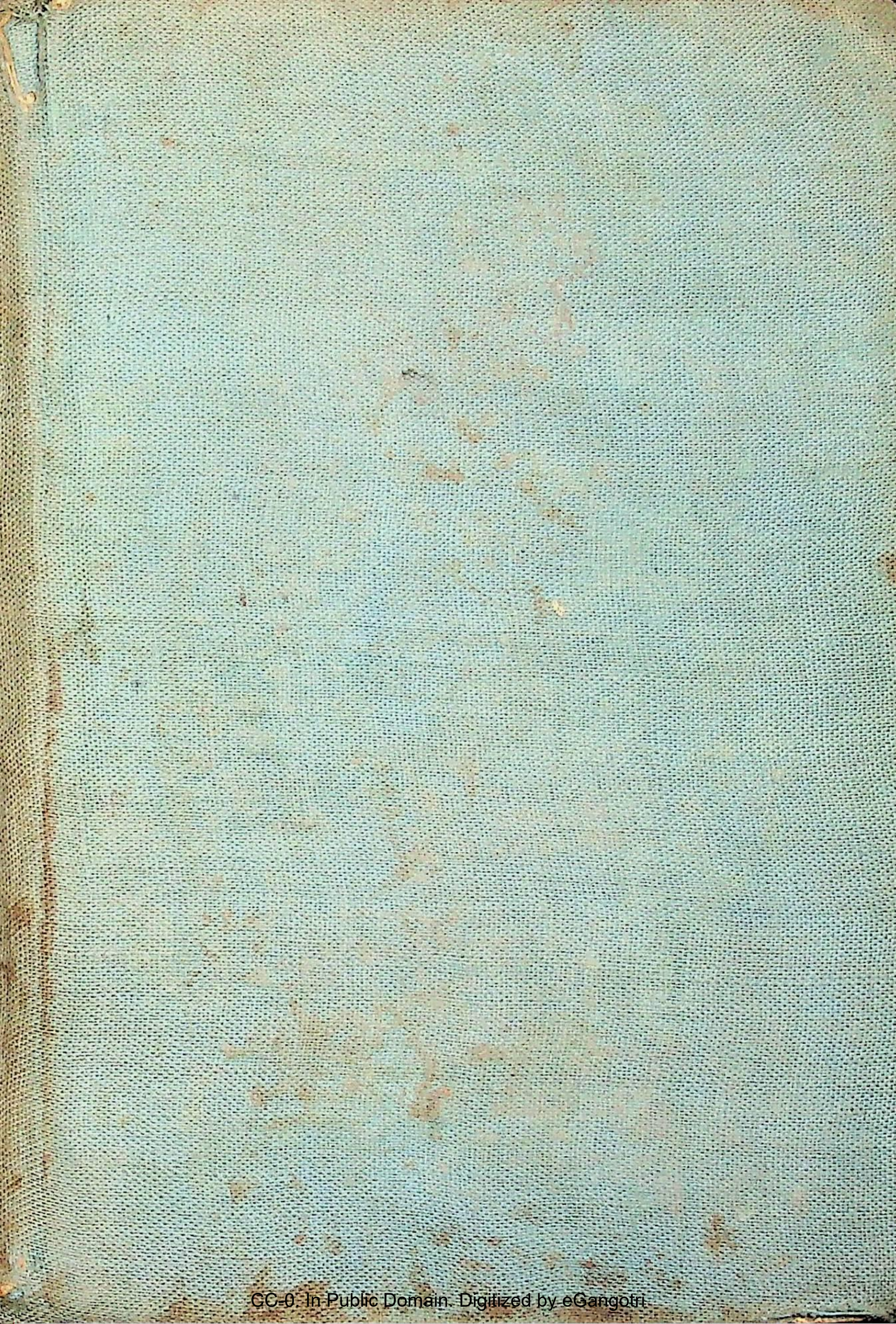


ABOUT THIS BOOK

This book is not Kam Vigian but Superstitions in Sex but for Research purpose it is good book. The writer has hard worked ~~[illegible]~~ for its compilation.

[illegible]

काम-विज्ञान
Kam-vigian

समर्पण

Shine Shankar

भारतके उन नवयुवकोंको,
जो इसके वास्तविक
अधिकारी हैं—
सादर समर्पित।

SUPERSTITIONS IN SEX.



इस ग्रन्थकर्त्ताकी अन्यान्य पुस्तकें

हिन्दी

सती मदालसा

भारतका धार्मिक इतिहास

भारतके महापुरुष १ ला भाग

भारतके महापुरुष २ रा भाग

दाम्पत्य-विज्ञान

जनन-विज्ञान

काम-विज्ञान

तरकारीकी खेती

कृषि-शिक्षा

गुजराती

श्रीकृष्ण (जीवनी)

सती सुशीला (उपन्यास)

राजलक्ष्मी (उपन्यास)

विषय सूची

Please Note
The author of this book is foolish ...
B. D. Gupta

भूमिका

वही साहित्य-वाटिका हरी भरी है, जिसमें नाना प्रकारके रङ्ग-विरङ्गी ग्रन्थ-कुसुमोंके वृक्ष लहलहा रहे हैं और वही साहित्य-उद्यान हमेशा फलता फूलता रहता है, जिसके सुरुचि पूर्ण माली, सदा उसमें नये नये ग्रन्थ-वृक्षोंकी योजना किया करते हैं। हिन्दी-साहित्य इस समय अग्रसर हो रहा है। उसके सुदक्ष शिल्पी, उसे हर तरहसे सजानेकी चेष्टा कर रहे हैं और भिन्न भिन्न विषय, नये नये ढङ्ग, नवीन बातें, अभिनव प्रणाली और नूतन आविष्कारोंसे उसे अलंकृत करनेकी चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे समय इस "काम-विज्ञान" का प्रकाशित होना भी हमारी इस धारणाको पुष्ट करता है, कि हिन्दीमें कुछ ही दिनोंके भीतर, अन्यान्य उन्नत साहित्योंकी भांति ही, सब प्रकारके और सभी विषयोंके ग्रन्थ मिलने लगेंगे और इसके मननशील पाठकोंके लिये कोई भी विषय बाकी न रह जायगा।

प्रस्तुत ग्रन्थमें यद्यपि कुछ अन्य पुस्तकोंसे भी सहारा

लिया गया मालूम होता है, तथापि प्रधानता महर्षि वात्स्यायनके "कामसूत्रम्" की ही है। महर्षि वात्स्यायन कितने बड़े कर्मठ, अध्ययन-शील, प्रतिभाशाली और मननपर व्यक्ति थे, इसका अनुमान एक इसी बातसे लग जाता है, कि उन्होंने जिस विषय पर अपनी लेखनी उठाई है, और जो कोई ग्रन्थ भी लिखा है, उसे ही सर्वाङ्ग पूर्ण और अद्वितीय बनानेमें कोई कोर कसर बाकी नहीं रक्खी। चाणक्यके नामसे नीति-शास्त्र, विष्णुशर्माके नामसे शब्द-शास्त्र, कौटिल्यके नामसे अर्थ-शास्त्र और अन्तमें वात्स्यायनके नामसे यह "कामसूत्रम्" रच कर, अपने जिस प्रगाढ़ पाण्डित्यका उन्होंने परिचय दिया है, वह जगतमें आदरणीय, अनुकरणीय तथा श्लाघनीय है। राजनीतिके मैदानमें जिस तरह चाणक्य बड़े बड़े दुर्द्धर्ष कूटनीतिज्ञोंकी टक्कर लेनेमें अपना सानी नहीं रखते, उसी तरह समाज-नीति और इस काम-कलाके सम्बन्धमें भी अपना जोड़ा नहीं रखते। अतएव, यह कहना ही पड़ता है, कि जिस तरह देव-गुरु वृहस्पतिने अर्थ मीमांसा, महर्षि जैमिनीने धर्म-मीमांसा और वादरायण (महर्षि वेदव्यास) ने उत्तर मीमांसाका प्रणयन कर जन साधारणको धर्म, अर्थ, और मोक्षका पथ दिखा दिया है, उसी तरह वात्स्यायनने काम-मीमांसा या

भूमिका।

कामसूत्रम् रच कर लोगोंकी संसार-यात्राका पथ भी अच्छी तरह परिष्कृत कर दिया है। जन साधारण इससे लाभ उठावें या इसका दुरुपयोग करें—यह बात ही अलग है। इसके सम्बन्धमें भी कामसूत्रके टीकाकार यशोधरेन्द्रने स्पष्ट लिखा है :—"यद्यपि कामशास्त्र विदांकेषाञ्चिद् व्यवहारा कौशलम् तत्त्वषामेव दोषः, न शास्त्रस्य।" अर्थात् कितने ही काम शास्त्रका ज्ञान रखने पर भी उसका ठीक ठीक उपयोग नहीं करते, यह उनका दोष है, न कि शास्त्रका।

इसमें सन्देह नहीं, कि वात्स्यायन अपने इस कार्यमें खूब सफल हुए हैं। इधर अँगरेजीमें इस सम्बन्धकी बहुत सी पुस्तकें निकली हैं। डा० मेरी स्टोप्स, और हैवलक इलिस वगैरहने इस विषय पर अपने बहुत तरहके विचार प्रकट किये हैं। कावेनने भी अपनी पुस्तक The science of a new life में बहुत सी बातें कहीं हैं, परन्तु वे सभी अपूर्ण अथच अव्यवहारिक रूपमें दिखाई देती हैं। Memoirs of Jaques Casanova नामकी एक पुस्तक :बारह :भागोंमें और भी प्रकाशित हुई है, परन्तु कामसूत्रके टक्करमें कोई भी नहीं पहुंच सकी। इसका प्रधान कारण यही मालूम होता है, कि इन लेखकोंने व्यवहारिक दृष्टिसे इस पर विचार नहीं किया है। सच

बात तो यह है, कि वात्स्यायनने इसे शास्त्रका रूप दे दिया है। इसी वजहसे उन्होंने इसका कोई भी अंग विचार किये बिना नहीं छोड़ा। वे कहते हैं, कि पुरुषोंको तीन बातोंकी आवश्यकता है—धर्म, अर्थ और काम। उनमें धर्म सबसे अच्छा है, अर्थ और काममें—अर्थ अच्छा है, परन्तु काम भी छोड़ा नहीं जा सकता, "कामश्च यौवने।" (२ अ० सूत्र ३,) यौवनमें कामका सेवन करना ही पड़ेगा। बिना इसके न तो सृष्टिकी रक्षा हो सकती है और न काम चल सकता है। इसके अलावा बाल्य और वार्द्धक्यमें अर्थ और धर्मका सेवनकर, संसार-यात्राका निर्वाह करने बाद आनन्दसे इस संसार-सागरको मनुष्य पार कर सकता है। इतना ही नहीं, वे यह भी कहते हैं, कि यदि यौवनमें भी धर्मके साथ साथ काम सेवन किया जाय, तो दोमेंसे किसीमें भी बाधा नहीं पड़ती और यही कारण है, कि उन्होंने अपने कामसूत्रमें हर जगह कामकी ज्यादती की बुराइयाँ और दोष :दिखाये हैं और हमेशा सावधान रहनेकी सलाह दी है। कामसूत्रमें काम सम्बन्धी विषयों पर विचार करने पर भी, उन्होंने धर्म और अर्थको कहीं त्याग नहीं दिया है। उनके मतानुसार जिस तरह मानव प्रकृति कामकी ओर झुकती है, उसी तरह उसे धर्म और अर्थकी

ओर भी झुकाए रहना चाहिये, क्योंकि गार्हस्थ्य धर्मके पालनके लिये, इन तीनोंका एकत्र रहना बहुत ही जरूरी है। उपसंहार भागमें तो वे स्पष्ट कहते हैं कि :—

धर्ममर्थं च कामं च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यत्येतस्य तत्वज्ञो न च रागान् प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥

अर्थात् इस शास्त्रका स्वरूप अच्छी तरह समझनेवाला धर्म, अर्थ, काम और लोगोंके विश्वास पर दृष्टि रखकर काम करेगा, रागके वश होकर नहीं और इसी कारणसे :—

रक्षन् धर्मार्थ कामानां स्थितिं स्वां लोकवर्त्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः ॥ २७ ॥

इस शास्त्रका तत्वज्ञ धर्म, अर्थ और काम तथा लोगोंकी रुचिको रक्षा करता हुआ, जितेन्द्रिय ही रहता है।

कुछ भी हो, वात्स्यायनकी वजहसे आज हमें कई ऐसी चीजें साहित्यमें प्राप्त हो रही हैं, जो इस कामसूत्रके न रहने पर सुनने भरके लिये ही रह जातीं। उनमें चौसठ कलाएँ भी एक सामग्री है। वात्स्यायन कहते हैं, कि इन चौसठ कलाओंके जानने पर, जिस तरह धनागमकी राह खुल जाती है उसी तरह धर्मका पथ भी :कण्टक-हीन हो जाता है। साथ ही परिणय-सूत्रके दृढ़ होनेमें भी बहुत कुछ सहायता प्राप्त होती है। इसी तरह पति-पत्नीके कर्त्तव्य

और सम्बन्धका जो रहस्य उन्होंने "भार्याधिकरण"में बताया है, वह किसी दूसरे ग्रन्थमें प्राप्त नहीं होता। यह तो ऐसा विषय है, कि हर एक स्त्रीको कण्ठ करा देना चाहिये। "पारदारिक" अधिकरण भी एक अद्‌भुत वस्तु है, जिसे पढ़ने बाद स्त्रियां दुराचारियों और लम्पटोंकी सब चालें समझ कर अपनी रक्षा कर सकती हैं। गृहस्थ गृहिणियोंके लिये यह अध्याय एक रक्षा-कवच हो रहा है। इस तरह-की कितनी ही ऐसी अनुपम बातें और उपदेशप्रद रहस्य इस पुस्तकमें मिलते हैं, कि वात्स्यायनकी दूरदर्शिता, नीतिमत्ता तथा अध्ययन शीलता देखकर चकित, विस्मित और अचम्भित हो जाना पड़ता है।

यद्यपि इस "कामसूत्रम्"के पहले इस विषयके और भी अनेकानेक ग्रन्थ संस्कृत साहित्यकी शोभा बढ़ा रहे थे, परन्तु अब उनका पता भी नहीं है। कामशास्त्रके सबसे पहले शास्त्रकार थे महादेवके अनुचर नन्दी। उन्होंने वेदोंसे इसका संकलन किया था। उनके बाद उद्दालकि-श्वेतकेतु। वे भी एक ब्रह्मवेत्ता महर्षि थे। इनकी प्रतिभाका परिचय छान्दोग्य उपनिषद् और महाभारतमें अच्छी तरह मिलता है। इनके बाद बाभ्रव्यने इस विषयपर लेखनी उठायी। ये भी एक मन्त्रद्रष्टा ऋषि—संहिता-प्रणयन

करनेवाले थे। इसके बाद चारायण, सुवर्णनाभ, घोटकमुख, गोनर्दीय, गोणिकापुत्र, दत्तक और कुचुमार नामक सात आचार्योंने इस विषयको सर्वाङ्ग पूर्ण करनेकी चेष्टा की। इनमें वाभ्रव्यके संकलन किये हुए ग्रन्थका सहारा लेकर महामना वात्स्यायनने इसकी रचना की है। इसी ग्रन्थके विषयमें माधवाचार्यने अपने शंकरविजय नामक ग्रन्थमें लिखा है, कि इसी कामसूत्रको पढ़कर शंकराचार्यने विदुषी भारतीको पराजित किया था।

संस्कृत "कामसूत्रम्"के विषयमें इससे अधिक कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वह अपना जोड़ा आप ही है। चन्द्रगुप्तके समय इस भारतवर्षकी कैसी अवस्था थी, वह कैसा धन-धान्य-सम्पन्न हो रहा था—इस विषयकी जानकारी प्रत्येक इतिहास पढ़नेवालोंको अच्छी तरह है। उसी समय इस कामसूत्रकी रचना हुई है। वात्स्यायनके एक श्लोकसे भी ऐसा ही आभास मिलता है। कामसूत्रम्का उपसंहार करते हुए उन्होंने एक श्लोक लिखा है:—

वाभ्रवीयोश्च सूत्रार्थानागमं सुविमृश्य च।
वात्स्यायनश्च कादेदं कामसूत्रं यथाविधि॥

विद्वानोंका मत है, कि इसी श्लोकमें उन्होंने ग्रन्थ प्रणयनका समय बताया है। उनका कथन है कि:—

'व शब्दसे वायु ; उसकी संख्या १५। अभ्र शब्दका अर्थ ०। व शब्दका वरुण ; जिसकी संख्या २४। इस हिसाबसे सब संख्याको एक साथ रखनेपर १५०२४ होता है। अब इन अंकोकी वामा गतिके नियमानुसार ४२०५१ हो जाता हैं। इसके बाद अर्थ शब्दसे द्वितीय वर्ग, जिसकी संख्या २ होती है। तब सब अंक हुए ४२०५१२। इतने अंक कल्यब्दके आगामी अंक हुए। इस लिये कल्यब्द ४३२०००—४२०५१२ अंकसे घटा देने पर ११४८८ बच जाता है। अब रहा, "आगमं सुविमृश्य च"। अ शब्दसे विष्णु ; उसकी संख्या २२। अग शब्दसे नाग, जिसकी संख्या ८। दोनोंको जोड़नेपर ३० होता है। इसके बाद वाले अ-की संख्या २२ बैठेगी। इस तरह सब मिलाकर ३०२२ अंक हुआ। अलग अलग कहा गया है, इस लिये यहाँ वामागतिकी जरूरत नहीं हैं। *

अब इन बचे हुए ११४८८ अंकको ३०२२ से विभाग करने पर २४२२ एक ऐसी संख्या बच जाती है, जिसमेंसे ३०२२ फिर निकाला नहीं जा सकता। अतएव निश्चित हुआ, कि कल्यब्द २४२२ वर्षमें वात्स्यायनने कामसूत्रकी

* श्रीयुत महेशचन्द्र पालने इसी ढंगसे वात्स्यायनका समय निर्द्धारित किया है।

रचना की है। इस समय कल्यब्द ५०२७ से २४२२ बाद देने पर २६०५ बचता है। अर्थात् कल्यब्द इतने वर्ष पूर्व वात्स्यायनने कामसूत्रकी रचना की है। इस प्रकार अर्थ निकालनेको "म्लेच्छितविकल्प" कला कहते हैं। जिन्होंने चौसठ कलाओंके सूत्रोंमें इस विकल्पको भी रक्खा है, वे अपने इस अद्वितीय ग्रन्थमें यदि उसका परिचय भी दे जायँ, तो कौन सी अचरजकी बात है?

ऐसे ही परम आवश्यक ग्रन्थ "कामसूत्र" के आधार पर यह "काम-विज्ञान" लिख कर वास्तवमें ग्रन्थकारने हिन्दी-जगतके सम्मुख एक अभिनव और आवश्यक सामग्री रखी है। बड़ी प्रसन्नताकी बात है, कि इसमें विषयोंका इतनी सुन्दरतासे समावेश किया है और वर्त्तमान रुचिके अनुकूल उन अश्लील कहलाये जानेवाले विषयोंको इस ढङ्गसे निकाल बाहर किया है, कि पुस्तकमें कोई त्रुटि परिलक्षित नहीं होती। प्रत्युत रति-रहस्य प्रभृति अन्य ग्रन्थोंसे जो जरूरी विषय ले लिये हैं, उनसे पुस्तकका आवश्यक अङ्ग परिपूर्ण हो गया है और महत्व और भी बढ़ गया है। आशा है, हिन्दी संसार उनकी इस कृतिका आदर करेगा और सदा ऋणी रहेगा। अन्तमें हम पाठकोंसे अनुरोध करते हैं, कि वे किसी भी विषयकी पुस्तकको

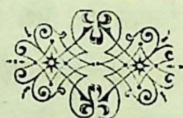
भूमिका ।

संयत भावसे पढ़ने और गुण ग्रहण करनेकी चेष्टा करें क्योंकि:—

The benefit which is derived from literature will depend not so much upon the literature itself, as upon the skill with which it is studied.

Buckles Civilization P, 1247 (1854)

—चन्द्रशेखर पाठक



प्रकाशकका वक्तव्य



काम-शास्त्रको एक बहुत ही उपयोगी शास्त्र समझ कर, बहुत दिनोंसे हमारी यह इच्छा थी, कि इस विषयकी कोई अच्छी पुस्तक प्रकाशित की जाय। बादको हमने जब दाम्पत्य-ग्रन्थावलीका प्रकाशन आरम्भ किया, तब इस निश्चय पर पहुंचे, कि इसी ग्रन्थावलीमें वह पुस्तक भी गुम्फित कर दी जाय। इसी निश्चयको आज हम ईश्वर-कृपासे कार्य रूपमें परिणत कर रहे हैं।

संस्कृत भाषामें वात्स्यायन मुनिका कामसूत्रम् इस विषयका उत्कृष्ट ग्रन्थ है। कोक्कोक (कोका) लिखित रति-रहस्य, जो प्रायः उसीके आधार पर संकलित हुआ है, वह भी अच्छा ग्रन्थ है। पाश्चात्य विद्वानोंने भी इन पुस्तकोंकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा की है। उन्होंने अपनी भाषामें इनके अनुवाद भी किये हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश हम भारतवासी उनसे सर्वथा अपरिचित हैं। रति-रहस्यके

प्रकाशकका वक्तव्य।

भाषानुवाद कोक-शास्त्रके नामसे बाजारमें बिकते हैं, परन्तु उनमें उसके उत्तम अंशोंका नितान्त अभाव है। यह पुस्तकें केवल लोगोंकी कुरुचिसे लाभान्वित होनेके कारण प्रकाशित की गयी हैं, इसलिये उनमें काम-शास्त्रके प्रकृत तत्वोंकी खोज करना ही व्यर्थ है। प्रस्तुत पुस्तक काम-सूत्र, रति-रहस्य, रतिमञ्जरी, रति-शास्त्र और पञ्चशायक प्रभृति संस्कृतकी प्राचीन पुस्तकोंके ही आधार पर लिखी गयी है, अतएव पाठकोंको उन पुस्तकोंकी प्रायः समस्त आवश्यक बातें इसमें दिखाई देंगी। साथ ही पुस्तककी उपयोगिता बढ़ानेके लिये, जहां तक इस शास्त्रसे सम्बन्ध है,—वैद्यक शास्त्र, धर्म शास्त्र, नीति शास्त्र और रसायन (विज्ञान) शास्त्रकी बातें भी बतलानेकी चेष्टा की गयी है।

यह पुस्तक तैयार करनेका भार आरम्भमें हमने पण्डित रामशंकरजी त्रिपाठीको दिया था। उन्होंने हमें इसके कई अध्याय लिख कर दिये भी, परन्तु अनन्त "समयाभाव" के कारण वे इसे पूर्ण करनेमें असमर्थ रहे। इसी कारणसे प्रायः एक वर्ष तक यह कार्य रुका रहा। अन्तमें अपनी अज्ञानता, असमर्थता और समयाभावको जानते और अनुभव करते हुए भी, हमें स्वयं इसका लेखन-कार्य

सम्पन्न करना पड़ा। इसके लिये हम त्रिपाठीजीको दोष नहीं देते। प्रत्युत हमें इस बातका हर्ष है, कि उन्होंने अपनी सामग्रीमेंसे हमें आवश्यक सामग्रीका उचित और आवश्यक परिवर्तनके साथ उपयोग करनेकी सहर्ष अनुमति दे दी। इस पुस्तकमें १, २, ६, ७, ८, १०, ११, १२, १४ और १६ —यह अध्याय प्राय: उन्हींके लिखे हुए हैं। इसके लिये हम उनके अतीव कृतज्ञ हैं।

इस पुस्तकका विषय बहुत भयंकर है। कुछ दायित्व हीन लेखकोंने इस विषय पर लेखनी चला कर इसे और भी भयंकर बना दिया है। ऐसे लेखक, लिखते समय इस बातको भूल जाते हैं, कि उनकी बातोंका पाठकों पर क्या प्रभाव पड़ेगा। इसीलिये वे इस आदरणीय विषयको घृणित रूपमें समाजके सम्मुख उपस्थित करते हैं। हमने वर्तमान समयके साधारण पाठकोंकी योग्यता और मनो-भावोंको ध्यानमें रख, उन्हें इस ढङ्गसे प्रकृत तत्व बतलानेकी चेष्टा की है, ताकि उन्हें लाभके बदले हानि न हो। सम्भव है कि हमें इस कार्यमें सफलता न मिली हो, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि पुस्तक लिखते समय हमारा आन्तरिक उद्देश्य यही रहा है। यदि यह बात सच है, कि पुस्तकके पीछे लेखकका आत्मा छिपा रहता है, तो पुस्तक पढ़ने पर

विद्वान पाठकोंको हमारे इस कथनकी यथार्थता ज्ञात हुए बिना न रहेगी ।

प्रस्तुत पुस्तकमें जिस विषयका निरूपण किया गया है, उसकी उपयोगिता और उपकारिताके सम्बन्धमें अधिक कहना व्यर्थ है। बड़े बड़े विद्वान और विचारशील मनुष्योंने भी इसका समर्थन किया है। यह एक दूसरी ही बात है, कि इस विषय पर लेखनी चलानेवाले लेखकगण इसे उपयुक्त रूपमें जनताके सम्मुख उपस्थित न कर सके। किन्तु इस दोषके कारण उत्पन्न होनेवाली हानियोंके लिये इस शास्त्रको निन्दा नहीं की जा सकती। हम अपने पाठकोंको विश्वास दिला देना चाहते हैं, कि हमने इस विषयको परमावश्यक और उपयोगी मानते हुए अपने दायित्व और कर्तव्यपर ध्यान रख कर लेखनी चलायी है। इसलिये हमें विश्वास है, कि पुस्तक लिखनेके बाद जिस तरह हमें सन्तोष और प्रसन्नता प्राप्त हुई है, उसी तरह इसे पढ़ने पर हमारे पाठकोंको भी प्राप्त होगी। यदि सचमुच ऐसा हुआ, तो हम अपने परिश्रमको सफल हुआ समझेंगे।

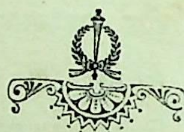
पुस्तक लिखते समय, जिन बातोंसे यत्किञ्चित भी अनर्थ होनेकी सम्भावना प्रतीत हुई, जो बातें लोक-रीति, सामाजिक नियम और नीति-शास्त्रके विरुद्ध मालूम हुईं, उन्हें

हमने इस पुस्तकमें स्थान नहीं दिया। इसीलिये कामसूत्रके कई प्रकरण हमने ज्योंके त्यों छोड़ दिये हैं, कई प्रकरण ढंग बदल कर लिखे हैं और अनेक सूत्रोंका अर्थ संक्षेप या संकेत हीमें अंकित कर दिया है। साथ ही जो बातें जन-साधारणके लिये हमें उपकारी प्रतीत हुईं, उन पर हमने निःसंकोच होकर लेखनी चलाई है। आशा है, कि लोक-मर्यादाका महत्व समझनेवाले प्रेमी पाठक हमारे इस ढंगको अनुचित न समझेंगे।

अन्तमें हम अपने उन सभी सहायकोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं, जिनकी असीम कृपाके कारण किसी प्रकारके साधन न होते हुए भी, क्रमशः चार पुस्तकें प्रकाशित करनेमें हम समर्थ हो सके हैं। यदि पाठकगण इन पुस्तकोंको न अपनाते और व्यवसायीगण इनके प्रचारमें हमारा हाथ न बटाते, तो हमें यह सफलता कदापि न मिलती। इस दयाके लिये हम उनके अतीव कृतज्ञ हैं, परन्तु सबसे अधिक कृतज्ञ और ऋणी हैं हम श्रद्धेय पण्डित चन्द्रशेखरजी पाठकके, जिन्होंने समय समय पर अपने पाण्डित्य, व्यक्तित्व, सत्परामर्श और अपनी पाठक कम्पनी द्वारा हमें नाना प्रकारसे सहायता पहुंचायी है। सच पूछिये तो इस दाम्पत्य-ग्रन्थावलीकी बेलको उन्हींने

सींच कर पल्लवित किया है। प्रस्तुत पुस्तककी भूमिका भी आप हीने लिख देनेकी कृपा की है। इन सब कृपाओंके कारण श्रद्धेय पाठकजी तथा अपने समस्त सहायकोंको सादर श्रद्धाञ्जलि अर्पण कर हम यह वक्तव्य समाप्त करते हैं।

—लेखक और प्रकाशक।

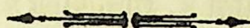


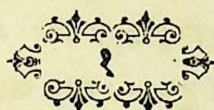
काम-विज्ञान ।

What God, in the might of His wisdom and the greatness of his love, has created, no man or woman need be ashamed to read, talk of, learn and know; for it can not be that He has so ordered it that knowledge so essential to the well being of mankind can be destructive to moral purity.

—John Cowan, M. D.

काम-विज्ञान।





काम-विज्ञानकी आवश्यकता

जगत्की स्थिति सृष्टिपर निर्भर है। सृष्टि भी स्थावर जंगमात्मक जगत्में, स्त्री और पुरुषसे भिन्न नहीं हो सकती। अथच सृष्टि-तत्व समाजकी सुरुचि (?) के अभावसे अप्रकाशित अवस्थामें होनेके कारण हमलोग इस सम्बन्धमें अनजान हैं, इसलिये पशुओंकी तरह सृष्टि-तत्वका व्यवहार और उसकी आलोचना किया

करते हैं। परन्तु क्या यही कर्त्तव्य है अथवा क्या यही समीचीन है?

जिसके सदुव्यवहारसे जगत्की रक्षा और ईश्वरके उद्देश्यकी सिद्धि होती है, जिसके कुत्सित व्यवहारसे परिणाम घोर अन्धकारमय होता है, अनर्थ उत्पन्न होते हैं, अधर्मकी वृद्धि होती है, शक्ति क्षीण हो जाती है, जीवन-काल घट जाता है, और समाजमें अनेक प्रकारके रोग-दोष फैल जाते हैं, उस सृष्टि-तत्वको गाढ़ तमसाछन्न—घोर अन्धकारमें ढका हुआ—रखना कदापि उचित नहीं है, अतएव धर्मतः और न्यायतः इन उपायोंका जानना अवश्य उचित है, इस बातको सभी मुक्तकण्ठसे स्वीकार करेंगे।

विद्वानोंने लिखा है, "कामात् सुखं प्रजोत्पत्तिश्च" अर्थात् कामके द्वारा सुख और सन्तानका लाभ होता है। अतएव जो काम-शास्त्रसे अनभिज्ञ हैं, वे पशुओंकी तरह यथेच्छ प्रवर्त्तित होते हैं, और फलस्वरूप संसारमें सुख स्वच्छन्दता और सुयोग्य सन्तान-लाभ करनेमें असमर्थ होते हैं, उनका जीवन विषमय हो जाता हैं। प्रीति, विरक्तिमें परिणत हो जाती है। जीवनका सर्वश्रेष्ठ काल—यौवन हमारी असावधानतासे, हमारी क्षणिक सुखकी लालसासे नष्ट हो जाता है। भारतवर्षमें आजकल प्रत्येक घरमें उपर्युक्त

वाक्योंके मूर्त्तिमान् उदाहरण देख पड़ेंगे। यही नहीं, कि हम अपना ही यौवन नष्ट करते हैं, प्रत्युत कुछ जीर्ण, शीर्ण, विकलाङ्ग और दुर्बल बालकोंको जन्म देकर देश और समाजकी प्रभूत क्षति करते हैं। ऐसे बालकोंका जन्म, क्या कभी सुखका कारण हो सकता है? क्या देश-मातका ऐसे सन्तानोंको पाकर गौरवान्वित हो सकती है? क्या ऐसे बालकोंको जन्म देकर आप क्षण भरके लिए भी सुखी हो सकते हैं?

आजकल घरघरमें अकाल-मृत्यु और अकाल-वार्द्धक्यसे अशान्ति मची हुई है। नन्दन-कानन उजाड़ वन होता जा रहा है। सोनेका संसार मिट्टीमें मिल रहा है। स्वर्गीय-सौरभ, नारकीय, घृणित, दूषित और दुर्गन्धमय वायुसे आच्छन्न हो गया है। यह किसका अपराध है? किसके दोषसे यह मंगल-मूलक और सुख-शान्ति पूर्ण अनुष्ठान अशान्तिमें, अमंगलमें और हीनतामें परिवर्त्तित हो गया है? कौन इसका उत्तरदायी है? युवक-समाज रसा-तलकी ओर जा रहा है। तरुण नारी-समाज रूप, यौवन और लावण्य खो बैठा है। इसका उत्तर दाता कौन है? इसका पाप किसके सिरपर है? कहना व्यर्थ है, कि जो समाजके, देशके, हर्त्ताकर्त्ता और विधाता हैं, जो संसारके सदा-

चारके ठेकेदार हैं, जो धर्मकी ध्वजा उड़ानेकी घोषणा करते हैं, वेही इसके उत्तरदाता हैं। उन्हींके सिर इसका पाप है, क्योंकि वेही इस विषयकी शिक्षाका विरोध करते हैं। परन्तु क्या वास्तवमें इस विषयकी शिक्षा देना पाप है? क्या वास्तवमें यह विषय उपेक्षा करने योग्य है?

यौवन आनेके कुछ पहलेसे ही अर्थात् कैशोरकी अन्तिम सीमामें आते ही बालक बालिकाओंके कामोद्रेक होता है। इस समय अगर संगति अच्छी न हो, शिक्षा उत्तम न हो, तो मनुष्यका अधःपतन अनिवार्य हैं। हस्त-मैथुन, अयोनि और वियोनि-गमन प्रभृति इस अधःपतनके लक्षण हैं। किशोर अपने ही हाथों अपना जीवन-सर्वस्व नष्ट करते हैं। इसमें उन्हें आनन्द मिलता है। यह आनन्द ही उनके भावी जीवनके सर्वनाशका कारण है! आश्चर्य है, कि अब भी लोग इसकी ओर उपेक्षाकी दृष्टिसे देखते हैं!

देश-वासी आज घर-घर दुःख दुर्दशा-ग्रस्त हैं। आज उनके अभाव अभियोगोंका अन्त नहीं हैं। चारों ओरसे दैन्य उन्हें त्रस्त कर रहा हैं। अशान्तिका हाहाकार उनके प्राङ्गणोंमें चील और कौओंको भी नहीं बैठने देता। इन दुःखोंके मूल कारण अनेक हो सकते हैं, किन्तु यह भी अवश्य स्वीकार करना होगा, कि जीवनके प्रारम्भमें यदि

हमलोग जीवन-यात्राके मूल-मन्त्रोंको सीख लेते, यदि हमलोग अपने देशके अतीत कालके गौरव-स्वरूप गुरु-गृहोंमें संयम-शिक्षा और चरित्र-गठनको विद्या प्राप्त करते, तो आज मृत-प्राय या जीवन्मृत होकर, उत्साह-हीन, उद्यम-शून्य, असार और अकर्मण्य जीवन वहन करके देशको विषादकी घनी कराल छायासे आच्छन्न न कर देते।

आज इस देशके अगणित पुरुषोंके यौवनमें, पूर्ण और प्रस्फुटित यौवनमें वार्द्धक्य—बुढ़ापा,—जो तरुण हृदयमें विद्वेष उत्पन्न करनेवाला है—आकर उपस्थित है। देशके आशा भरोसा-स्थल युवकोंकी देहोंमें सौन्दर्य नहीं है, नेत्रोंमें दीप्ति नहीं है, मनोंमें उत्साह नहीं है और प्राणोंमें स्फूर्त्ति नहीं है। अल्प-श्रमसे ही वे लोग श्रान्त और अवसन्न हो जाते हैं। विचार-शक्ति लुप्त हो जाती है। थोड़ेमें ही उनलोगोंका सिर दर्द करने लगता है। स्वाधीन-कर्ममें स्पृहा नहीं रहती। किसी प्रकार जीवन-यापन कर जाना ही उनलोगोंने जीवनका उद्देश्य मान लिया है। नौकरीके अतिरिक्त और कोई पेशा वे खोज नहीं सकते, जिससे उनका और उनके परिवार वर्गका दैन्य मिट सके। चेष्टा करनेमें जितने श्रम, त्याग और अध्यवसायकी आवश्यकता है, हमलोगोंमें वह प्रति शत तीन आदमियोंमें भी नहीं है।

क्यों ? कहना होगा, यौवनका अत्याचार ! केवल यौवनका ही नहीं, कैशोरका अत्याचार ! उस समय 'आनन्द, आनन्द' करके सर्वस्व क्षय कर चुके हैं ! उस समय क्या मालूम था कि, इसका परिणाम इतना विषमय होगा।

युवक और युवतियां, अल्पकालमें ही कई सन्तानोंकी जनक-जननी हो जाती हैं। थोड़े ही समयमें यौवन गत हो जाता हैं। पुरुषोंमें प्रमेह, उपदंश, सूजाक आदि और महिलाओंमें प्रदर इत्यादि भयंकर बीमारियां व्याप्त हो जाती हैं। जो नारी और नरका संगम पवित्र भावसे पूर्ण था, जिस विवाहका उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति द्वारा पितृ-ऋणसे मुक्त होना था, जिस गृहस्थाश्रमको स्वर्गीय-पारिजात माना जाता था, उसका यह अधःपतन, उसकी यह शोचनीय अवस्था बहुत ही करुण है ! चिन्ता जनक है।

चारों ओर आन्दोलन होता है, शिशुओंकी मृत्यु संख्या बढ़ रही है। युवतियोंकी अवस्था बिगड़ रही है ! भारतीय युवक-समाज क्षीण और दुर्बल हो रहा है ! क्यों न हो ? नैतिक चरित्रका पतन सर्वनाशका हेतु है। किन्तु यौवनके उद्दाम-प्रवाहका रोकना क्या सम्भव है ? इन्द्रियोंकी उच्छृङ्खलताका क्या प्रतिशोध किया जा सकता है ? सुखके नशेमें विभोर मानव-मनको भविष्य चिन्तासे क्या काम ?

उस समय परिणामको कौन सोचने बैठता है? उस समय कौन हाथ पकड़कर बतलाता है, कि यह नहीं, दूसरा मार्ग है।

जो यौवन-काल सुखका निवास माना गया है, जो आनन्दमय है, वह आज निरानन्द हो रहा है। सुख दुःखमें और अनुराग-बिरागमें बदल गया है। कितनी शोचनीय यह अवस्था है! कितनी उद्वेग-जनक यह दशा है!

यौवन मनुष्य-जीवनका सर्वश्रेष्ठ काल है। ऋतुओंमें जिस प्रकार बसन्त श्रेष्ठ है—ऋतु-राज है, वैसे ही यौवन भी है। जिस जातिमें यौवन नहीं है, उसमें कर्म प्रेरणा नहीं है, तन्मयता नहीं है, उद्यम नहीं है, उत्साह नहीं है, शायद प्राण भी नहीं है। और जिसके यौवन है, उसके सब कुछ है। आशा, बल, उत्साह, उद्यम, शक्ति, तेज और अध्यवसाय किसीका अभाव नहीं है। ऋतुराज बसन्त जिस प्रकार अपने प्रभावसे वृक्षको सुन्दर बना देता है, पत्र-पुष्प समन्वित करके उसके सौन्दर्यको बढ़ा देता है, उसे सर्वाङ्ग सुन्दर—परिपूर्ण बना देता है—यौवन भी मनुष्यको उसी प्रकार पूर्ण बना देता है।

मनुष्य उत्साह-पूर्वक काम कर सकता है—कब तक? जबतक यौवन है! मनुष्य सिंह सदृश हुस रहता है, तेजपूर्ण

रहता है—कबतक ? जबतक यौवन है ! जिस दिन यौवन नष्ट हो गया, उसी दिन उसका सर्वस्व नष्ट हो गया। अकेला वही रह गया, और रह गई उसके मनमें अनुशोचना जाग्रत करने, और तिल तिल करके दग्ध करनेके लिए अतीतकी तीव्र स्मृति ! अतीतकी ओर विरस और म्लान दृष्टि डालकर वह समस्त जीवनको धिक्कारता रहता है !

यौवनके तिरोधानके साथ साथ उत्तेजना गई, तल्लीनता गई, श्रमशीलता गई, उद्यम गया, उत्साह गया, जीवन कहने लायक कोई सामग्री उस समय अवशिष्ट न रह गई । रह गई केवल अनुशोचना, रह गई केवल छिन्न-मूल आशालता ! अनुशोचनासे हृदय भर जाता है। हताशाके तीव्र श्वाससे सर्वाङ्ग जलता रहता है। और अतीत ! सर्व-सुख-स्मृति-स्नात सुमधुर अतीत, तिल तिल करके प्रति क्षण दग्ध करता रहता है।

जो एक दिन वसन्तके मलयानिलसे पूर्ण था, कोकिल-की कुहुध्वनिसे ध्वनित था, ज्योत्स्ना-किरणसे चित्रमय था, स्वप्नमय संगीतकी झंकारसे मुखरित था, उसकी ऐसी विकृति हो गई ! कितने खेदकी बात है ?

हमलोगोंको उचित है, कि इस यौवनको सुरक्षित रक्खें। हम जानते हैं, कि यौवन ज्वारका जल है, तथापि जबतक

उसके रहनेका समय है, उतने दिन तो रखना ही होगा। यौवनको देहमें धारण कर रखनेसे आशाका आलोक उज्ज्वल हो जायगा। देहकी नस-नसमें उत्साह-स्रोत प्रवाहित होगा। जीवन-पथ सुगम होगा। जीवनकी अनुभूति अमृत सम होगी।

इस यौवनको—इस महिमामय, आनन्द-पूर्ण और कर्म-क्षम यौवनको सुरक्षित रखनेके लिए काम विज्ञानकी जरूरत है। काम-विज्ञान हमें बतलायेगा कि, किस प्रकार हम अपने यौवन-कालको सुरक्षित रख सकते हैं।

जो काम-विज्ञानसे अनभिज्ञ हैं, वे यौवनको सुरक्षित नहीं रख सकते—यौवनकी महिमाका तादृश अनुभव नहीं कर सकते। वे लोग क्षणिक सुखकी प्राप्तिमें अपना और अपनी पत्नीका भी सर्वनाश कर लेते हैं। यौवन कालमें मनुष्यकी विवेक-बुद्धि बहुत कुछ लुप्त हो जाती है, यदि उसे उपयुक्त शिक्षा न मिली हो। इस समय संयमका रखना, दुर्दमनीय इन्द्रियों पर शासन करना बहुत कठिन—प्रायः असाध्य हो जाता है। परन्तु काम-विज्ञान उन्हें सचेत करता हैं—ख़बरदार! काम-विज्ञानकी यह ओजपूर्ण वाणी मानव-मनपर बहुत बड़ा प्रभाव डालती है।

काम-विज्ञान बतलाता है, कि पति-पत्नीका पारस्परिक

व्यवहार कैसा होना चाहिए? विवाहका सच्चा उद्देश्य क्या है? प्रलोभन-पूर्ण संसारसे किस प्रकार आत्म-रक्षा करनी चाहिए इत्यादि। मतलब यह है, कि सांसारिक जीवनको सुचारु रूपसे निबाहना ही काम-शास्त्रका मुख्य उद्देश्य है, न कि केवल पाशविक आनन्दका अनुभव करना। योरपवालोंने काम-शास्त्र (Erotic science) के तात्पर्यको बिगाड़ डाला है। वे लोग इसका प्रयोग कुत्सित अर्थमें करते हैं। क्यों न हो, उनके यहाँ विवाह एक सामाजिक सम्बन्ध—अर्थात् इक़रारनामा भर ही (Marriage is a contract) तो है, जो आवश्यकतानुसार रद भी किया जा सकता है। किन्तु हिन्दुओंके यहाँ यह बात नहीं है। वे काम-शास्त्रको श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते हैं और विवाह, अर्थात् पति-पत्नीका सम्बन्ध उनके यहाँ एक प्रधान संस्कार (Sacrament) है। हिन्दुओंका यह सम्बन्ध केवल इहलौकिक ही नहीं, पारलौकिक भी होता है। इसीलिए स्त्रीपर पुरुषका और पुरुषपर स्त्रीका प्रेत-कर्म श्राद्ध आदि करनेका दायित्व रहता है। अज्ञान-वश यहाँके अनेक विद्वान् इस शास्त्रसे विमुख हैं और इससे नफरत करते हैं।

हमें यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, कि इस

विषयकी पुस्तकोंके प्रचारमें प्रायः पुरुष ही बाधा देते हैं। इसका कारण समझनेमें—इस गूढ़ रहस्यके भेदनमें हमारी अल्प बुद्धि नितान्त अक्षम है। इसमें पुरुषोंको क्यों इतनी आपत्ति है, उसे किसीने स्पष्ट भाषामें प्रकट नहीं किया और न किसीने सयौक्तिक समर्थन ही किया है। हाँ, जबतब नाक फुलाकर वे कह दिया करते हैं, कि इससे देशका ध्वंस हो जायगा। देशके ध्वंस होनेका मानों यही एकमात्र कारण है। पुरुषोंके इस पौरुषपर आश्चर्य है!

उनकी इस सम्बन्धमें दो आपत्तियां सुननेको मिलती हैं। प्रधान आपत्ति हैं कि स्त्रियां इन पुस्तकों—या ऐसी पुस्तकोंको पढ़कर अधिकतर काम पुत्तली बन जायँगी, अपने कर्त्तव्यको भूलकर केवल विषयानन्दका ही चिन्तन करती रहेंगी और इससे बहुत बड़ा अनिष्ट होगा।

इस बातको सुनकर हँसी आ जाती है और दुःख भी होता है। काम-विज्ञान पढ़नेसे ही काम-पुत्तली बन जाना पड़ेगा, इसका क्या मतलब है? हमारी समझमें तो जिन्होंने काम-विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थ लिखा है, उन्होंने कामके विरुद्ध, अत्यधिक इन्द्रिय-परायणताके विरुद्ध लोगोंको यथेष्ट सावधान किया है। पर्याप्त उपदेश दिया है। काम-विज्ञान

पढ़कर काम-स्पृहाके बढ़नेकी सम्भावनाकी अपेक्षा ह्रास होनेकी ही सम्भावना अधिक रहती है। जरा सा ध्यान देनेपर ही इस सिद्धान्तकी सत्यताका अनुभव हो जायगा। फिर जो लोग कहते हैं, कि काम-शास्त्रका अध्ययन और प्रचार अनाचारका मूल है, इसको प्रश्रय देनेसे हानिकी अधिकांश सम्भावना हैं, इसका क्या मतलब है? दाम्पत्य जीवनकी मूल भित्ति है—स्वास्थ्य। स्वास्थ्यसे ही सुखकी उत्पत्ति होती है। स्वास्थ्य ही दाम्पत्य-जीवनको सुखी, आनन्दमय और प्रफुल्ल बनाता है। काम-विज्ञानकी अज्ञता इस सम्बन्धमें कितना अनिष्ट उत्पन्न करती है, यह पाठकोंसे छिपा नहीं है। उद्देश्यको भूलकर लोग अपनी अपनी काम-लिप्सा चरितार्थ करनेमें ही लगे रहते हैं। स्त्रियां गभीर अन्धकारकी प्राचीरमें आबद्ध रक्खी जाती हैं। बस्तुतः स्त्रियोंको यदि काम-विज्ञानका ठीक ठीक अध्ययन करा दिया जाय, वे अपनी अवस्थाके यथार्थ-स्वरूपको पहचान लें, तो यह निश्चय है, कि वे पुरुषोंकी इस काम-लिप्सा या इन्द्रिय परायणताको कदापि सफल न होने देंगी। काम-विज्ञानकी अज्ञतासे ही अतिरिक्त इन्द्रिय-परिचालन करके स्त्री पुरुष दोनों निर्वीर्य और निस्तेज हो जाते हैं।

स्त्रियोंको गर्भ-धारण करना पड़ता है, नव मासतक

अपने पेटमें बच्चा रखना पड़ता है, अथच वे ही काम-शास्त्र-की शिक्षासे अनभिज्ञ रहें, यह कैसी विचित्र बात है ?

ऐसे ही महानुभावोंकी दूसरी आपत्ति यह है, कि लड़कोंको इसकी शिक्षा देनेसे वे लोग असंयत हो जायँगे, अब्रह्मचर्यशील हो जायँगे, फलतः उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ जायगी। इस बातका उत्तर हम बादको देंगे। पहले हम यहाँपर यह लिखना आवश्यक और उचित समझते हैं, कि इस विषयपर हमारे पूर्वजोंकी क्या राय थी, अर्थात् काम शास्त्रका अध्ययन कन्याओं और लड़कोंके लिए ज़रूरी समझा जाता था या नहीं।

भगवान् वात्स्यायन बहुत पुराने काम-सूत्रकार हैं, अतः हम पहले उन्हींकी सम्मति अंकित करते हैं। उन्होंने सर्व प्रथम कामकी परिभाषा करते हुए लिखा है कि—

श्रोत्र त्वक् चक्षुर्जिह्वा घ्राणानामात्मसंयुक्तेन मनसाधिष्ठितानां स्वेषु स्वेषु विषयेष्वानुकूल्यतः प्रवृत्तिः कामः ॥११॥

—साधारणमधिकरण। २य अध्याय।

आत्म-संयुक्त मन द्वारा अधिष्ठित, कान, त्वक, आँखें, जीभ और नासिकाकी अपने अपने विषयमें अनुकूल प्रवृत्ति-का नाम काम है। प्रत्येक कार्य दो प्रकारका होता है—

सामान्य और विशेष। सामान्यका लक्षण बतला चुके। अब विशेषका लक्षण बतलाते हैं। यथा :—

स्पर्श विशेष विषयात्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थ प्रतीतिः प्राधान्यात् कामः ॥ १२ ॥ साधारणमधिकरण २य अध्याय।

स्त्री या पुरुषके स्पर्श-विशेषको लक्ष्य करके अभिमानिक सुखसे अनुविद्ध, फलवान् विषय-बोध ही प्रधान काम है।

अतएव विशेष काम सामान्य कामसे अलग पदार्थ है। इस विशेष कामकी जिज्ञासाकी निवृत्ति कैसे करनी चाहिए, अथवा इसका ज्ञानार्जन किस प्रकार करना चाहिए यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं—

तं काम-सूत्रान्नागरिक जन समवायाच्च प्रतिपद्येत ॥१३॥ साधारणमधिकरण। २य अध्याय।

उसको—अर्थात् कामको—काम सूत्रसे और नागरिक समवाय अर्थात् काम व्यवहारज्ञ व्यक्तियोंके संसर्ग या सम्पर्कसे जान लेना चाहिए।

इसपर किसीने शंका की, कि यह काम भाव तो पशु पक्षियोंमें भी निसर्गतः मौजूद है। अर्थात् वे किसीसे इस विषयमें कुछ शिक्षा नहीं प्राप्त करते, फिर मनुष्यको ही काम-विज्ञानके लिए शास्त्रकी क्या आवश्यकता है? यथा :—

तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवृत्तत्वात् कामस्य नित्यत्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्य्याः ॥१७॥ साधारणमधिकरण। २य अध्याय।

अर्थात् आचार्यों की राय है, कि तिर्यग्योनिमें भी काम स्वयं ही प्रवृत्त होता है और यह आत्माका एक नित्य सिद्ध धर्म है। अतएव काम सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके लिए शास्त्रकी कोई जरूरत नहीं है। अर्थात् जब तमोबहुल गवादि पशुओंमें भी शास्त्रोपदेशके बिना काम-प्रवृत्ति देखी जाती है, तब रजोगुण प्रधान मनुष्योंको इसकी शिक्षा क्यों देनी चाहिये? कहा भी है :—

विनोपदेशं सिद्धोहि कामोनाख्यातशिक्षितः।
स्वकान्ता रमणोपाये को गुरुर्मृग पक्षिणाम्॥

अर्थात् विना उपदेशके भी काम शिक्षा होती है, इसलिए उपदेश व्यतीत काम स्वयं सिद्ध है। यदि यह न होता तो प्रणयिनीसे रमण-उपायकी शिक्षा देनेके लिए पशुओं और पक्षियोंका कौन गुरु होता है? न्यायशास्त्रके अनुसार आत्मा द्रव्य पदार्थ है। उसमें इच्छा और द्वेष आदि सदैव वर्त्तमान रहते हैं, अतएव काम नित्य है। वह सदैव आत्माके साथ वर्त्तमान रहता है। इस शंकाका परिहार वात्स्यायन मुनि इस प्रकार करते हैं :—

सामान्य और विशेष। सामान्यका लक्षण बतला चुके। अब विशेषका लक्षण बतलाते हैं। यथा :—

स्पर्श विशेष विषयात्वस्याभिमानिकसुखानुविद्धा फलवत्यर्थ प्रतीतिः प्राधान्यात् कामः ॥ १२ ॥ साधारणमधिकरण २य अध्याय।

स्त्री या पुरुषके स्पर्श-विशेषको लक्ष्य करके अभिमानिक सुखसे अनुविद्ध, फलवान् विषय-बोध ही प्रधान काम है।

अतएव विशेष काम सामान्य कामसे अलग पदार्थ है। इस विशेष कामकी जिज्ञासाकी निवृत्ति कैसे करनी चाहिए, अथवा इसका ज्ञानार्जन किस प्रकार करना चाहिए यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं—

तं काम-सूत्रान्नागरिक जन समवायाच्च प्रतिपद्येत ॥१३॥ साधारणमधिकरण। २य अध्याय।

उसको—अर्थात् कामको—काम सूत्रसे और नागरिक समवाय अर्थात् काम व्यवहारज्ञ व्यक्तियोंके संसर्ग या सम्पर्कसे जान लेना चाहिए।

इसपर किसीने शंका की, कि यह काम भाव तो पशु पक्षियोंमें भी निसर्गतः मौजूद है। अर्थात् वे किसीसे इस विषयमें कुछ शिक्षा नहीं प्राप्त करते, फिर मनुष्यको ही काम-विज्ञानके लिए शास्त्रकी क्या आवश्यकता है ? यथा :—

तिर्यग्योनिष्वपि तु स्वयं प्रवृत्तत्वात् कामस्य नित्य त्वाच्च न शास्त्रेण कृत्यमस्तीत्याचार्य्याः ॥१७॥ साधारण-मधिकरण। २य अध्याय।

अर्थात् आचार्यों की राय है, कि तिर्यग्योनिमें भी काम स्वयं ही प्रवृत्त होता है और यह आत्माका एक नित्य सिद्ध धर्म हैं। अतएव काम सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करनेके लिए शास्त्रकी कोई जरूरत नहीं है। अर्थात् जब तमोबहुल गवादि पशुओंमें भी शास्त्रोपदेशके बिना काम-प्रवृत्ति देखी जाती है, तब रजोगुण प्रधान मनुष्योंको इसकी शिक्षा क्यों देनी चाहिये? कहा भी है :—

विनोपदेशं सिद्धोहि कामोनाख्यातशिक्षितः।
स्वकान्ता रमणोपाये को गुरुर्मृग पक्षिणाम् ॥

अर्थात् बिना उपदेशके भी काम शिक्षा होती है, इसलिए उपदेश व्यतीत काम स्वयं सिद्ध है। यदि यह न होता तो प्रणयिनीसे रमण-उपायकी शिक्षा देनेके लिए पशुओं और पक्षियोंका कौन गुरु होता है? न्यायशास्त्रके अनुसार आत्मा द्रव्य पदार्थ है। उसमें इच्छा और द्वेष आदि सदैव वर्त्तमान रहते हैं, अतएव काम नित्य हैं। वह सदैव आत्माके साथ वर्त्तमान रहता है। इस शंकाका परिहार वात्स्यायन मुनि इस प्रकार करते हैं :—

सम्प्रयोग पराधीनत्वात् स्त्री पुंसयोरुपायमपेक्षते ॥१८॥
सा चोपाय प्रतिपत्तिः काम सूत्रादिति वात्स्यायनः ॥१६॥
साधारण अ० । २ य अ० ।

अर्थात् काम स्त्री पुरुषके सम्प्रयोगके आधीन है, अतएव उपायकी अपेक्षा करता है और उस—सम्प्रयोग—के उपायका परिज्ञान काम सूत्रसे होगा। मतलब यह है कि काम-सूत्रमें सम्प्रयोग (मिलन) के उपाय बतलाये जायंगे, अतएव उपाय-परिज्ञान काम सूत्रसे ही होगा। जो लोग काम-विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकोंको अनावश्यक बतलाते हैं, उनको वात्स्यायनके इस वचनपर ध्यान देना चाहिए।

लगे हाथ एक और बातका भी विचार कर लेना चाहिए, वह यह कि आजकल कुछ लोग कहते हैं, कि कामके सेवनसे पापकी वृद्धि होगी, धर्मकी हानि होगी और शारीरिक विकासमें बाधा पहुँचेगी। यद्यपि हमारा दृढ़ विश्वास हैं, कि पुण्य पाप अंगोंमें नहीं, हृदयकी भावनामें है—मनकी भावना ही पाप और पुण्यका निमित्त है। तथापि ऐसे प्रश्नकारियोंको हमारे इस विश्वाससे विशेष लाभ होनेकी सम्भावना नहीं है। इस लिए हम वात्स्यायनीय कामसूत्रसे ही इस विषयको उद्धृत करके पाठकोंके समक्ष रखते हैं। जिससे पाठकोंको यह समझनेमें सुविधा हो, कि काम-

सेवनको हमारे पूर्वज कैसा समझते थे। उन लोगोंका इस विषयमें क्या निश्चय था। यदि हम उनके निश्चयोंको जान लें, तो निःसन्देह हमारा कार्य बहुत कुछ सुगम हो जायगा। किसी किसी आचार्यकी राय थी कि—

न कामांश्चरेत्। धर्मार्थयोः प्रधानयोरेवमन्येषाञ्च सतां प्रत्वनीकत्वात्। अर्थानजन सांसर्गमसद्व्यवसायमशौच-मनायतिञ्चैते पुरुषस्य जनयन्ति ॥ ३२ ॥ का० सू०। सा० अ०। २ य अ०।

अर्थात् कामकी सेवा न करनी चाहिए। कारण, धर्म और अर्थसे कामकी उत्पत्ति होती है, अतएव धर्म अर्थ ही प्रधान हैं। कामकी सेवा करनेसे काम इन दोनोंका विरोधी हो जाता है। इसके सेवन करनेसे दुष्ट आदमियोंका सांसर्ग होता हैं। यह असद् व्यवसाय है। अशौच है। अप्रभाव है।"

टीकाकारने इसपर लिखा है :—कामासक्त होनेसे लोग धर्माचरण नहीं करते, अर्थाका उपार्जन नहीं करते, जलकी तरह अर्थ व्यय करते हैं। दुष्टों अर्थात् चापलूसोंसे घिरे रहते हैं। निशीथमें अभिसार करते हैं। अपवित्र रहते हैं अर्थात् सर्वथा काम-गर्दभ बने रहते हैं और उच्च विचारोंको विसर्जन कर देते हैं।

तथा प्रमादं लाघवमप्रत्ययमग्राह्यताञ्च ॥ ३३ ॥

यही नहीं, काम-सेवन करनेसे शरीरका उपघात होता है—अर्थात् दौर्बल्य या अनेक प्रकारके रोग होते हैं। लाघव अर्थात् तरलता होती है। अपमान और हीनता होती है।

बहवश्च कामवशगाः सगणा एव विनष्टाः श्रूयन्ते ॥ ३४ ॥

अर्थात् कितने ही कामवश होकर सवंश ध्वंस हो गये हैं, ऐसा सुना जाता है।

इसपर टीकाकार लिखता है, कि जो कामकी सेवा करता है, केवल वही नष्ट नहीं होता, प्रत्युत उसके साथ साथ उसका परिवारवर्ग—उसके आत्मीय स्वजन सभी नष्ट हो जाते हैं।

इसके बाद उनकी संख्या गिनाई गई है, जो कामके सेवनसे—अधिक मात्रामें इन्द्रिय परिचालन करनेसे—परिवार सहित नष्ट हो गये हैं। यथा—

यथा दाण्डक्योनाम भोजः कामाद् ब्राह्मण कन्यामभिमन्यमानः सबन्धुराष्ट्रोविननाश ॥ ३५ ॥

जिस प्रकार दाण्डक्य नामक एक भोज वंशीय राजा कामवशतः ब्राह्मण कन्याके प्रति आसक्त होकर बन्धु और राष्ट्रके साथ विनष्ट हुआ था। कथा इसकी रोचक है,

तथापि स्थानाभावसे हम इसे विस्तारपूर्वक नहीं लिख सकते। * इसके अतिरिक्त—

देवराजश्चाहल्यामतिबलश्च कीचको द्रौपदीं रावणश्च सीतामपरे चान्ये च बहवो दृश्यन्ते कामवशगा विनष्टा इत्यर्था चिन्तकाः ॥ ३६ ॥

देवराज इन्द्र अहल्याके प्रति, कीचक द्रौपदीके प्रति और रावण सीताके प्रति काम-वश आसक्त हुआ था, फलतः उन सबका विनाश हो गया था। और भी बहुतेरे काम-वश विनष्ट हो गये हैं, ऐसा देखनेमें आता है।

इस तरह जो लोग कामके सेवनके विरुद्ध हैं, वे आपत्तियां करते हैं। उनकी आपत्तियोंका सारांश यह है, कि

---

* यह राजा शिकार खेलते खेलते एक दिन शुक्राचार्यके आश्रममें जा पहुँचा और उनकी कन्याको देखकर मोहित हो गया। शुक्राचार्य उस समय कार्यवश बाहर गये हुए थे अतः दाण्डक्य उनकी कन्याको रथमें बैठाल कर हरण कर ले गया। शुक्राचार्य जब लौटे और आश्रममें कन्याको न पाया, तब उन्हें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने ध्यानस्थ हो सारा हाल जान लिया और दाण्डक्यको भयंकर शाप दिया। उस शापके कारण दाण्डक्यके राज्यमें लगातार इतनी धूलि वर्षा हुई, कि वह अपने परिवार और राष्ट्रसहित विनष्ट हो गया। तभीसे उस स्थानका नाम दण्डकारण्य पड़ा।

कामके सेवनसे धर्म और अर्थकी हानि होती है। कामीकी धर्ममें आस्था नहीं रहती। उसका संग दूषित हो जाता है। उसका शरीर आधिव्याधियोंसे घिर जाता है। वह अपरिमित व्ययशील हो जाता है। परस्त्री इत्यादिमें गमन करके संसारको अशान्तिका केन्द्र बना देता है और अन्तमें उसका विनाश हो जाता है। अतएव कामका सेवन न करना चाहिए।

भगवान् वात्स्यायनने इन सब आपत्तियोंका खण्डन एक साधारण सूत्रद्वारा करके यह बतला दिया है, कि कामका सेवन अवश्य करना चाहिए और ऊपर जो आपत्तियां की गई हैं, वे अधिक इन्द्रियवश्यताका कारण हैं। काम-शास्त्र स्वयं ही संयमसे रहनेको कहता है। जो असंयमी हैं, जिनको 'विषयानन्द' "ब्रह्मानन्द" के सदृश मालूम होता है, और वे उसीमें तन्मय रहते हैं, उनका नाश अवश्यम्भावी है। वात्स्यायनका सूत्र यह है :—

शरीर स्थिति हेतुत्वादाहारसधर्माणोहि कामः, फलभूताश्च धर्मार्थयोः ॥ ३७ ॥

काम शरीरकी स्थितिका कारण है अतएव वह आहारके सदृश धर्मवाला—स्वभाव विशिष्ट है और धर्म तथा अर्थका फल है। टीकाकार इसकी व्याख्या इस प्रकार करते हैं :—

"आहार-सधर्मा अर्थात् भोजनके बराबर शरीरको पुष्ट करनेवाला है। यद्यपि आहारसे अजीर्ण आदि दोष उत्पन्न होते हैं, तथापि प्रति दिन शरीरकी रक्षाके विचारसे उसका सेवन किया जाता है। काम भी उसी प्रकार है। अन्यथा रागके उद्रेकसे उन्माद इत्यादि दोषोंके उपस्थित होनेकी सम्भावना है। फल-भूत काम, अर्थात् सुखके लिए ही धर्म और अर्थकी सेवा होती हैं, यदि कामका सेवन न किया जाय तो धर्म और अर्थ तो बन्ध्य-भूत हो गये। उनका फल ही क्या हुआ ?

कहनेका तात्पर्य यह है, कि कामका अधिक सेवन ही नाशका हेतु है। किन्तु जो लोग संयमसे कामकी सेवा करते हैं, उनकी किसी प्रकारकी हानि नहीं होती। बल्कि, यों कहना शायद अधिक ठीक होगा, कि जो लोग कामका सेवन उचित मात्रामें भी नहीं करते, वे कष्ट पाते हैं। जो लोग अधिक कामका सेवन करते हैं, और जो लोग बिलकुल कामका सेवन नहीं करते, उन दोनोंका परिणाम—नतीजा बुरा होता है। एक क्षय या वात-व्याधि आदिके कारण जीवन्मृत अथवा मृत हो जाता है और दूसरा उन्माद आदि रोगोंसे आक्रान्त होकर जीवन्मृत हो जाता है। हम समझते हैं, कि दोनोंका परिणाम एक ही है।

वात्स्यायन महाराज कामको आहारके तुल्य बतलाते हैं। जगत्‌में कोई ऐसा न होगा, जो आहारके बिना जीवन धारण करता हो। ऋषि मुनि, साधु सन्त, विषयी-विरागी और पशु पक्षी, यहाँतक कि उद्‌भिज भी बिना आहार किए जीवन धारण नहीं कर सकते। सभीको भोजनकी जरूरत पड़ती है। अथच इसी आहारको जब अधिक मात्रामें सेवन किया जाता है; तब अजीर्ण उत्पन्न होता है। अजीर्ण ही रोगोंका मूल है। महर्षि चरकने रोगोत्पत्तिका कारण बतलाते हुए स्पष्ट लिखा है, कि रोगोंकी उत्पत्ति बहुत अधिक खा लेनेसे होती है। जो जिह्वा—इन्द्रियके वशीभूत होकर स्वादके फेरमें पड़कर बहुत खा लेते हैं, उन्हें अजीर्ण हो जाता है और इसके बाद ही दूसरे रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

ठीक यही दशा कामकी है। जो लोग विषयानन्दके फेरमें पड़कर अतिरिक्त संभोग करते हैं, वे राजयक्ष्मा प्रभृति रोगोंसे ग्रस्त होते हैं। जो उत्तेजनाके वशीभूत होकर वेश्या गमन करते हैं, वे गर्मी और प्रमेह इत्यादि रोगोंसे ग्रसित होते हैं। जो लम्पट परस्त्री-गमन करते हैं, वे द्वेष, ईर्षा, मद-मत्सर और अशान्तिका बीज बोते हैं, और कभी कभी अपने प्राणोंसे भी हाथ धोते हैं।

जो लोग चपलतावश हस्थमैथुन और पुरुष मैथुन करते हैं, वे नपुंसकता और सूजाक इत्यादि रोगोंसे आक्रान्त हो जाते हैं और जो लोग पशु-मैथुन करते हैं, वे इन्द्रिय सम्बन्धी अनेक रोगोंसे ग्रसित हो जाते हैं।

स्त्रियोंके सम्बन्धमें भी इसी प्रकार समझना चाहिए! कहनेका तात्पर्य यह है कि, जो लोग अतिरिक्त इन्द्रिय-परायण होते हैं, वे ही कष्ट भोग करते हैं। ऐसे लोगोंकी वृत्तिको काम-सेवा कहना बहुत बड़ी गलती है! यह तो व्यभिचार है। कामशास्त्र कभी व्यभिचारकी शिक्षा नहीं देता। जिस प्रकार सुस्वादु होनेके कारण अज्ञानतावश लोग अधिक भोजन कर लिया करते हैं, और बादको रोग ग्रस्त होकर कष्ट पाते हैं, वैसे ही लोग इन्द्रिय-तृप्तिके मोहमें पड़कर और काम-शास्त्रकी शिक्षाके अभावसे अधिक स्त्री-प्रसंग करते हैं और अपने विनाशका मार्ग स्वयं परिष्कार करते हैं। इसमें न काम सेवनका दोष है और न काम-शास्त्रकी शिक्षा ही मनुष्यके कष्टोंका कारण है। जो लोग काम-शास्त्रकी अत्यन्त आवश्यक बातोंसे परिचित होते हैं, वे इन्द्रियकी उत्तेजनाके सम्मुख वशीभूत नहीं होते। फलतः काम शास्त्र-सम्बन्धी अज्ञान ही संयोगके आधिक्यका कारण है

और आधिक्य हो विनाश का। अतएव सिद्ध हुआ कि, काम-शास्त्रकी शिक्षा और उसका उचित सेवन शरीरको रक्षाके लिए आवश्यक है।

धर्म-शास्त्रोंमें मनुष्य जीवनके चार कर्त्तव्य माने गये हैं, वे चारों क्रमसे ये हैं। (१) धर्म (२) अर्थ (३) काम (४) मोक्ष। अतएव "काम" को पुण्यका विरोधी समझना भूल है। शास्त्रोंमें स्पष्ट लिखा हुआ है :—

कामश्च यौवने ॥ का० सू०

अर्थात् यौवन-कालमें कामका सेवन करना चाहिए ॥

अतएव कहना होगा कि, "काम सेवन" मनुष्य जीवनका आवश्यक और हिन्दू धर्म शास्त्रोंके अनुसार तो अनिवार्य-कर्त्तव्य है। मनुष्यको तीन ऋणोंसे मुक्त होनेकी शास्त्रोंमें आज्ञा है, तीन ऋण हैं (१) देव-ऋण (२) ऋषि-ऋण (३) पितृ-ऋण।

मनुष्य जब यौवन-कालमें कामका सेवन करता है। अर्थात् विधि-पूर्वक विवाहिता स्वपत्नीसे ऋतुकालके अनुसार सन्तानोत्पत्तिके लिए सहवास करता है और जब सन्तानोत्पत्ति होती है, तब वह पितृ-ऋणसे मुक्त होता है। विना तीनों ऋणोंसे मुक्त हुए मोक्ष-मार्गकी ओर

जानेका मनुष्यको अधिकार ही नहीं। मनु भगवान्ने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है :—

ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।

अतएव काम सेवन धार्मिक दृष्टिसे भी आवश्यक है। फिर उसकी शिक्षा दूषित कैसे होगी? हम कैसे मान लें कि काम-शास्त्रकी शिक्षासे धर्मको हानि एवं पापकी वृद्धि होगी?

विशेषतः कामका सेवन जब आवश्यक है, तब अत्यन्त उचित हैं, कि हमें उसके सम्बन्धमें पूरी पूरी जानकारी हो। जो काम करना है, उनके सम्बन्धकी आवश्यक बातोंसे यदि हम अपरिचित हों, तो वह काम कदापि सुचारुरूपसे सम्पादित नहीं हो सकता। अतएव उसके सम्बन्धकी प्रत्येक बातकी जानकारी होनी चाहिए।

कामसूत्रोंको पहले पहल सृष्टि-रक्षाके लिए अन्यान्य शास्त्रोंके साथ विधाताने ही सृजन किया है। वात्स्यायन मुनिने इस सम्बन्धमें लिखा है कि :—

प्रजापतिर्हि प्रजाः सृष्ट्वा तासांस्थिति निबन्धनं त्रिवर्गस्य साधन मध्यायानां शत सहस्रणाग्रे प्रोवाच॥ महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रवाच।

अर्थात् प्रजा पति—ब्रह्माने सम्पूर्ण प्रजाको उत्पन्न करके

उनकी स्थिति (सम्यक् पालन) के लिए पहले एक लाख अध्यायों में त्रिवर्ग—धर्म, अर्थ, काम—साधनको विशद-भावसे कहा था। उसीके आधारपर भगवान् स्वायम्भुव मनुने धर्म-शास्त्रका पृथक् निर्माण किया। सुगुरु वृहस्पतिने काम शास्त्रका प्रणयन किया और उसीके आधारपर, महा-देवके अनुचर नंदीने एक हजार अध्यायों में काम सूत्रको पृथक् बनाया था। कहनेका तात्पर्य यह है कि इन सबने इस विषयको जन-समाजका कल्याणकारी समझ कर ही अपनी कलम उठायी थी।

अब विचारनेकी बात यह हैं, कि शास्त्र होनेसे या इस विषयकी शिक्षाका प्रचार होनेसे ही क्या सब लोग सुधर जाँयगे ? हम कहते हैं—कदापि नहीं। अपवाद और उत्सर्ग सृष्टिका नियम है। परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि बहुत थोड़े ऐसे आदमी रह जायँगे, जो इसके अध्ययनसे भी अपनी अवस्थाका सुधार न कर सकें। इस सम्बन्धमें काम सूत्रके टीकाकर यशोधरेन्द्र महाराज जयमङ्गला टीकामें लिखते हैं :—

"यद्यपि कामशास्त्र विदांकेषाञ्चिद व्यवहारा कौशलम, तत्तेषामेवदोषः, न शास्त्रस्य। प्रतिपत्तिदोषाच्च शास्त्रा, नर्थक्यं सर्वत्र तुल्यम् नहि चिकित्साधर्थेषु शास्त्रेषु सर्वे-

तद्विदः पथ्याहारादिकं सेवन्ते। तस्मात्तदर्थिनो यं भक्ति श्रद्धा समन्वतास्तेऽपि शास्त्र प्रयोजन हेतवः॥

अर्थात् कितने मनुष्य काम शास्त्रका अध्ययन करनेपर भी और कितने ही भलीभांति जानकर भी व्यवहारमें अकुशल होते हैं—अर्थात् जानकर भी ठीक ठीक उसके अनुकूल आचरण नहीं कर सकते—यह देखा जाता है। अतएव यहाँपर प्रश्न होता है कि, यह उनका अर्थात् जाननेवालेका व्यक्तिगत—दोष है, अथवा शास्त्रका? कहना होगा कि शास्त्रका दोष नहीं है। कारण, एक ही शास्त्रावलम्बी दो मनुष्यों में विभिन्न परिणाम देखा जाता है। एक बड़ी आसानीसे अभीष्ट प्राप्त कर लेता है, दूसरा विपरीत फल प्राप्त करता है। यदि शास्त्रका दोष होता, तो दोनों के लिये विपरीत फल ही होना चाहिए। लेकिन यह नहीं होता। अतएव कहना होगा कि व्यवहार-दोषसे ही किसी किसीको विपरीत फल प्राप्त होता है। यह शास्त्रका दोष नहीं है।

उदाहरण देते हैं कि "आरोग्य-प्राप्तिके लिए चिकित्सा शास्त्रका प्रयोजन है। जिन लोगों ने चिकित्सा शास्त्रका अध्ययन कर पाण्डित्य प्राप्त किया है, उनमें भी क्या सभी आहार-विहार ठीक ठीक रखते हैं? अतएव जो लोग शास्त्रानुसार फलाकांक्षी हैं, जो श्रद्धा और भक्तिके

साथ शास्त्रार्थका उपभोग करते हैं, वे ही यथार्थ फल प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। प्रगल्भ अथवा दाम्भिक व्यक्ति फल प्राप्त नहीं कर सकते।"

अतएव जो लोग शास्त्रको जानकर भी उसका ठीक ठीक व्यवहार नहीं करते, अथवा यथेच्छ व्यवहार करते हैं, वे स्वयं दोषी हैं। उनके इस कामसे शास्त्रकी अनुपयोगिता नहीं सिद्ध होती।

अतएव काम-शास्त्रकी उपयोगिता सर्वथा सिद्ध है। व्यक्ति विशेषके व्यवहार दोषसे किसी शास्त्रकी व्यर्थता सिद्ध नहीं हो सकती।

कुछ लोग पूछते हैं कि काम शास्त्रका प्रयोजन क्या है? हमारी समझमें काम सूत्रका प्रयोजन यह है,—"जो काम शास्त्रसे अनभिज्ञ हैं, वे केवल पशुओंकी तरह यथेच्छ प्रवर्त्तित होते हैं, फलतः संसारमें सुख स्वच्छन्दता प्राप्त करनेमें समर्थ नहीं होते। काम शास्त्र उनके उपायोंको विशद-भावसे बतलाता है जिनके अनुष्ठानसे मनुष्य दाम्पत्य-जीवनमें सुख प्राप्त करनेमें समर्थ होता है। यही एक ऐसा आश्रम है, जिसके सहारे जगतकी वृद्धि और पालन पोषण होता है। गृहस्थ ही सब आश्रमोंका—सारे जगतका मूल है। यदि इस आश्रमकी व्यवस्था ठीक रहे, यदि दम्प-

तिका जीवन सुखमय हो तो संसारमें निःसंदेह सुख और शान्तिकी वृद्धि होगी।

मनुष्य यौवन-कालके उद्दाम प्रवाहमें अपनेको स्थिर नहीं रख सकता। बड़े बड़े योगियोंकी समाधियां छूट जाती हैं। बड़े बड़े मुनियोंका पतन हो जाता है। मनुष्य यदि उसके प्रवाहमें अपनेको स्थिर न रख सके, तो कोई विशेष आश्चर्यकी बात नहीं। प्रलोभनोंसे दूर, एकान्त गिरि-निर्झरिणी तटस्थ प्रशान्त वनानीमें रहनेवाले मुनियों-का मानस जब मनसिजके प्रभावको रोकनेमें असमर्थ होता है, तब सैकड़ों सांसारिक प्रलोभनोंमें रहनेवाला मानव-मन मनोजकी महिमाको, उसके सामर्थ्यको हटा सकेगा, इसमें सन्देह है।

परन्तु काम-शास्त्रके अध्ययनसे मनुष्य अपनेको बहुत सम्हाल सकता है। आत्म-रक्षा कर सकता है। काम-शास्त्रको पढ़कर मनुष्य संयम करना सीखेगा, यह बहुत बड़ा लाभ होगा।

आजकल भारत स्वास्थ हीन मनुष्योंका निकेतन बन गया है। आजकल चालीसके बाद लोग बूढ़े समझे जाते हैं। बूढ़े सभी समयोंमें जवानोंकी अपेक्षा कमजोर माने गये हैं, अतएव उनकी बातें छोड़ दीजिए। शक्ति-शाली तरुणोंको

देखिए। कमर झुक गई है, चेहरा पके आमकी तरह पीला पड़ गया है, आंखें निस्तेज होकर गड्ढेमें घुस गई हैं और शरीरकी उन्नति रुक गई है।

इसके कारण अनेक हैं, परन्तु अतिरिक्त संभोग भी एक बहुत बड़ा कारण है। हमारी जातिको इस समय स्वस्थ पुरुषोंकी आवश्यकता है। ब्रह्मचारियोंकी ज़रूरत है। निर्बलों और व्यभिचारियोंकी नहीं। हम लोगोंको भरपेट खाना नहीं मिलता। देह ढकने भरको कपड़ा नहीं मिलता। गुलामी करते करते मनुष्यत्व मर गया है। ऐसे समयमें क्या ब्रह्मचर्यसे हीन होना उचित है?

व्यभिचार हमारे देशको अपेक्षा योरप इत्यादि देशोंमें अधिक है। फिर वहाँके मनुष्य हृष्ट पुष्ट और ताक़तवर क्यों होते हैं? ऐसा कुछ लोग पूछते हैं। ऐसे सज्जनोंसे हमारा कहना यह है कि हमारी और युरोपियनोंकी परिस्थिति भिन्न प्रकारकी है। उनकी जैसी सुविधायें हमको प्राप्त नहीं। लेकिन इससे यह न समझ लेना चाहिए कि, व्यभिचारका आधिक्य अपना प्रभाव नहीं दिखलाता। कुछ दिनोंके बाद देखनेको मिलेगा, कि व्यभिचारकी बढ़ी हुई, प्रवृत्तिने योरपका नाश कर दिया। जो लोग ताक़तवर होते हैं, उन्हें व्यभिचारसे तत्काल कुछ नहीं मालूम पड़ता,

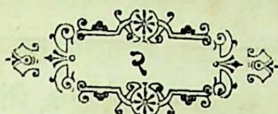
परन्तु बादको जब शक्ति क्षीण हो जाती है, तब मालूम होता है।

कामशास्त्रका अनुशीलन भारतमें पहले भी था। यद्यपि इसके अधिकांश ग्रन्थ संस्कृत साहित्यकी ही शोभा बढ़ा रहे थे, तथापि उनका कुछ कुछ विशेष आवश्यक अंश प्रचलित भाषाओंमें, हस्त-लिखित पुस्तकोंके रूपमें इधर उधर दिखाई देता था। साथ ही लोक परम्परासे, एक दूसरेके मुखसे सुनकर भी इस सम्बन्धमें बहुत कुछ जानकारी प्राप्त कर लेते थे। परन्तु वर्त्तमान कालमें संयत और सुश्रृङ्खलाबद्ध काम-ज्ञानको बतानेवाली पुस्तकोंका तो सर्वथा अभाव हो गया—उनके बदले कुछ उच्छृङ्खलताका उपदेश देनेवाली पुस्तकें प्रचलित हुईं—नयी सभ्यताके एक अनुरोधने इस विषयकी शिक्षा बिलकुल ही बन्द कर दी। परिणाम यह हुआ, कि उच्छृङ्खलता एकदम बढ़ गयी—इस सम्बन्धकी कुछ भी जानकारी लोगोंमें न रही। और इसी बातका यह दुःखद स्वरूप सामने दिखाई देने लगा, कि मनुष्य—भारतवासी—अधिक मात्रामें कामका सेवन करने लगे—दुराचार बढ़ गया, अल्पायु जीवन होने लगा, नारियां जीर्ण-शीर्ण होने लगीं और सन्तान—उसे मानव-सन्तान कहा जाये या नहीं—यह प्रश्न भी सम्मुख उपस्थित हो गया।

सारांश यह कि भारतवासियोंको दुर्दशाके अन्य कारणों में काम-ज्ञानका अभाव भी एक जबर्दस्त कारण हुआ। कामोपभोगके लिये वर्ज्य-दिवस, वर्ज्य कामिनी, वर्ज्य-काल, शरीरपर इन कालोंमें संयत न रहनेका परिणाम, ग्रहोंकी गतिके अनुसार इन वर्ज्य तिथियोंमें कामोपभोगकी हानियाँ—ये सभी ऐसी बातें लोग भूल गये, जिनकी जानकारीका ही यह फल था कि थोड़े समय पहले लोग दृढ़-चित्त, दृढ़-शरीर, दृढ़-प्रतिज्ञ और दृढ़-सन्तान उत्पन्न करनेवाले होते थे। अतएव इन सभी बातोंपर ध्यान देनेसे यह सिद्ध होता है, कि वर्त्तमान कालमें एक बार फिर इस ज्ञानका लोगोंमें प्रचार कर देना बहुत ही आवश्यक है और यह काम शास्त्र या काम-विज्ञानका अध्ययन और प्रचलन किये बिना नहीं हो सकता।

हमारी जाति जिस अवस्थासे गुजर रही है, उस दशामें उसे उचित है कि, इन्द्रिय-निरोध करे—ब्रह्मचर्य धारण करे। तभी उसका कल्याण होगा। काम-सूत्रके अध्ययनसे हमलोग इन्द्रिय निरोध करना सीखेंगे। काम-शास्त्रके ज्ञानसे यह बहुत बड़ा लाभ होगा और काम-शास्त्र हमें इसीलिए पढ़ना चाहिए।

—:०:—



इन्द्रिय-परिचालन

यौवन आनेके कुछ दिन पहले ही अर्थात् कैशोरकी सीमामें पहुँचने पर बालक और बालिकाओंके थोड़ा थोड़ा कामोद्रेक होने लगता है। इस समय यदि संगति अच्छी न हो अथवा उपयुक्त शिक्षा न मिली हो, तो उनका पतन अनिवार्य है। इस समयसे ही प्रत्येक माता, पिता, अध्यापक और अध्यापिकाको बालक बालिकाओंपर सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये। हमारे देशमें एक ज़माना ऐसा था, जब पिता-माता और शिक्षक-शिक्षयित्री, काम-विज्ञानके सम्बन्धमें बच्चोंको यथेष्ट उपदेश देते थे। इस विषयकी गुरुता और महत्ताको वे लोग समझते थे। अतः उन्हें स्वप्नमें भी यह धारणा न होती थी, कि यह विषय लज्जास्पद है। क्योंकि वे समझते थे, कि जिसके बिना सृष्टिका अस्तित्व असम्भव है, क्या वह विषय या

वह शिक्षा उपेक्षणीय है अथवा औचित्य-रहित है? परन्तु आजकल पिता-माता और अन्यान्य गुरुजन अथवा अभिभावक बालकोंको मानसिक, बौद्धिक, नैतिक और शारीरिक विकासके सम्बन्धमें अनेक शिक्षायें देते हैं, किन्तु जिस शिक्षाके बिना मनुष्य कभी भी पूर्ण मनुष्य नहीं हो सकता, जिससे जीवन भर वह काम लेता है, उस विषयको वे लज्जास्पद कह कर छोड़ देते हैं। यह आश्चर्यकी बात है! साथ ही यह हमारे दुर्भाग्यकी बात है, कि वह शिक्षा इस समय अप्रचलित है। इसका परिणाम भी हमलोगोंको हाथोंहाथ मिल रहा है, हमारा देश अब्रह्मचर्यशील और नाना रोग-ग्रस्त नर नारियोंसे पूर्ण है। यही नहीं, प्रायश्चित स्वरूप अल्पायु और अपुष्ट शिशुओंसे भी भर रहा है! अतएव, यह अवस्था उपेक्षणीय नहीं है।

जो लोग इस वृत्तिकी निन्दा करते हैं—कामके नामसे चिढ़ते हैं—उसे मोक्षका बाधक समझते हैं, उन सज्जनोंसे हमारा आग्रहपूर्वक निवेदन है, कि काम-प्रवृति कदापि निकृष्ट नहीं कही जा सकती है। भला बतलाइये, इसके बिना मनुष्य संख्याकी वृद्धि कैसे होती? कैसे सन्तानोत्पत्ति होती? और उस दशामें क्या सृष्टि प्रतिदिन ध्वंसके मार्गमें अग्रसर न होती? अतएव, यह तो मानना

ही पड़ेगा, कि यही विधिका विधान है। यही सृष्टिका शाश्वत नियम है। हाँ, इस बातको हम मुक्त-कण्ठसे घोषित करते है, कि काम-प्रवृत्तिका व्यवहार केवल सन्तानोत्पत्तिके लिये ही होना चाहिये। जो लोग इसका अपव्यवहार करते हैं, वे निश्चय ही प्रकृतिके नियमका उल्लङ्घन करते हैं और प्रकृति द्वारा अल्पायु और शक्तिहीन होनेका दण्ड भी पाते हैं। अतएव हमें यह कहनेमें कोई संकोच नहीं, कि यह महापाप है। किन्तु केवल इसी अवस्थामें। दूसरी अवस्थामें यह वृत्ति निन्दनीय या हेय नहीं है। अतएव हम प्रत्येक नर-नारीको सावधान कर देना चाहते हैं, कि वे कदापि काम-प्रवृत्तिका अपव्यवहार न करें।

मनुष्य पशुओंसे श्रेष्ठ क्यों है अथवा क्यों माना गया है? केवल इसीलिये तो, कि उसके विवेक-बुद्धि है, स्वाधीन इच्छा है, जिसका पशुमें नितान्त अभाव है। काम-इच्छा जिस प्रकार मनुष्यके जाग्रत होती है, वैसे ही पशुके भी। यह प्राणिमात्रके लिये स्वाभाविक है। परन्तु यह इच्छा मनुष्यके जिस प्रकार जाग्रत होती है, उसी प्रकार वह अपनी स्वाधीन इच्छा-शक्तिसे उसे दबा भी सकता है। पशुके यह स्वाधीन इच्छा नहीं होती, अतएव वह अपनी इच्छा शक्तिको किसी प्रकार भी शान्त नहीं कर सकता।

अतएव सिद्ध हुआ, कि संयम और सदाचारकी शिक्षाके बिना मनुष्य प्रकृत मनुष्य नहीं हो सकता। अतः प्रकृत मनुष्य बननेके लिये मनुष्यको—अति शैशव-कालसे ही शिक्षा—सदाचार और संयमकी शिक्षा मिलनी चाहिये। प्रत्येक माता-पिता और गुरु-जनका कर्त्तव्य है, कि वह अपने कर्त्तव्यसे विचलित न हो। दृढ़तापूर्वक—संकोच और लज्जा छोड़कर बच्चोंको इसकी शिक्षा दे।

संसारमें यह देखा गया है, कि कभी कभी अस्वाभाविक या अनैसर्गिक उपायोंसे भी मनुष्य कामाग्निको शान्त किया करता है अथवा यों कहना चाहिये, कि इन्द्रिय-परिचालन करता है। यह कार्य बहुत ही भयंकर है और महापाप है। इससे—अस्वाभाविक उपायोंसे इन्द्रिय परिचालन करनेसे—न केवल मनुष्यको शान्ति, सुख और स्वास्थ्य ही नष्ट होता है, प्रत्युत उसके शरीरमें अनेक कुत्सित व्याधियों-का प्रवेश भी हो जाता है:और वे व्याधियाँ जन्म भर अशेष यन्त्रणा दिया करती हैं। सुख दुःख मनुष्यके चारों ओर घूमता रहता है। मनुष्य यदि स्वयं उपयाचक होकर दुःख-को स्वीकार करले, तो उसका उत्तरदायी कौन है? अतएव पहलेसे ही सावधान होना उचित है।

यौवन-कालमें मनुष्य काम-वृत्तिकी उत्तेजनासे उत्ते-

जित हो जाता है। उस समय उसकी तबीयत आपेमें नहीं रहती और उसे चरितार्थ करनेके लिये या यों कहिये, कि अपना मनोवेग शान्त करनेके लिये युवक—अनैसर्गिक उपायोंसे हस्त-मैथुन, पुरुष-मैथुन और पशु-मैथुन पर्यन्त किया करते हैं। उन्हें यदि मालूम होता, कि इस कदर्य अभ्यासका परिणाम क्या होगा, तो सम्भवतः वे लोग इस कु-अभ्यासमें न पड़ते, सँभल जाते और अपने जीवनकी रक्षा करते।

अधिकांश लड़के और लड़कियाँ बहुत ही नीच सङ्गतिसे इस कदर्य वृत्तिको सीखती हैं। नौकर-चाकरोंसे ही प्रायः इसका श्रीगणेश होता है। कभी कभी असंयत माता-पिता या गुरुजनोंसे भी बच्चे इस बातको सीख जाते हैं और यह गन्दी काम-केलि, अर्द्ध-विकसित, निर्मम पुष्प-सदृश शिशु-हृदयोंमें काला दाग लगाकर सदाके लिए उनका सर्वनाश कर देती है।

पहले ही कह चुके हैं, कि मनुष्य जब कैशोर-अवस्थाकी शेष-सीमामें उपनीत होता है, उसी समयसे उसको कुछ कुछ कामोद्रेक होने लगता है। उस समय मनुष्यके प्रत्येक अंगकी वृद्धि होती रहती है, देहमें अनेक परिवर्त्तन होते रहते हैं। मनुष्यकी देहका यन्त्र-समूह पुष्ट हो जाता है और

मनोवृत्तियाँ सतेज हो जाती हैं। मालूम होता है, कि इस समय प्रबल उत्साह-राशि मानव मनको—उसके अन्तस्तल-को प्लावित कर देती है। पुरुषके वीर्य-कोषमें वीर्य उत्पन्न होता है और यौवनके चिन्ह उसके शरीरमें स्पष्ट रूपसे परिलक्षित होने लगते हैं। नारीका भी वक्षस्थल पुष्टता प्राप्त करता है और नितम्ब स्थूल हो जाते हैं। इस समय से ही नारीका डिम्ब-कोष डिम्बोंसे परिपूर्ण होता है और रजो-दर्शन भी इसी समयसे होने लगता है।

इस समय नर नारियोंके हृदयमें काम-भाव इतना प्रवल हो जाता है, कि वे इन्द्रिय-परिचालनके लिये व्याकुल हो उठते हैं। परन्तु इन्द्रिय-परिचालनका यह उपयुक्त समय नहीं है। इस समय इन्द्रिय-परिचालन करनेसे देह-का यन्त्र-समूह सम्पूर्ण रूपसे पुष्टि प्राप्त नहीं कर सकता। जो यौवन-काल ऋषियोंकी साधनाकी सामग्री है, उसके पूर्ण होते न होते मनुष्य जराक्रान्त हो जाता है। अकाल बार्द्धक्य उसे दबा लेता है। इस समय स्त्री-पुरुषोंको विशेष सावधान होकर चलना चाहिये, अन्यथा विषमय परिणाम होना अवश्यम्भावी है।

इस समय काम-वृत्तिका आश्रय ग्रहण करनेसे मनुष्य मनुष्यत्व-हीन हो जाता है। उसके अंग प्रत्यङ्ग निकम्मे

हो जाते हैं। उस समय इन्द्रिय-परिचालन बड़ा भयंकर होता है। किन्तु अफसोस यह है, कि मनुष्य इस समय संयम-रक्षा नहीं करता। दुष्टोंके संसर्गसे ऐसी अनेक वाहियात बातें सीख लेता है, जिनसे जीवन भर उसे दुःख मिलता है—उसका जीवन नष्ट हो जाता है। युवकोंमें इस अवस्थामें हस्त-मैथुन और पुरुष-मैथुनकी प्रवृत्ति बहुत देख पड़ती है, कोई कोई वेश्यागमन भी करने लगते हैं।

हस्त मैथुनके अनेक कारण हैं। लड़के प्रायः यह आदत अपने समवयस्कोंसे सीखते हैं, परन्तु इस हस्त-मैथुन के प्रादुर्भाव और प्रचारका कारण—हमारी समझमें तो एकमात्र कारण है, पुरुष-मैथुन यह सर्वनाशी कुप्रथा कब, कहाँपर, किस देशमें, कैसे और किसके द्वारा प्रचलित हुई थी, यह हमें नहीं मालूम, किन्तु सुना है, समग्र भूमण्डलमें जाति धर्म निर्विशेषसे यह प्रथा अबाध रूपसे प्रचलित है। बड़ी अवस्थाके लड़के, अपेक्षाकृत छोटी अवस्थाके लड़कोंके साथ यह व्यभिचार करते हैं और वे छोटे लड़के, जिनके मन नितान्त भोले भाले, सरल और सुकुमार हैं, अपेक्षाकृत बड़ी अवस्थाके लड़कोंसे ही इन्द्रिय-मर्दन करना सीखते है। वे ही नराधम, सरलमति बालकोंको आनन्दकी खानि बतला देते हैं

और बेचारे लड़के इस प्रकार हस्त-मैथुनमें प्रवृत्त हो जाते है।

हाय! यदि बालकोंको यह मालूम हो जाता, कि हस्त-मैथुन द्वारा जो यह श्वेत वर्णका तरल पदार्थ हम बाहर निकाल कर फेंक देते हैं, वही जीवनकी सार वस्तु है, उसके अभावमें एक दिन बेमौत मरना होगा, जीवन्मृत होकर रहना होगा, स्मरणशक्ति. विचार-शक्ति, साहस और धैर्य प्रभृति सद्गुणोंका लोप हो जायगा, अवस्था पशुसे भी अधम हो जायगी, तो वे ऐसा न करते। परन्तु उन्हें बतावे कौन?

हमारी समझमें माता, पिता और अन्य आत्मीय-स्वजनोंको इस समय आगे बढ़ना होगा। उनको यह ख्याल क्षण भरके लिये भूल जाना होगा कि, हमारा लड़का भोलाभाला है। हम उनको यह बतला देना चाहते हैं, कि जो भोलेभाले होते हैं, वही इस पापमें अधिक फँस जाते है—ऐसे अत्याचारियोंके शिकार आसानीसे हो जाते हैं। मां-बाप लड़कोंको सावधान करें, सतर्क करें, उन्हें बतलायें कि ऐसे नीचोंका संसर्ग किसी प्रकार न होने पाये। जिनके लड़के बाहर रहते हैं, स्कूलोंमें पढ़ते हैं, दूर रहनेके कारण, गरीब होनेके कारण, मां बाप

जिनके साथ नहीं रह सकते, वे भी चाहें, तो इस सम्बन्धमें बहुत कुछ कर सकते हैं।

जो लोग लज्जा या संकोच करते हों, उन्हें यह समझना चाहिये कि, जिस प्रकार वे अपने लड़कोंको चोरोंसे, गिरह कटोंसे, सावधान कर देते हैं और उनको सब बातें भलीभाँति बतला देते हैं—उस समय उन्हे लज्जा या संकोच नहीं प्रतीत होता, वैसे ही इस कार्यमें भी न होना चाहिये। माता-पिता जबतक उचित ध्यान न देंगे, तबतक इस अवस्थामें परिवर्त्तन होना असम्भव है।

हम ऊपर लिख आये हैं, कि हस्त-मैथुनसे भयंकर व्याधियाँ शरीरमें घुस आती हैं और वे शरीरको खोखला बना कर ही छोड़ती हैं। डाक्टरोंकी राय है, कि क्षय भी इसी रोगका परिणाम है। पाठकोंको यह बतलाना न होगा, कि क्षय रोग कितना भयंकर होता है। और भी अनेक प्रकारकी व्याधियाँ—जैसे नपुंषकता प्रभृति भी इसीसे हो जाती हैं। अतएव इसे दूर करना हम सब लोगोंका प्रधान और पहला काम होना चाहिये। कौन माता-पिता ऐसा पाषाण-हृदय होगा, जो अपनी सन्तानकी मङ्गल-कामना न करता हो? कौन यह चाहता होगा कि, उसके बच्चोंकी इस प्रकारकी शोचनीय अवस्था हो जाय?

किशोर अवस्थाका आरम्भ ही इसकी शिक्षाके लिये उपयुक्त समय है। इसी समय लड़कोंको वीर्यकी महत्ता समझा देनी चाहिये। वही माली—वह अत्तार कितना मूर्ख है, जो मनो फूलोंसे इकट्ठा किये हुए अतरको नालियोंमें बहाता फिरता है!

पुरुषोंमें ही नहीं, कन्याओंमें भी इन दुर्व्यसनोंका प्रचार है। उनमें इस रोगका प्रचार तरुणी विधवाओं, नीच दासियों या दुराचारिणी स्त्रियों द्वारा होता है। जो लड़कियां पिताके घरमें सयानी हो जाती हैं, उनमें भी इसी प्रकारके रोग देखनेमें आते हैं। मां बापको उचित है, कि वे कन्याओंपर खूब सतर्क दृष्टि रक्खें। ऐसी किसी भी स्त्रीसे उसका सम्बन्ध या संसर्ग न होने दें, जिसके आचार विचार पर उन्हें सन्देह हो। तभी वे अपनी कन्याओंकी पवित्रताकी रक्षा कर सकेंगे।

इस कु-अभ्यासके फलसे बालिकाओंके शरीरमें अनेक रोगोंका सञ्चार हो जाता है। उनके रज-प्रवर्त्तन बहुत देर करके होता है। गर्भ धारण करनेका प्रधान यन्त्र डिम्बकोष (ovary) और जरायु (uterus) विकृत हो जाता है। शरीर दिन प्रतिदिन रक्त-हीन और शुष्क होता जाता है। हिस्टीरिया, श्वेत प्रदर तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी और

अनेक रोगोंका प्रादुर्भाव हो जाता है और शरीर बराबर क्षीण होता रहता है। किसी काममें स्फूर्त्ति नहीं रह जाती। यहाँ तक कि किसी किसीकी गर्भ-धारणकी क्षमता पर्यन्त लुप्त हो जाती है। वे केवल जीवन्मृत अवस्थामें जीवन अतिवाहित करती रहती हैं। इसकी अपेक्षा और क्या शोचनीय हो सकता है?

इस रोगसे ग्रस्त होनेसे पुरुष पुरुषत्व-हीन हो जाता है और स्त्री स्त्रीत्व-हीन। क्या ऐसी दशामें मां बापको इन बातोंकी उपेक्षा करना उचित है? कदापि नहीं। और भी अनेक प्रकारसे इन्द्रिय-परिचालन होता है। वीर्यका अपव्यवहार किया जाता है। यह कहना अनावश्यक है कि, माता पिता इस सम्बन्धमें विशेष सतर्कताका अवलम्बन करें।

संसारमें चिरशान्ति, चिर-सुख प्राप्त करनेके लिये किन उपायोंसे स्वस्थ और सबल रहा जा सकता है— मनुष्य मात्रको वह पहलेसे ही जानना उचित है। हमारे इस शरीरके पोषणके लिये अनेक प्रकारके खाद्य द्रव्योंका प्रयोजन होता है। उसी आहार्यसे शोणित या रक्त उत्पन्न होता है। उस शोणितसे मानव देहके सारभूत पदार्थ वीर्यकी उत्पत्ति होती है। इन्द्रिय-परिचालनके फलसे वह वीर्य

किशोर अवस्थाका आरम्भ ही इसकी शिक्षाके लिये उपयुक्त समय है। इसी समय लड़कोंको वीर्यकी महत्ता समझा देनी चाहिये। वही माली—वह अत्तार कितना मूर्ख है, जो मनो फूलोंसे इकट्ठा किये हुए अतरको नालियोंमें बहाता फिरता है!

पुरुषोंमें ही नहीं, कन्याओंमें भी इन दुर्व्यसनोंका प्रचार है। उनमें इस रोगका प्रचार तरुणी विधवाओं, नीच दासियों या दुराचारिणी स्त्रियों द्वारा होता है। जो लड़कियां पिताके घरमें सयानी हो जाती हैं, उनमें भी इसी प्रकारके रोग देखनेमें आते हैं। मां बापको उचित है, कि वे कन्याओंपर खूब सतर्क दृष्टि रक्खें। ऐसी किसी भी स्त्रीसे उसका सम्बन्ध या संसर्ग न होने दें, जिसके आचार विचार पर उन्हें सन्देह हो। तभी वे अपनी कन्याओंकी पवित्रताकी रक्षा कर सकेंगे।

इस कु-अभ्यासके फलसे बालिकाओंके शरीरमें अनेक रोगोंका सञ्चार हो जाता है। उनके रज-प्रवर्त्तन बहुत देर करके होता है। गर्भ धारण करनेका प्रधान यन्त्र डिम्बकोष (ovary) और जरायु (uterus) विकृत हो जाता है। शरीर दिन प्रतिदिन रक्त-हीन और शुष्क होता जाता है। हिस्टीरिया, श्वेत प्रदर तथा जननेन्द्रिय सम्बन्धी और

अनेक रोगोंका प्रादुर्भाव हो जाता है और शरीर बराबर क्षीण होता रहता है। किसी काममें स्फूर्त्ति नहीं रह जाती। यहाँ तक कि किसी किसीकी गर्भ-धारणकी क्षमता पर्यन्त लुप्त हो जाती है। वे केवल जीवन्मृत अवस्थामें जीवन अतिवाहित करती रहती हैं। इसकी अपेक्षा और क्या शोचनीय हो सकता है?

इस रोगसे ग्रस्त होनेसे पुरुष पुरुषत्व-हीन हो जाता है और स्त्री स्त्रीत्व-हीन। क्या ऐसी दशामें मां बापको इन बातोंकी उपेक्षा करना उचित है? कदापि नहीं। और भी अनेक प्रकारसे इन्द्रिय-परिचालन होता है। वीर्यका अपव्यवहार किया जाता है। यह कहना अनावश्यक है कि, माता पिता इस सम्बन्धमें विशेष सतर्कताका अवलम्बन करें।

संसारमें चिरशान्ति, चिर-सुख प्राप्त करनेके लिये किन उपायोंसे स्वस्थ और सबल रहा जा सकता है— मनुष्य मात्रको वह पहलेसे ही जानना उचित है। हमारे इस शरीरके पोषणके लिये अनेक प्रकारके खाद्य द्रव्योंका प्रयोजन होता है। उसी आहार्य से शोणित या रक्त उत्पन्न होता है। उस शोणितसे मानव देहके सारभूत पदार्थ वीर्यको उत्पत्ति होती है। इन्द्रिय-परिचालनके फलसे वह वीर्य

शरीरसे बाहर निकल जाता है। डाक्टर ग्रेहमका कथन है, कि स्वाभाविक उपायोंकी अपेक्षा अस्वाभाविक उपायों द्वारा वीर्य पात करनेसे चौगुना वीर्य नष्ट होता है।

जिस वीर्य या शुक्र द्वारा शरीर गठित होता है, वह वीर्य यदि मनुष्य असमयमें—असत् उपायोंसे अपव्यय करता रहे, तो वह किस प्रकार स्वस्थ रह सकता है? देह यदि स्वस्थ न रहे तो मनुष्य कोई काम नहीं कर सकता। काम न करनेसे अभाव मनुष्यको निगल जाता है और समस्त संसार हाहाकारसे पूर्ण हो जाता है।

इस वीर्यको जो व्यक्ति आजीवन निष्ठाके साथ धारण करता है, जो व्यक्ति प्रयोजनके अतिरिक्त इन्द्रिय-परिचालन करके इस वीर्यको स्खलित नहीं करता, उसका रूप, बुद्धि, मेधा, आयु और बल अलौकिक भावसे बढ़ता रहता है। वह अनन्त यौवन प्राप्त करके सुख और शान्तिसे जीवन अतिवाहित करता है। यह परीक्षित सत्य है। महावीर भीष्मने इस शुक्रको धारण करके इच्छा-मृत्यु प्राप्त की थी। योगशास्त्रमें वीर्यको बिन्दु नामसे अभिहित किया गया है। देवादिदेव महादेवने बारम्बार कहा है, कि बिन्दु धारण ही मनुष्यका जीवन है और इसका

स्खलन ही मृत्यु। इस बातको हम दूसरे शब्दोंमें इस प्रकार कह सकते हैं कि, ब्रह्मचर्य्य जीवन है और व्यभिचार मृत्यु।

जिन्हें लड़कपनसे ही उचित शिक्षा नहीं मिली है, जिन्हें संयम और सदाचारका अभ्यास नहीं हैं, वे इस वीर्य्यको कदापि धारण नहीं कर सकते। संयम व्रतके अभ्यासके बिना कदापि वीर्यको धारण नहीं किया जा सकता। जिन्होंने वीर्य धारण किया था, जिन्होंने संयमका अभ्यास किया था, वे सभी संसारमें महान पुरुष हो गये हैं। उन्होंने उससे असीम-शक्ति प्राप्त की थी और उस अमोघ-शक्ति द्वारा उन्होंने काया पलट दी थी। जिन्होंने संयमका अभ्यास किया है, वे संसारका असीम कल्याण कर रहे हैं और जो भविष्यमें वीर्य धारण करेंगे, वे ही देशका प्रकृत कल्याण कर सकेंगे।

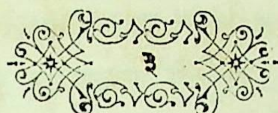
परशुराम, हनुमान्, भीष्म, शंकराचार्य्य, दयानन्द और विवेकानन्द सभी इसी श्रेणी के हैं। हिन्दू-समाज इनसे भलीभांति परिचित हैं। आप यह न समझिये, कि हम ब्रह्मचर्य्यका संकुचित अर्थ कर रहे हैं। हम ब्रह्मचर्यका प्रयोग उस अर्थमें करते है, जिसमें मनु भगवान्ने किया है। यथा :—

निन्द्या स्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ।
ब्रह्मचार्यैव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ॥ *

संयम अभ्यासके द्वारा इस वीर्यको धारण करके, देहके यन्त्र-समूहके पुष्ट हो जाने पर तब मनुष्यको व्याह करना उचित है। उसके पहले व्याह करने या असमय इन्द्रिय-परिचालन करनेसे कभी सुफल नहीं प्राप्त हो सकता। इच्छानुसार स्वस्थ और सबल पुत्र कन्याके जनक-जननी नहीं हुआ जा सकता। अतएव माता-पिताको इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

---

* स्त्रियोंको जिस दिनसे रजोदर्शन आरम्भ होता है, उस दिनसे सोलह दिन तकका समय ऋतुकाल माना गया है। इन सोलह दिनोंमेंसे पहले चार दिन और ग्यारहवाँ तथा तेरहवाँ दिन स्त्रीसंगके लिये निषिद्ध माने गये हैं। पर्वणीके दिन भी स्त्रीसंग करना मना है। चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा और संक्रान्ति यह पाँच तिथियाँ पर्वणी मानी गयीं हैं। विषम रात्रियोंमें स्त्रीसंग करनेसे कन्या उत्पन्न होती है, इसलिये पुत्रार्थीके लिये वेभी त्याज्य हैं। उपरोक्त श्लोकमें बतलाया गया है, कि जो इन दूषित रात्रियों-को छोड़कर अन्य रात्रियोंमें स्त्रीसंग करता है, वह चाहे जिस आश्रम-में हो, तब भी ब्रह्मचारी ही गिना जा सकता है। देखिये मनुस्मृति तीसरा अध्याय श्लोक ४५ से ५० तक।



काम-विज्ञानकी शिक्षा।

काम विज्ञानकी आवश्यकता पर पर्याप्त विचार करनेके बाद जब हम आगे बढ़ते हैं और इस बात पर विचार करते हैं, कि काम विज्ञान क्या है, उसके प्रधान अंग कौन हैं और किन बातोंका उसके साथ सम्बन्ध हैं, तब सर्वप्रथम हमारी दृष्टि कामसूत्रमें अंकित ६४ कलाओंपर पड़ती है। इनकी गणना काम विज्ञानकी अंग विद्याओंमें की गयी है, क्योंकि इनसे न केवल मनुष्यको अपनी जीविका ही उपार्जित करनेमें सहायता मिलती है, बल्कि इनके कारण दाम्पत्य-प्रेममें भी वृद्धि होती है। कला-कुशल दम्पति यह समझ सकते हैं, कि किस प्रकार सांसारिक विडम्बना जनित चिन्ता और उद्वेग दूरकर सानन्द जीवन व्यतीत करना चाहिये और किस प्रकार इस यातनामय संसारमें स्वर्गीय दृश्य उपस्थित करना चाहिये।

उन्हें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान रहता है, अतः समय पड़ने पर वे एक दूसरेका मनोरंजन या एक दूसरेको सहायता भी कर सकते हैं। इसीलिये वात्सायन मुनिने प्रत्येक स्त्री पुरुषको इन कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेकी आज्ञा दी है।

बच्चोंको काम विज्ञानकी शिक्षा देना कितना आवश्यक है और यह शिक्षा न देनेसे उनका किस तरह सर्वनाश होता है—यह हम पिछले अध्यायोंमें अंकित कर चुके हैं। जब हमें अपने बच्चोंको खाने पीने, चलने फिरने, खेलने कूदने और संसारके यावत् कर्म करनेकी शिक्षा देनी पड़ती है, तब यह कैसे कहा जा सकता है, कि उन्हें काम विज्ञान-की शिक्षा देनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। प्रकृति इस विषयकी शिक्षा अवश्य देती है, पशु और पक्षी उसीसे इसकी शिक्षा ग्रहण करते है, परन्तु मानव-सन्तान प्रकृति पर निर्भर नहीं कर सकती। उसे प्रकृतिके भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। मानव-सन्तानको ईश्वरकी ओरसे कुछ ऐसी शक्तियां प्राप्त हुई हैं, जिनके बल पर वह प्रकृतिके सामने माथा उठा सकती है और उसके नियमोंको उल्लंघन कर सकती है। प्रकृति इसके लिये उसे दण्ड दे सकती है परन्तु नियम माननेके लिये उसे बाध्य नहीं कर सकती। पशु पक्षियोंके सन्बन्धमें यह बात नहीं हैं। उनमें प्रकृतिके

नियम उल्लंघन करनेका सामर्थ्य नहीं है।) इसीलिये वे प्रकृतिके नियमानुसार नियत समय पर ही काम प्रवृत्तिमें पड़ते हैं और उन्हें ब्रह्मचर्य या काम-विज्ञानकी शिक्षा नहीं देनी पड़ती।

प्राचीनकालमें, जिस समय हम लोगोंका जीवन आज-कलकी अपेक्षा कहीं अधिक सरल और स्वाभाविक था, उस समय भी हमारे बच्चोंको इस विषयकी शिक्षा दी जाती थी और ऐसा करना आवश्यक समझा जाता था। आज उसकी आवश्यकता कितनी अधिक है, यह अनुमान सहज ही किया जा सकता है। कामशास्त्रकी शिक्षासे हानिकी अपेक्षा लाभ अधिक है। हमारी धारणा है, कि प्रत्येक विचारशील मनुष्य हमारी इस बातसे सहमत हुए बिना नहीं रह सकता।

परन्तु जो लोग यह स्वीकार करते हैं, कि बच्चोंको काम विज्ञानकी शिक्षा देना आवश्यक है और उन्हें इस विषयकी शिक्षा अवश्य देनी चाहिये, वे भी इस गुत्थीको नहीं सुलझा सकते, कि उन्हें यह शिक्षा किस प्रकार दी जाय? वास्तवमें—खासकर हम भारतवासियोंके लिये—यह बड़ी जटिल समस्या है। इसका हल करना साधारण बुद्धिके मनुष्योंका काम नहीं है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने यह समस्या कड़े अच्छे ढँगसे हल कर ली है। हमलोग किसी हद तक उनका अनुकरण करें तो कोई आपत्ति भी नहीं हो सकती, क्योंकि वर्त्तमान परिस्थितिमें उनकी बहुत सी बातें ग्रहण करने योग्य हैं। पाश्चात्य वैज्ञानिक बहुत सोच विचारके बाद इस सिद्धान्त पर पहुँचे हैं, कि बच्चोंको यदि उनके माता-पिता या शिक्षकों द्वारा काम विज्ञानकी शिक्षा नहीं दिलायी जाती, तो वे नीच प्रकृतिके नौकर चाकर या ऐसे ही अन्य मनुष्यों द्वारा इस विषयकी विषैली शिक्षा प्राप्त करते हैं, जो अन्ततोगत्वा उनके सर्वनाशका कारण हो पड़ती है। इसलिये बच्चोंको बाल्यावस्थासे ही, उनके माता पिता और शिक्षकों द्वारा काम-विज्ञानकी शिक्षा दिलानी चाहिये।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने बच्चोंको यह :शिक्षा देनेकी जो प्रणाली स्थिर की है, वह बहुत ही उत्तम और मननीय है। बहुत छोटी अवस्थामें बच्चोंको किस्से कहानियों पर बड़ा प्रेम होता है, अतः उस अवस्थामें बच्चोंको कहानियों द्वारा काम विज्ञानकी साधारण बातें बतलानेका उन्होंने आदेश दिया है। थोड़े दिनोंके बाद जब बच्चे कुछ बड़े होते हैं, तब उनके हृदयमें कौतूहलकी भावना जाग्रत होती है और वे प्रत्येक बातका रहस्य जाननेके लिये उत्सुक हो उठते हैं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने इस अवस्थामें उन्हें पशु-पक्षी और फल फूलोंके दाम्पत्य-जीवनकी कथाओं द्वारा काम-विज्ञान-की मोटी मोटी बातें बतलानेकी सलाह दी है। इसके बाद तेरह चौदह वर्षकी अवस्थामें जब लड़कोंके शरीरमें वीर्य उत्पन्न होता है और लड़कियोंको रजोदर्शन होता है या होनेका समय नजदीक आता है, तब उन्होंने सलाह दी है, कि बच्चोंके माता पिता, अभिभावक या शिक्षागुरुओंको चाहिये, कि उस समय वे उन्हें स्पष्ट शब्दोंमें सृष्टिका रहस्य बता-कर खतरेकी सूचना दे दें और कह दें कि इस अवस्थामें यदि तुमने कोई अनर्थ किया, तो तुम्हें आजीवन पश्चाताप करना होगा। उन्होंने यह भी स्थिर किया है, कि इस प्रकारकी मौखिक शिक्षाके साथ साथ बच्चोंके हाथमें इसी विषयकी सरल और निर्दोष पुस्तकें भी देनी चाहिये, जिनसे उन्हें इस विषयकी आवश्यक जानकारी प्राप्त हो सके।

हमारे यहाँ इस समय न ऐसी पुस्तकें ही हैं, जो बच्चोंके हाथमें दी जा सकें, न ऐसे माता-पिता ही हैं, जो अपने बच्चोंको उपरोक्त प्रकारसे शिक्षा दे सकें। * इसका प्रधान

---

* हमारे कार्यालयसे शीघ्र ही कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित होंगी, जो बच्चोंके हाथमें देने लायक होंगी और जिनसे माता पिता उप-रोक्त शिक्षा-प्रणालीके सम्बन्धमें पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

कारण शायद यह है, कि लोग इन बातोंकी आवश्यकता ही नहीं समझते, परन्तु प्राचीन कालमें यहाँ यह आवश्यक समझा जाता था और बालक तथा बालिकाओंको इस विषयकी शिक्षा भी दी जाती थी। वात्सायन मुनिने अपने काम-सूत्रमें लड़कोंको इस विषयकी शिक्षा देनेके सम्बन्धमें लिखा है कि :—

धर्मार्थाङ्ग विद्याकालाननुपरोधयन् कामसूत्रं तदङ्गविद्या श्च पुरुषोऽधीयीत ॥ १ ॥ काम० सू० सा० अ० ३ य अ० ।

अर्थात्, पुरुषोंको धर्म विद्या (श्रुति स्मृति इत्यादि) अर्थ विद्या (कृषि, गोरक्षण, इत्यादि) इन दोनोंकी अङ्ग-विद्या (दण्ड नीति और योगक्षेम-साधन) तथा आन्वीक्षि-की विद्या (तत्व निर्णय—वस्तुओंका मूल्य निर्धारण इत्यादि) प्रभृति प्रधान विद्याओंका यथासमय अध्ययन करते हुए, इनके अध्ययनमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़े इस प्रकार बीच बीचमें काम सूत्र और उसकी अङ्ग विद्याओंका अध्ययन करना चाहिये। वात्सायन मुनिके इस सूत्रसे मालूम होता है, कि प्राचीन कालमें भारतवासियोंको गुरुगृहोंमें ही अन्यान्य विद्याओंके साथ साथ काम-विज्ञानकी शिक्षा मिलती थी। निःसन्देह वह समय बड़ा सुहावना रहा होगा, जब गुरु विद्यार्थियोंको निःसंकोच भावसे शिक्षा देते

होंगे। पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको भी वात्सायन मुनिने काम शास्त्रकी शिक्षा देनेका आदेश दिया है। उन्होंने लिखा है कि :—

प्राग् यौवनात् स्त्री। प्रत्ता च पत्युरभिप्रायात् ॥ २ ॥

अर्थात् स्त्रियोंको यौवनके पहले ही (किशोरावस्थामें) पिताके घरमें कामसूत्र और उसकी अङ्ग विद्याओंका अध्ययन करना चाहिये। और यदि विवाह हो चुका हो, तो पतिके आदेशानुसार इस विषयकी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये। उन्होंने ज़ोर देकर लिखा है, कि स्त्रियोंको शास्त्र ग्रहणका अधिकार नहीं है, यह कह कर उन्हें इस शिक्षासे वंचित रखना ठीक नहीं।

वात्सायन मुनिकी इन बातोंसे सिद्ध होता है, कि प्राचीन कालमें पुरुषोंकी भांति स्त्रियोंको भी काम-विज्ञानकी शिक्षा दी जाती थी, परन्तु दोनोंके शिक्षागुरु एक न होते थे। पुरुषोंको गुरुकुलमें शिक्षागुरुओं द्वारा शिक्षा मिलती थी और स्त्रियोंको पितृ-गृहमें अथवा विवाह हो जानेपर पति द्वारा इस विषयकी शिक्षा मिलती थी। स्त्रियोंके सम्बन्धमें वात्स्यायन मुनिने लिखा है, कि उन्हें किसी निर्जन प्रदेशमें विश्वास योग्य व्यक्ति द्वारा कामशास्त्रकी बातें जान लेना चाहिये। परन्तु पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंको शिक्षा देनेके लिये

विश्वासपात्र गुरु मिलना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव है, इसलिये उन्हें शिक्षा दिलानेके लिये किन लोगोंको नियुक्त करना चाहिये, यह बतलाते हुए उन्होंने लिखा है कि :—

"आचार्यास्तु कन्यानां प्रवृत्त पुरुष सम्प्रयोगा सहसम्प्र वृद्धा धात्रेयिका तथाभूता वा निरत्यय सम्भाषणा सखी, सवयाश्च मातृ स्वसा, विस्रब्धा तत्स्थानीया वृद्ध दासी पूर्व संसृष्टा वा भिक्षुकी, स्वसा च विश्वासप्रयोगात् ॥१३॥

अर्थात् कन्याकी पहली शिक्षयित्री हो सकती है धात्री कन्या, जो पहले पुरुष सम्प्रयोग अर्थात् रमण कार्यमें नियुक्त हो चुकी हो और जो एक साथ लालित पालित एवं वर्धित हुई हो। यह कन्याके लिये पहला आचार्य हुआ। दूसरा आचार्य हो सकती है कन्याकी सखी, जिसके साथ वह निर्दोष भावसे सम्भाषण कर सके। तीसरा आचार्य कन्याकी समवयस्क मौसी हो सकती है। चौथा आचार्य है मौसीके समान विश्वस्त बूढ़ी दासी। पांचवां आचार्य है भिक्षुकी, जिसके साथ कन्याकी प्रीति हो चुकी हो और षष्ठ आचार्य है कन्याकी विश्वासस्पद बड़ी बहन। इनसे कन्याको कामसूत्र और अङ्ग विद्याओंकी शिक्षा दिलानी चाहिये। परन्तु यह सब स्त्रियां ऐसी होनी चाहियें, जो माता हो चुकी हों या दाम्पत्य-जीवनका अनुभव कर चुकी

हों, क्योंकि बिना इसके वे कन्याको आवश्यक बातें बतलाने-में समर्थ नहीं हो सकतीं।

इस प्रकार प्राचीनकालमें उपयुक्त गुरुओं द्वारा बालक बालिकाओंको काम-विज्ञानकी शिक्षा दिलाई जाती थी। इसे हम बुरा नहीं कह सकते। यदि आज भी लड़कोंके लिये विश्वासपात्र गुरु और लड़कियोंके लिये धात्री-कन्या आदि मिल सकें, तो उनसे उन्हें काम-विज्ञानकी शिक्षा दिलानेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं हो सकती, क्योंकि हमारे यहांके माता पिता परम्परागत संस्कारके कारण बच्चोंको निःसंकोच भावसे इस विषयकी शिक्षा नहीं दे सकते, न रक्त मज्जागत लज्जाके कारण बच्चे ही उनसे इस सम्बन्धमें कुछ पूछ सकते हैं; परन्तु हमारी धारणा है, कि संसारका अर्वाचीन वायुमण्डल इतना दूषित हो गया है, कि इस सम्बन्धमें आजकल किसीका विश्वास नहीं किया जा सकता। न भोली भाली कन्यायें मूर्खा स्त्रियोंको सौंपी जा सकती हैं, न कोमल मति बालक चरित्रहीन शिक्षा गुरुओंके ही भरोसे छोड़े जा सकते हैं। इसलिये, वर्त्तमान समयमें लज्जा और संकोचको छोड़कर, अपने प्यारे बच्चोंकी भलाईके लिये माता पिताको ही उन्हें इस विषयकी आवश्यक बातें बतला देनेमें कुण्ठित न होना चाहिये।

— काम-विज्ञान —

पाश्चात्य देशोंमें बच्चोंको काम विज्ञानकी शिक्षा किस प्रकार दी जाती है, इसका दिग्दर्शन हम पहले ही करा चुके हैं। अब हम अपने पाठकोंको प्राचीन भारतकी शिक्षा प्रणालीका दिग्दर्शन करायेंगे। उससे पाठकोंको मालूम हो जायगा, कि भारतवासियोंको कितनी उत्कृष्ट शिक्षा दी जाती थी। हम समझते हैं, कि उस शिक्षासे बालक बालिकाओंका न केवल व्यक्तिगत ही उपकार होता था, बल्कि विवाह होनेके बाद उनका दाम्पत्य-जीवन भी सुखमय हो जाता था।

वात्स्यायन मुनिने अपने काम सूत्रमें काम शास्त्रकी अंग विद्याओंके नामसे ६४ कलाओंका उल्लेख किया है और प्रत्येक स्त्री पुरुषके लिये उनका अध्ययन करना आवश्यक बतलाया है। पहले इनमेंसे नृत्य, गीत, वाद्य और चित्र-कलादि चौबीस कलायें कर्माश्रित ; अक्षविद्या, रूप संख्या, नयज्ञान आदि बीस कलायें द्यूताश्रित ; और भाव ग्रहण, प्रत्यङ्गदान आदि पन्द्रह कलायें शयनोपचारिक तथा शापदान और शपथ क्रिया आदि चार कलायें उत्तरकला कहलाती थीं। कर्माश्रित बीस कलाओंके ज्ञानसे मनुष्य धनोपार्जन करने योग्य बनता था, द्यूताश्रित कलाओंसे उसे स्वार्थ-साधनका तरीका मालूम होता था और शयनोपचारिक कलाओंसे दाम्पत्य-जीवनको सुखमय बनानेकी विधि ज्ञात होती थी।

यह सब कलायें मूलकलाओंके नामसे प्रसिद्ध थीं और प्राचीन कालमें केवल इन्हीं कलाओंका यहां प्रचार था। परन्तु बादको शयनोपचारिक * और उत्तरकलायें † इन कलाओंसे पृथक कर दी गयीं और उनमें नाना प्रकारके

---

* शयनोपचारिक कलायें यह थीं :—(१) भाव ग्रहण अर्थात् स्त्री या पुरुषोंका मनोभाव जानना (२) प्रत्यङ्गदान अर्थात् अङ्ग प्रत्यङ्ग द्वारा आलिङ्गन (३) नख और दन्त प्रयोग (४) नीवी स्रंसन (५) संस्पर्शकी अनुलोमता अर्थात् किस अङ्गके बाद किस अंगको छूनेसे सुख प्राप्त होता है यह जानना (६) परमार्थ कौशल अर्थात् दाम्पत्य संयोग (७) हर्षण अर्थात् हँसनेका तरीका (८) समानार्थता कृतार्थता अर्थात् स्त्री पुरुषकी एक साथ क्रिया समाप्ति, (९) अनुप्रोत्साहन अर्थात् मनोभाव जानकर कार्यमें उत्साह दान करना (१०) मृदु क्रोध प्रवर्त्तन अर्थात् धीरे धीरे क्रोध बढ़ाना (११) सम्यक् क्रोध निवर्त्तन अर्थात् बढ़े हुए क्रोधको एकदम रोक देना (१२) क्रुद्ध प्रसाधन—क्रोधीको शान्त करनेका तरीका (१३) सुप्त परित्याग (१४) चरमस्वाप विधि—इच्छानुसार मृत्यु प्राप्त करना (१५) गुह्य गूहन—छिपाने योग्य बातोंको छिपाना।

† उत्तर कलायें यह थीं (१) शापदान - किसीके प्रतिकूल आचरणसे असन्तुष्ट हो शाप देना (२) शपथ क्रिया—किसी बात पर जोर देनेके लिये शपथ लेना या देना (३) प्रस्थितानुगमन—जब कोई घरसे जाने लगे, तब कुछ दूर तक उसके पीछे पीछे जाना (४) बारम्बार निरीक्षण।

संशोधन परिवर्धन कर उनकी संख्या ६४ कर दी गयी। इसी तरह नृत्य और गीतादिक उपायलभ्य कलाओंमें संशोधन हुआ और उनकी संख्या भी ६४ पूरी कर दी गयी। इस प्रकारका ६४ मूल कलायें १२८ कलाओंमें विभक्त हो गयीं।

काम-विज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाली कलायें पाञ्चालिकी कलाओंके नामसे प्रसिद्ध हैं। कहते हैं कि पञ्चाल नामक ऋषिने दशमण्डलात्मक ऋग्वेदमें दशावयव सम्प्रयोग चक्षुः षष्ठी (चौसठ) नामसे वर्णित किया है, और काम शास्त्रमें भी ६४ ही कलाओंका प्राधान्य है, इसलिये ऋग्वेदी ब्राह्मणोंने इन कलाओंका नाम भी 'पाञ्चालिकी' रख दिया है। संभव है कि यह केवल अनुमान हो और किसी दूसरे ही कारणसे इन कलाओंका यह नाम पड़ा हो, क्यों कि इस सम्बन्धमें वात्स्यायन मुनिको भी कोई प्रमाण नहीं मिला और उन्होंने भी लोकोक्तिका ही उल्लेख किया है।

वात्स्यायन मुनिने दाम्पत्य संयोगके आलिङ्गन, चुम्बन, दन्तकर्म, नखक्षत, सीत्कृत, पाणिघात, सम्वेशन, उपसृत, उपरिष्ट और नरायित यह दस अङ्ग माने हैं। पाञ्चाल कुल जात वाभ्रव्य नामक एक ब्राह्मणने, जो इस शास्त्रके अच्छे उपदेष्टा थे और जिन्होंने एक कामशास्त्र भी लिखा था—

१० के बदले दाम्पत्य संयोगके ८ ही अंग माने हैं। उपरोक्त पाञ्चालिकी कलायें इन्हीं अङ्गोंमें प्रयोग की जाती थीं। वाभ्रव्य प्रत्येक अङ्गकी आठ और वात्स्यायन किसी अङ्गकी कुछ कम और किसी अङ्गको कुछ अधिक कलायें मानते हैं। इन कलाओंसे इस विषयकी शिक्षा मिलती थी, कि किस प्रकार आलिंगन और किस प्रकार चुम्बन आदि करना चाहिये। वात्स्यायन मुनिने प्रत्येक स्त्री पुरुषको जब काम विज्ञान और उसकी अङ्ग विद्याओंके अध्ययनका आदेश दिया है, तब यह अनुमान करना सहज है, कि बच्चोंको यथासमय इनकी शिक्षा दी जाती होगी, परन्तु इनकी अपेक्षा नृत्य गीतादिक उपायलभ्य कलायें विशेष आदरकी वस्तु समझी जाती थीं और उनकी शिक्षापर अधिक जोर दिया जाता था, क्योंकि पाञ्चालिकी कलायें केवल दाम्पत्य संयोग ही के समय काम आती हैं और नृत्य गीतादिक कलायें जीवनमें प्रत्येक समय उपयोगी हो सकती है। पाञ्चालिकी कलाओंसे केवल कामिनीका ही मनोरञ्जन किया जा सकता है और नृत्य गीतादिकसे समूचे संसारका मनोरञ्जन हो सकता है। यह केवल मनोरञ्जन हीकी सामग्री नही हैं, बल्कि इनसे बुद्धि बल और जीविका भी प्राप्त होती है। इसीलिये इन कलाओंकी शिक्षा पर विशेष जोर दिया जाता था और

प्रत्येक स्त्री पुरुषके लिये इनका अध्ययन आवश्यक समझा जाता था। राजर्षि भर्तृहरिने इन्हीं कला-विहीन मनुष्योंको बिना सींग और पूछके जानवर बतलाया है। पाञ्चालिकी कलाओंकी उपयोगिता और उनके गुणदोषके सम्बन्धमें हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँपर हम अपने पाठकोंको नृत्य गीतादिक चौंसठ कलाओंका परिचय दे देना चाहते हैं। वात्स्यायन मुनिने काम शास्त्रमें इन्हें इसलिये स्थान दिया है और काम शास्त्रकी अङ्ग विद्याओंमें इसलिये परिगणित किया है, कि इनसे दाम्पत्य जीवनको सरस और सुखमय बनानेमें बड़ी सहायता मिलती है। यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है, कि हम लोगोने इन कलाओंको भुला दिया है और इनका अध्ययन अध्यापन छोड़ दिया है। आज हमारे देशमें इन कलाओंकी पुस्तकें या अध्यापक उपलब्ध नहीं है। यदि हमलोग इन कलाओंसे इस प्रकार विमुख न होते, तो शायद भारतकी अवस्था आज इतनी गिरी हुई न होती।

यद्यपि इन कलाओंका आजकल हमारे देशमें प्रचार नहीं है, न निकट भविष्यमें होनेकी ही सम्भावना है, तथापि अपने पाठकोंको इनका परिचय देनेका लोभ हम संवरण नहीं कर सकते, क्योंकि हम इन्हे बहुत महत्वपूर्ण समझते हैं

और चाहते हैं कि युग धर्मानुसार इनमें आवश्यक परिवर्त्तन कर फिरसे इनका प्रचार किया जाय। इन कलाओं-का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

(१) गीत—गाना या तरह तरहकी राग रागनियोंका अभ्यास करना।

(२) वाद्य—बाजे बजाना। इससे मनोरञ्जनमें सहायता मिलती है। गान विद्याके साथ इसका घनिष्ठ सम्बन्ध है।

(३) नृत्य—नाचना। आजकल लोकरुचि इसके विरुद्ध है। लोग नाच देखना तो पसन्द करते हैं, परन्तु स्वयं नाचना पसन्द नहीं करते। इसीलिये कुछ लोगोंका यह जातीय व्यवसाय हो गया है।

(४) आलेख्य—चित्रकला। यह भी एक उत्तम कला है। जन-समाजमें अब भी इसका यथेष्ट प्रचार है।

(५) विशेषकच्छेद्य—विभिन्न प्रकारके सुन्दर तिलकों-की व्यवस्था।

(६) तण्डुल कुसुमवलि विकार—मणिमय चत्वर प्रदेश, कामगृह अथवा सरस्वतीके मन्दिरमें अनेक वर्णके अखण्ड तण्डुलों और फूलों द्वारा विभिन्न प्रकारके चौक पूरना।

(७) पुष्पास्तरण—निवास गृह या उपासना गृहादिमें अनेक प्रकारके पुष्पों द्वारा शैया रचना।

(८) दशनवसनाङ्गराग—दाँतों, कपड़ों और अङ्गोंके रञ्जनकी विधि।

(९) मणिभूमिका कर्म—गर्मीके दिनोंमें पड़ने बैठने और खान पानकी सुविधाके लिये चत्वर भूमिको मरकत आदि मणियों द्वारा खूबसूरतीसे सजाना।

(१०) शयन रचना—जाड़ा गर्मी आदि ऋतु, सोनेवालेका मनोभाव—वह अनुराग सम्पन्न है या विराग सम्पन्न अथवा उदासीन, और आहारका परिणाम समझ कर उसकी इच्छानुसार शयन रचना करना।

(११) उदक वाद्य—जल तरङ्ग आदि बाजे बजाना।

(१२) उदकाघात—हाथों और यन्त्रों द्वारा उक्षिप्त और अवक्षिप्त जलसे ताड़न। जलस्तम्भ भी इसीको कहते हैं। तैरना तथा डूबते हुओंको बचाना भी इसीके अन्तर्गत है।

(१३) चित्र योग—स्वार्थसिद्धिके लिये अनेक प्रकारकी कुचेष्टाओं द्वारा दूसरोंको हानि पहुंचाना।

(१४) माल्यग्रथन विकल्प—देव पूजाके लिये अथवा अपने

पहननेके लिये भांति भांतिकी सौन्दर्यमयी मालायें बनानी, जैसे विना सूतका हार इत्यादि।

(१५) शेखरकापाड़ योजन—नाना प्रकारके पुष्पों द्वारा शिरमें पहनने योग आभूषण बनाना। ग्रथन कलासे इसका घनिष्ट सम्बन्ध है।

(१६) नेपथ्य प्रयोग—देश और कालके अनुसार वस्त्र, माल्य और आभूषणादिक शरीरकी शोभाके लिये यथारूपसे प्रयोग कर सजाना। नाटकमें अभिनेताओंको सजाना भी इसीके अन्तर्गत है।

(१७) कर्णपत्र भङ्ग—हाथी दांत और शङ्ख इत्यादिके द्वारा कर्ण फूल और कानोंमें पहनने लायक बाला आदि बनाना।

(१८) गन्धयुक्ति—अनेक प्रकारकी सुगन्धित चीजोंका निर्माण।

(१९) भूषण-योजन—कण्ठहार, चन्द्रहार और कुण्डल आदिका निर्माण और योजन।

(२०) इन्द्रजाल—आजकल भी मदारी लोग इसके खेल दिखा कर लोगोंको विस्मित कर देते हैं।

(२१) कौचुमार योग—कुरूपको सुरूप बनाना इत्यादि।

(२२) हस्तलाघव—सब कामोंमें हाथकी लघुता अर्थात् क्षिप्रता और दक्षता ।

(२३) विचित्र शाकयूष भक्ष्य विकार क्रिया—पान, रस, राग और आसवकी योजना । आहार चार प्रकारका होता है—चर्व्य, चूष्य, लेह्य और पेय। चारों प्रकारके आहारोंका निर्माण इत्यादि । रन्धन कला या पाक शास्त्र ।

(२४) सूचीवाण कर्म—कपड़ोंका सीना, कसीदा काढना, फटे हुए कपड़ोंकी मरम्मत करना—इत्यादि ।

(२५) सूत्र क्रीड़ा—बाजीगरी ।

(२६) वीणा डमरुक वाद्य—डमरू बजाना ।

(२७) प्रहेलिका—पहेली या बुझौअल बूझना ।

(२८) प्रतिमाला—अन्त्याक्षरिका ।

(२९) दुर्वाचक योग—ऐसे क्लिष्ट शब्दोंमें बात कहना, जिनका अर्थ लगाना कठिन हो पड़े । क्रीड़ा और बाद विवादमें इस कलाका प्रयोग होता है ।

(३०) पुस्तक वाचन—स्वर विन्यास पूर्वक गान करके कुछ पढ़ना, जैसे लोग रामायण आदि पढ़ते हैं ।

(३१) नाटकाख्यायिका दर्शन—नाटक, ड्रामा और आख्यायिका (कहानी) इत्यादि ज्ञान ।

यदि आवश्यक हो, तो जलपान भी किया जा सकता है। भोजन चाहे जिस समय किया जाय, परन्तु सदैव ठीक समय पर करते रहनेसे स्वास्थ्य खराब नहीं होता।

दोपहरको भोजन करनेके बाद शतरञ्ज आदि खेल, इष्ट मित्रोंके साथ हँसी दिल्लगी और मनोरञ्जन तथा शयन आदि कार्य करने चाहिये। ग्रीष्मके सिवा अन्य ऋतुओंमें दिनको सोना मना है, क्योंकि इससे शरीर क्षय होता है। अतः अन्य ऋतुओंमें भूल कर भी न सोना चाहिये।

दोपहरसे तीन चार बजे तकका समय इस तरह बिता कर अपरान्हमें नायकको हाथ मुँह धोकर कपड़े पहनना चाहिये और केश वगैरह सँवार कर मित्रोंके साथ घूमने जाना चाहिये। इस समय इच्छानुसार सभा सोसाइटी बाग बगीचा या कहीं दूसरी जगहकी सैर की जा सकती हैं, परन्तु सैर वहींकी करनी चाहिये, जहां जानेसे तनको स्फूर्ति और मनको आनन्दकी प्राप्ति हो। घूम फिर कर वापस आनेपर शामको कुछ देर तक गायनवादन द्वारा अपना और अपने इष्ट मित्रोंका मनोरञ्जन करना चाहिये। इसके बाद भोजनादिसे निवृत्त हो धूप दीप और पुष्पादि द्वारा सुसज्जित शयनगृहमें प्रवेश कर रात्रिचर्यामें प्रवृत्त होना चाहिये।

यह सब नायकके नित्य कर्म हैं। जीवनको जिस तरह हो आनन्दमय और रसिक बनाना—यही इनका प्रधान उद्देश्य है। यह बड़े दुर्भाग्यकी बात है, कि आजकल हमलोगोंकी परिस्थिति इस योग्य नहीं है कि हम अपने जीवनको इस जीवनचर्य्याके सांचेमें ढाल सकें। आजकल हमारा अधिकांश समय नौकरी चाकरी, व्यवसाय या उदर निर्वाह-की चिन्तामें ही व्यतीत होता है। यदि इस कार्यके लिये पर्याप्त समय निकाल कर भी हमलोग शेष समय आनन्द पूर्वक निर्दोष हँसी खेलमें बिताये, तो निःसन्देह हमारे जीवनमें एक नवीनता, प्रफुल्लता और चैतन्य आ सकता है। इससे हमलोग सुखी हो सकते हैं।

नायकके नैमित्तिक कर्म भी ऐसे ही होने चाहिये जिनसे इष्ट मित्रोंका मेल हो और उनकी उपस्थितिके कारण नाना प्रकारसे आनन्दकी प्राप्ति हो। देव मन्दिरोंके महोत्सव, इष्ट मित्रोंको भोज (पार्टी) देना, बगीचेकी सैर करना या कहीं एकत्र हो किसी प्रकार मनोरञ्जन करना—यह सब नैमित्तिक कर्म हैं। शिवरात्रि या श्रावणके सोमवारोंको शिवजीका शृङ्गार, गणेश चतुर्थी पर गणेशोत्सव, जन्माष्टमी पर कृष्णकी झांकी और हिंडोला आदि उत्सव मनाने की जैसी प्रथा इस समय हमारे देशमें प्रचलित है, उससे

नैमित्तिक कर्मके उपरोक्त उद्देश्यको सफल होनेमें बहुत कुछ सहायता मिलती है। ऐसे उत्सवों पर इष्ट मित्रोंको अधिक संख्यामें निमन्त्रित कर गायन वादन और अन्यान्य उपायों द्वारा मनोरञ्जन करनेका आयोजन करनेसे यह उद्देश्य विशेष रूपसे सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकारके उत्सवोंके अतिरिक्त प्रीति-सम्मेलन भी नैमित्तिक कर्मोंमें ही गिने जाते हैं। किसी अनन्य मित्रके यहां या स्वयं अपने घरमें ऐसे सम्मेलनका आयोजन् करना चाहिये और वहां समान विद्या, समान बुद्धि, समान शील, समान धन और समान वय अनुरूप मित्रोंके साथ काव्य, कला या किसी अन्य विषयकी विधिवत् चर्चा करनी चाहिये। नायकका यह कर्त्तव्य होना चाहिये, कि वह ऐसे सम्मेलनमें भाग लेनेवालोंकी आगतास्वागता करे और यदि किसीको उसकी विद्या कलाके कारण पुरष्कृत करना उचित प्रतीत हो, तो उसे पुरष्कार भी दे।

उपरोक्त प्रकारके अर्थात् समान विद्या, समान बुद्धि, समान शील, समान धन और समान वयवाले मित्रोंको चाहिये, कि वे कभी कभी एक दूसरेके यहां एकत्र हो जल-पान या भोजन भी किया करें। यह प्रथा आजकल प्रीति भोजन या पार्टीके नामसे प्रचलित है। यह भी एक नैमि-

त्तिक कर्म है और इससे भी बहुत कुछ मनोरञ्जन हो सकता है।

बगोचेकी सैर नायकके नैमित्तिक कर्मों में विशेष महत्व रखती है। वहां अपने इष्ट मित्रोंके साथ जाकर उसे नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंमें प्रवृत्त होना चाहिये। बगीचे जानेका वक्त दोपहरके बादका है। उस समय बगीचेमें जाकर शतरञ्ज और तास खेलने व गाने बजानेमें बहुत सा समय बिताना चाहिये। शामके वक्त बगीचेके चिन्ह रूप माला फूल और तुर्रा आदि लेकर हँसी खुशीकी बातें करते हुए वापस आना चाहिये। खाने पीनेकी कुछ स्वादिष्ट चीजें भी बगोचेमें खाई जा सकती है और गरमीके दिन हों, तो हौज, तालाब या फव्वारेमें निमज्जन या जलक्रीड़ा भी की जा सकती है।

हमलोगोंके यहां प्राचीनकालसे कार्तिकी और आश्विनी पूर्णिमाको द्यूत क्रीड़ाकी प्रथा प्रचलित है। इसी प्रकार होली पर भी आनन्द मनाया जाता है। समयके फेरसे आजकल यह सब निन्द्य समझा जाता है, परन्तु भारतमें यह प्राचीन कालसे प्रचलित हैं और इनका भी प्रधान उद्देश्य मानव जीवनको स-रस बनाना हैं।

इसके अतिरिक्त फसलके समय आमके बगीचेमें इष्ट मित्रों सहित जाकर आम जामुन खाना, खेतमें जाकर भुट्टे,

(३२) काव्य समस्या पूरण—समस्या पूर्ति। आज भी हिन्दी संसारमें इसका विशेष आदर है।

(३३) पट्टिकावेत्र वाणविकल्प—मोढ़े, कुर्सियाँ, चटाई आदि बनाना।

(३४) तक्ष कर्म—किसी चीजको साफ करना, घटाना बढ़ाना इत्यादि।

(३५) तक्षण कर्म—बढ़ईगीरी।

(३६) वास्तु विद्या—गृह निर्माण-कार्य या राजगीरी। यही कला आजकल 'इञ्जिनियरिङ्ग' के नामसे प्रसिद्ध है।

(३७) रूप्यरत्न परीक्षा—हीरा मोती आदि रत्न तथा रौप्य और सुवर्ण मुद्राओंके गुण दोष जानना तथा उनका मूल्य स्थिर करना।

(३८) धातुवाद—पत्थर और रत्न प्रभृति खनिज पदार्थों-का शोधन और भेदन इत्यादि।

(३९) मणि रागाकर ज्ञान—स्फटिकादि मणियोंका रञ्जन-विज्ञान और पद्मराग प्रभृति मणियोंका उत्पत्ति स्थान जानना।

(४०) वृक्षायुर्वेद योग—बागवानी। पेड़ोंको लगाना और पालपोषकर बड़ा करना इत्यादि।

(४१) मेष कक्कुट लावक युद्ध विधि—मेढे, मुर्गे और

तीतर बटेर आदिको लड़ानेकी विधि। अब भी उत्तर भारतमें इसका प्रचार है।

(४२) शुक सारिका प्रलापन—तोता मैना आदि पक्षियोंको मानुषी भाषाकी शिक्षा देना।

(४३) उत्साहन, संवाहन और केश मर्द्दनमें कौशल—मर्द्दन दो प्रकारका होता है—पैरों द्वारा और हाथों द्वारा। जो पैरों द्वारा होता है, उसे उत्साहन और जो हाथों द्वारा होता है, उसे केश मर्द्दन कहते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अङ्गोंके मर्द्दनको संवाहन कहते हैं।

(४४) अक्षर मुष्टिका कथन—सांकेतिक गुप्त भाषा बोलना, लिखना और समझना।

(४५) म्लेच्छित विकल्प—जो बात साधु शब्दों द्वारा गठित होकर भी अक्षरोंके कुटिल विन्यासके कारण अस्पष्टार्थ है, उसे म्लेच्छित कहते हैं। यह भी गूढ़ बातोंके जतलानेका संकेत है।

(४६) देश भाषा विज्ञान—विभिन्न प्रान्तों और देशोंकी भाषाको व्यवहारकी सुविधा और ज्ञान बृद्धिके लिये सीखना।

(४७) पुष्प शकटिका—प्रश्न कर्त्तासे किसी पुष्पका नाम

लेनेको कहकर, वह जिस पुष्पका नाम ले, उसीके अनुसार शुभाशुभका निर्देश करना। यह कला फलित ज्योतिषसे सम्बन्ध रखती है।

(४८) निमित्त ज्ञान—शकुन बतलाना। रमल इत्यादिकी सहायतासे यह विद्या भली भांति आयत्त की जा सकती है।

(४९) यन्त्र मातृका—शास्त्र विशेष। विश्वकर्माने इसकी रचना की थी। इसमें दो तरहके यन्त्रोंकी बातें लिखी हुई थीं। यथा, सजीव यन्त्र—रथ, शकट, तैल यन्त्र, इक्षु यन्त्र इत्यादि। यह बैल भैंसे और घोड़ोंकी सहायतासे चलते हैं अतएव सजीव यन्त्र कहलाते हैं। निर्जीव यन्त्र, यथा—रणतरी, रक्षितरी, व्योमयान, पुष्पक, आग्नेय रथ, वानरध्वज रथ, पुष्पकयान और विध्वंसिनी तरणी आदि। इन यन्त्रोंका परिचालन हवा, विजली या भाफ द्वारा होता है। इन यन्त्रोंके बनानेकी विधि यन्त्र मातृकामें लिखी हुई थी।

(५०) धारण मातृका—इस शास्त्रमें सुने हुए शास्त्रोंके मर्मको स्मरण रखनेकी ५ विधियोंका विवरण बतलाया गया है!

(५१) संपाठ्य—क्रीड़ा और वादके लिये परस्पर मिलकर पढ़ना।

(५२) मानसी—इस कलाके ज्ञानसे चिन्तन और मननकी शक्ति बढ़ती है। शतावधानी व्यक्तियोंको इससे विशेष काम पड़ता है।

(५३) काव्य क्रिया—संस्कृत, प्राकृत और मातृ-भाषामें कविता करना।

(५४) अभिधान कोष—अमर कोष, उत्पल कोष, शब्दार्थ पारिजात, हिन्दी शब्द सागर इत्यादि।

(५५) छन्दोज्ञान—पिङ्गलाचार्य प्रणीत 'पिङ्गल सूत्र' की सहायतासे अथवा अन्य किसी प्रकारसे छन्द रचना का ज्ञान प्राप्त कर छन्द रचना करना।

(५६) क्रियाकल्प—काव्य रचना करना और अलंकारोंमें व्युत्पत्ति प्राप्त करना।

(५७) छलितक योग—दूसरोंको छलनेके लिये इस कल्प-का प्रयोग होता था।

(५८) वस्त्रगोपन—वस्त्रों द्वारा गुह्य अंगोंको इस प्रकार ढकना कि वस्त्र उत्क्षिप्त, अवक्षिप्त, आकुंचित और प्रसारित होनेपर भी इधर उधर न हो सके। फटे कपड़ेको अच्छे कपड़े-

की तरह पहनना, विशाल वस्त्रका संवरण इत्यादि।

(५९) द्यूत विशेष—जुआ खेलनेमें निपुणता प्राप्त करना।

(६०) आकर्ष क्रीड़ा—पाशक क्रीड़ा। यह द्यूत क्रीड़ाके अन्तर्गत है।

(६१) बाल क्रीड़नक—गेंद, फुटबाल या दूसरे प्रकारके घराऊ खेल।

(६२) वैनयिकी विद्या—आचार शास्त्र। हाथी, सिंह, और व्याघ्र प्रभृति पशुओंको सिखाकर इच्छानुवर्ती बनाना।

(६२) वैजयकी विद्या—इस विद्यासे प्रत्येक कार्यमें सिद्धि प्राप्त करनेकी विधि मालूम होती है।

(६४) वैयामिकी विद्या—नाना प्रकारके व्यायामों द्वारा शरीरको कार्यक्षम करना।

येही चौसठ कलायें हैं। इनमें सभीके कामकी बातें हैं। इनकी उपयोगिताके सम्बन्धमें अधिक कहना व्यर्थ है। इनके अध्ययनसे स्त्रियोंको क्या लाभ होता है यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनिने लिखा है :—

योगज्ञा राजपुत्री च महामात्र सुता तथा।
सहस्रान्तः पुरमपि स्ववशे कुरुते पतिम्॥

तथा पति वियोगे च व्यसनं दारुणं गता ।
देशान्तरेऽपि विद्याभिः सा सुखेनैव जीवति ॥

अर्थात्—गीतादिक कलाओंका प्रयोग जाननेवाली राज कन्या या महामात्र सुता, अन्तःपुरमें हजार स्त्रियाँ होने पर भी पतिको अपने वशमें कर लेती हैं। इतना ही नहीं, विदेश गमन या किसी अन्य कारणसे पति-वियोग होनेपर, वैधव्य प्राप्त होने पर, किसी बिपत्तिमें पड़ जानेपर या परदेशमें निःसहाय हो जाने पर भी इन कलाओंके कारण वे धनोपार्जन कर सानन्द जीवन-निर्वाह कर सकती हैं। सारांश यह, कि ये कलायें प्रत्येक अवस्थामें स्त्रियोंके साथ सहचरी होकर रहती हैं और उन्हें आजीवन लाभ पहुंचाती हैं। इसी प्रकार इनके अध्ययनसे पुरुषोंको भी कम लाभ नहीं होता। वात्स्यायन मुनिने लिखा है :—

नरः कलासु कुशलो वाचालश्चाटुकारकः ।
असंस्तुतोऽपि नारीणां चित्तमाश्वेव विन्दति ॥
कलानां ग्रहणादेव सौभाग्यमुपजायते ।
देश कालौत्वपेक्ष्यासां प्रयोगः सम्भवेन्न वा ॥

अर्थात्—इन कलाओंमें पारंगत होनेसे पुरुष वक्ता, और प्रियकारी होता है। स्त्रियोंके निकट अपरिचित होने पर भी उनका चित्त हरण करनेमें उसे देर नहीं लगती। सारांश

यह, कि कहां किस प्रकार बोलना चाहिये, किस प्रकारके कार्यों द्वारा लोगोंका प्रेम-सम्पादन करना चाहिये और किस प्रकार लोगोंको वशमें कर लेना चाहिये—यह सब बातें कलाओंका अध्ययन किये बिना नहीं मालूम होती। कलाओंमें कुशलता प्राप्त होने पर सौभाग्यका वारा-पार नहीं रहता, इसलिये कलाओंकी शिक्षा अवश्य प्राप्त करनी चाहिये और प्राप्त करनेके बाद देश कालानुसार इनका प्रयोग कर अपने सुख सौभाग्यकी वृद्धि करना चाहिये।





नागरक वृत्त

विद्या और कलाओंका समुचित ज्ञान प्राप्त करनेके बाद काम-सेवा या सांसारिक सुख उपभोग करनेवालोंके लिये यह आवश्यक है, कि वे अपने जीवनको कुछ रसिक बनायें। न केवल रसिक ही बनायें, बल्कि समुचित उपायों द्वारा अपनी अवस्थाको इतनी उन्नत बना लें और अपने जीवनको ऐसे सांचेमें ढाल लें, जिससे वह उपरोक्त सुख उपभोग करने योग्य बन जायं और उनमें वह सुख उपभोग करनेका सामर्थ्य आ जाय। जो ऐसा नहीं करते, उन्हें या तो अपनी दुरवस्थाके कारण सांसारिक सुखोंसे घृणा हो जाती है या लाचार होकर उनसे विमुख होना पड़ता है। इसलिये विद्याकला-सम्पादन करनेके बाद प्रत्येक मनुष्यको—जो सांसारिक सुखका इच्छुक

हो—समुचित योग्यता प्राप्त कर अपनी जीवनचर्य्या अवश्य निर्धारित कर लेनी चाहिये। महर्षि वात्स्यायनने अपने काम सूत्रके "नागरक वृत्त" नामक अध्यायमें इन्हीं सब बातोंका विस्तृत रूपसे वर्णन किया है।

महर्षि वात्स्यायनने लिखा है, विद्याध्ययन पूर्ण होने और गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेके बाद मनुष्यको नागरक वृत्त का अनुवर्तन करना चाहिये। परन्तु नागरक वृत्त व्यय साध्य है। बिना रुपये पैसोंके इसका अनुवर्तन नहीं हो सकता, इसलिये यह आवश्यक है, कि पहले धनोपार्जनका कोई प्रबन्ध कर लिया जाय।

प्राचीन कालमें प्रत्येक वर्णके लिये जीविकाका उपाय निर्धारित था। ब्राह्मण प्रतिग्रह द्वारा, क्षत्रिय प्रजापालन द्वारा, वैश्य वाणिज्य-व्यवसाय द्वारा और शूद्र सेवा-वृत्ति द्वारा जीविका प्राप्त करता था, परन्तु आजकल यह क्रम नहीं रहा। इस समय लोगोंकी प्रधान जीविका नौकरी हो रही है। नौकरीके बाद व्यवसाय और फिर खेती आदिका नम्बर आता है। खैर, इन सब बातोंसे कोई मतलब नहीं। धनोपोर्जन चाहे जिस प्रकार किया जाय; चाहे नौकरी, चाहें व्यवसाय और चाहे किसी अन्य उपायका अवलम्बन किया जाय, परन्तु नागरक वृत्तका अनुवर्त्तन

करनेके पहले स्थायी आमदनीका प्रबन्ध अवश्य कर लिया जाय। बाल्यावस्थामें पढ़ी हुई विद्या और कलाओंके द्वारा इस कार्यमें बड़ी सहायता मिल सकती है। हां, जिन्हें अपने पूर्वजोंका धन वीरासतमें मिले, जो अपने घरके राजे महाराजे, धनीमानी या जमीन जागीरदार हों, वे उपरोक्त उपायोंका अवलम्बन किये बिना ही इस बृत्तका अनुवर्त्तन कर सकते हैं।

नागरिक वृत्त या रईसी ठाट बनानेके लिये सर्व प्रथम उपयुक्त स्थान चाहिये। परन्तु इसके लिये यह आवश्यक नहीं है, कि बम्बई, कलकत्ता या बनारस जैसे किसी बड़े शहर हीमें डेरा डाला जाय। मनुष्य जहाँ जीविका प्राप्त करता है, वहीं रहता है। जहाँ वृत्ति होती है, वहीं उसे स्थिति करनी पड़ती है। इसलिये जहाँ जीविकाका प्रबन्ध हो वहीं रहना चाहिये—चाहे वह बड़ेसे बड़ा शहर हो और चाहे छोटासे छोटा गांव हो। परन्तु इतना जरूर ध्यानमें रखना चाहिये कि जहां रहा जाय, वहां सज्जनोंकी संगति और सज्जनोंके आश्रयमें ही रहा जाय। बड़ेसे बड़े शहरमें अच्छेसे अच्छे स्थानमें भी दुर्जनकी संगतिमें रहनेकी अपेक्षा एक छोटेसे कसबे, ग्राम या खेड़े अथवा उजाड़ बनमें भी सज्जनकी संगतिमें रहना हजार दरज्जे अच्छा है।

जीविकाके कारण देश परदेश या जहां कहीं रहनेका मौका पड़े, वहीं सुखोपभोगकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अपने लिये एक घर निर्धारित कर लेना चाहिये। छोटे गाँवमें या देहातमें अपना स्वतन्त्र घर बनाया जा सकता है, परन्तु वड़े शहरोंमें ऐसा नहीं किया जा सकता। परन्तु दुर्भाग्य या सौभाग्यवश यदि वहीं रहना पडे, तो भाड़ेके मकानमें गुजर करनी चाहिये। मकान चाहे देहातमें हो, चाहे शहरमें, जितना हो सके उतना बड़ा और हवा, उजाला व धूपके आवागमनवाला ही पसन्द करना चाहिये। मकानमें जलका भी प्रबन्ध रहना चाहिये और हो सके तो मकानसे सटा हुआ एक छोटा सा बगीचा भी—जिसमें फल फूलके सुन्दर वृक्ष और तृण संकलित हरी भरी भूमि हो—अवश्य होना चाहिये।

बगीचा वहीं हो सकता है, जहाँ जलका समुचित प्रबन्ध हो। बड़े बड़े शहरोंमें तो म्युनिसीपालीटी और उसके वाटर वर्क्स डिपार्टमेण्टकी बदौलत जलकी कमी नहीं रहती, परन्तु देहातमें इसके लिये किसी नदी या तालाबका आश्रय लेना पड़ता है। केवल बगीचेके लिये ही नहीं, स्नान और जलक्रीड़ा आदिके लिये भी निर्मल और शीतल जल आवश्यक है। शहरोंमें हौज और फौव्वारोंसे यह काम

निकाला जा सकता है और देहातमें अवस्था देखकर व्यवस्था की जा सकती है।

इस प्रकार जो मकान पसन्द किया जाय, उसे कई भागोंमें विभक्त कर देना चाहिये। सोना बैठना और खानापकाना एक ही स्थानमें करनेसे मकान बड़ा गन्दा हो जाता है और वह सुख तथा शान्ति बढ़ानेकी अपेक्षा रोग और अशान्तिको ही बढ़ानेका कारण हो पड़ता है। इसलिये आवश्यकतानुसार अधिक नहीं, तो कमसे कम तीन भागोंमें मकानको अवश्य विभक्त कर देना चाहिये। एक भागमें घर गृहस्थीका साधारण काम हो, दूसरा बैठने उठनेके लिये हो और तीसरा शयनगृहका काम दे।

इस प्रकार मकानको तीन भागोंमें विभक्त कर उसे आवश्यक वस्तुओंसे भरसक सजाना चाहिये। घर गृहस्थीवाले भागमें चूल्हा चक्की और चरखा चरखी आदि जीवनोपयोगी सामान रहे, बैठने उठनेके कमरेमें गद्दी तकिया या टेबल कुर्सियोंकी व्यवस्था रहे और शयन गृहमें भांति भांतिकी उपभोग्य, सुख शान्ति कर और ऐश आरामकी चीजें रहें।

शयनगृह टेबल कुर्सी, गद्दी तकिया और पलंग आदि नाना उपकरणोंसे सजाया जा सकता है। सोनेके लिये

यदि अच्छा सा पलंग हो, तो गद्दीकी कोई आवश्यकता नहीं। यदि पलंग न हो, तो गुदगुदे गद्देका प्रबन्ध करना चाहिये। शयनगृहमें सदैव दो शय्यायें रहनी चाहिये। एक पर्य्याप्त बड़ी और दूसरी कुछ छोटी होनेसे चल सकता है। शय्याके सिरहाने दीवालमें एक ब्रैकट और उसके नीचे एक टेबिल रहनी चाहिये। इनमें रात्रिको उपभोग करने योग्य अनुलेपन, माल्य, सौगन्धिक और पान सुपाड़ी लौंग इलायची आदि मुखवासकी सामग्री सजानी चाहिये। जमीनपर पीकदानी रह सकती है। एक ओर दीवालमें वीणा आदि बाजे लटका देने चहिये और हारमोनियम तबला आदि उसी ओर जमीन या किसी तिपाई आदि पर यत्नपूर्वक रखने चाहिये। इन चीजोंके अतिरिक्त एक अलमारीमें रात्रिके लिये व्यवहारोपयोगी कपड़े, पढ़नेके लिये पुस्तकें, लिखनेके लिये कागज कलम, और खेलनेके लिये शतरञ्ज आदि चीजें यथोचित स्थानमें सजाना चाहिये।

यदि मकानसे सटा हुआ बगीचा हो, तो उसमें भी एक ऐसा ही कमरा होना चाहिये। परन्तु वह ऐसे स्थानमें हो, जहाँ दूसरोंकी दृष्टि न पड़ सके और स्वच्छन्दतापूर्वक प्रणयिनीके साथ हास्य विनोद किया जा सके। बगीचेमें

स्थान स्थान पर लताओंके मण्डप और दरवाजे बनाना चाहिये। कहीं खुले हुए स्थानमें एक संगमर्मरका चबूतरा और यदि इच्छा हो, तो किसी सुरम्य स्थानमें हिंडोलेका भी प्रबन्ध किया जा सकता है।

शयनगृहमें सोनेके लिये जो शैय्या बनाई जाय, वह गुदगुदी और मुलायम होनी चाहिये। शैय्याके सिरहाने और पैताने दो बालिश तकिये रखना चाहिये और गद्दे पर —चाहे वह जमीन पर हो चाहे पलंग पर—एक चांदनीकी तरह सफेद चद्दर बिछा रखनी चाहिये। यह चद्दर तीन तीन या चार चार दिनसे बदलते रहना चाहिये।

इसी प्रकार और भी आवश्यक और उपयोगी चीजें शयनगृहमें संग्रह की जा सकती हैं। नाना प्रकारके सुन्दर और नेत्ररञ्जक चित्रोंका रखना शयनगृहमें परमावश्यक है। सिरहानेकी तरफ दीवाल पर एक ऊँची ब्रैकट पर इष्ट-देवकी प्रतिमा स्थापित करना चाहिये ताकि रातको सोते और सुबह उठते समय उनके स्मरण और ध्यानसे चित्तको शान्ति मिल सके। अन्यान्य आवश्यक चीजें, जल और खानपानके पदार्थ आदि रखनेका स्थान कमरेका आकार प्रकार देखकर जहां उचित प्रतीत हो, निर्धारित कर लेना चाहिये। यह सब चीजें शयनगृहमें खास कर शोभाके

लिये रक्खी जाती हैं, अतः इन्हें रखते समय सजावट पर विशेष रूपसे ध्यान रखना चाहिये।

इस प्रकार सजाये हुए मकानमें रहनेवालेकी जीवनचर्या भी ऐसी होनी चाहिये, जो हर तरहसे उसके जीवनको स-रस बना सके। महर्षि वात्स्यायनने यह विषय भी अपने काम सूत्रमें विस्तारपूर्वक अंकित किया है। यद्यपि वात्स्यायन मुनिके और आजकलके समयमें जमीन आसमानका अन्तर है। तथापि उनकी अधिकांश बातें ऐसी है, जो आज भी उसी तरह काममें लाई जा सकती हैं, अतः आवश्यक परिवर्त्तनके साथ उन्हें भी यहां अंकित कर देना हम उचित समझते हैं।

मनुष्यके कर्म दो प्रकारके होते हैं—नित्य और नैमित्तिक। जो नित्य किये जाते हैं वे नित्य कर्म कहलाते हैं और जो प्रसंगानुसार यदाकदा किये जाते हैं वे नैमित्तिक कर्म कहे जाते हैं। वात्स्यायन मुनिके मतानुसार नायकका नित्य कर्म इस प्रकार होना चाहिये :—

नायकको प्रतिदिन प्रातःकाल (सूर्योदयके पहले) उठना चाहिये। उठ कर शौचादिसे निवृत्त हो दतून या मञ्जनसे मुँह साफ करना चाहिये। इसके बाद स्नान और सन्ध्योपासनादि कर, शरीरमें कुछ अनुलेपन करना चाहिये। यह

सब हो जाने पर, केश सँवारना, मुँह पर सफाई और चिकनाईके लिये मोमकी गोली फेरना एवं पान खाना चाहिये। यह भी आवश्यक है, कि सुगन्धिके लिये कोई अतर आदि भी इसी समय लगा लिया जाय। इसके बाद आइनेमें मुँह देख लेना चाहिये और कोई दोष या त्रुटि मालूम हो, तो उसे दूर कर देना चाहिये। नायकको चाहिये, कि अपना रुआब कायम रखनेके लिये यह सब करनेके बाद ही घरसे बाहर निकले, फिर चाहे वह किसी धर्म कार्यके लिये जाता हो, चाहे धनोपार्जन (नौकरी या व्यवसाय) के लिये जाता हो और चाहे अपनी प्रेमिकासे मिलने जाता हो।

स्नानसे सौन्दर्य और पवित्रता बढ़ती है तथा चित्त प्रसन्न और शरीर निरोग रहता है, अतः प्रतिदिन करना चाहिये। बीचमें एक एक दिनका अन्तर देकर अर्थात् तीसरे तीसरे दिन शरीरको मजबूत बनानेके लिये तेलकी मालिश होनी चाहिये। दो दो दिनके अन्तरसे साबुन लगाना चाहिये और चौथे दिन हजामत बनवाना चाहिये। इससे आयुष्यमें वृद्धि होती है।

भोजन दिनमें दो बार करना चाहिये। एक बार दो पहरके पहले दस ग्यारह बजेके करीब और दूसरी बार रातको सात आठ बजेके करीब। शामको चार पाँच बजे

मटरकी फलियाँ, और होला भूनकर चबाना, सरोवरमें जाकर कमल तोड़ना और कमल गट्टा आदि खाना, तथा इसी प्रकारकी और क्रीड़ाये' भी नायकके नैमित्तिक कर्म गिने जाते है। नायक इनका आयोजन करता हैं और दूसरे लोग इसमें भाग लेते हैं। वह उन्हें प्रोत्साहन द्वारा उत्साहित करता है और उनके साथ स्वयं भी आनन्द अनुभव करता है।

इन सब कामोंमें बाहरके मनुष्य भी खुशीसे भाग ले सकते हैं। परन्तु यदि कोई बाहरके मनुष्य न हों, तो नायक केवल अपने परिवार और अन्तरंग मित्रोंके साथ ही इनका आयोजन कर सकता है।

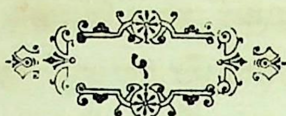
नायकको इन कामोंमें जिन लोगोंसे विशेष सहायता मिलती है, उन्हें वात्स्यायन मुनिने पीठमर्द, विट और विदूषक नामसे सम्बोधित किया है। जिसके पास कुछ विभव नहीं होता, जिसके बालबच्चे या कुटुम्ब परिवार नहीं होता, जो किसी अच्छे देशका निवासी होता है और जो कला-कुशल होता है, उसे पीठमर्द कहते हैं। यह नायकको सब बातोंमें सलाह देता है और नायककी इच्छा पूर्ण करनेके लिये सदा उत्सुक रहता है। जो विभव भोग चुका होता है, गुणवान होता हैं, कुटुम्ब परिवारवाला होता है और

नायक या नायिकाका आश्रय ग्रहण कर जीविका निर्वाह करनेका इच्छुक होता है, उसे विट कहते हैं। यह लोग नायिकाको नायकसे और नायकको नायिकासे मिलानेमें बड़ा काम करते हैं। जो नृत्य गीतादिक कलाओंमें निपुण, आनन्दी, कौतुकप्रिय और परिहासशील होता है, उसे विदूषक कहते हैं। यह लोग हँसी दिल्लगीसे नायक नायिका-का मनोरञ्जन करते है और उनके विश्वास पात्र हो कर रहते हैं।

यह सभी—पीठमर्द, विट और विदूषक—नायकका न केवल मनोरंजन ही करते हैं, बल्कि उसे सलाह और सहा-यता भी देते हैं। इसीलिये यह नायकके मन्त्री माने गये हैं। वैसे तो यह नायकके साथ तीसो दिन मौज उड़ाया करते हैं, परन्तु जब कभी नायक नायिकामें अनबन या प्रेम-कलह हो जाता है, तब ये उन दोनोंको मिलानेमें कोई बात उठा नहीं रखते। इसीलिये यह अपना विशेष स्थान रखते हैं और नायक नायिकाके प्रिय पात्र हो पड़ते है।

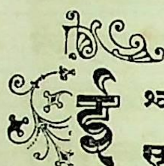
वात्स्यायन मुनिने कामसूत्रके नागरक वृत्त नामक अध्यायमें जो बातें अंकित की हैं, उन्हींका यह सारांश है। इनके पढ़नेसे यह मालूम हो जाता है, कि कामोपभोगकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको अपनी जीवनचर्या कैसी बनानी

चाहिये और किस प्रकार अपनी अवस्थाको ऐसी बनानी चाहिये जिससे सानन्द जीवन बिताया जा सके। हम इन बातोंको बहुत उपयोगी और महत्वपूर्ण समझते हैं, क्योंकि ब्रह्मचर्याश्रममें सादगी और नियमित आहार विहारसे जिस प्रकार ब्रह्मचर्य-व्रतके पालनमें सहायता मिलती है, वान-प्रस्थाश्रममें धर्माचरण और विरक्तिसे मुक्ति-मार्ग प्रशस्त होता है, उसी प्रकार यौवनकालमें उपरोक्त प्रकारकी जीवनचर्यासे कामोपभोग किंवा गार्हस्थ्य धर्मके पालनमें सहायता मिलती हैं। जिस प्रकार एक ब्रह्मचारीके लिये विषय-चिन्तन पाप है, उसी प्रकार गृहस्थके लिये यौवनकालमें उदासीनता, वैराग्य या विरक्ति भी पाप है, क्योंकि यौवनकालमें काम-सेवन—सन्तानोत्पादन—ही मनुष्यका प्रधान धर्म है और होना चाहिये। इसे हम पाप नहीं समझते और इसीलिये हम अपने पाठकोंसे, जीवनचर्याको उपरोक्त सांचेमें ढालने-का अनुरोध करते हैं। यद्यपि उपरोक्त बातें किञ्चित व्यय-साध्य और असुविधाजनक हैं, तथापि हमारी धारणा है, कि देशकालानुसार उनमें समुचित परिवर्त्तन कर लेनेसे वे सुविधाजनक बनायी जा सकती हैं।



५

नायिका निर्णय



ईश्वरकी लीला बड़ी विचित्र है। उसने मैथुनी सृष्टि उत्पन्न की है। घास फूस और फल फूलसे लेकर कीट पतङ्ग, पशु पक्षी और मनुष्य तक नर और मादा—इन दो भागोंमें विभक्त हैं और उनके संयोगसे सन्तानोत्पत्ति होकर ईश्वरका सृष्टि-कार्य सम्पादन होता है। मानव-समाजमें स्त्री और पुरुषोंकी सृष्टि भी इसीलिये हुई है। परन्तु :केवल मानव-समाजमें ही नहीं, पशु पक्षी और कीट .पतङ्गोंमें भी यह बात नहीं पायी जाती, कि चाहे जो नर चाहे जिस मादाके साथ स्वच्छन्द विहार कर सृष्टि कार्यमें :प्रवृत्त हो। कीट पतङ्ग और पशु पक्षियोंमें प्रायः यह देखा जाता हैं, कि जो दूसरोंकी अपेक्षा अधिक बलवान होता है, वही सृष्टि कार्यके लिये उपयुक्त समझा जाता है। और उसीसे यह कार्य लिया जाता है। कुछ उच्च कोटिके

पशु पक्षी इस नियमकी पाबन्दी नहीं मानते और नर व मादा—पति पत्नीकी तरह एक जोड़ेके रूपमें रहते और सृष्टि कार्य चलाते हैं।

मानव-समाजमें, स्त्री और पुरुषोंकी सृष्टि, यद्यपि इसी-लिये हुई हैं कि वे सन्तानोत्पादन कर सृष्टि कार्य चलावें, तथापि पुरुष और स्त्रियोंको यह अधिकार नहीं है, कि वे चाहे जिस स्त्री और चाहे जिस पुरुषके साथ स्वच्छन्द सह-वास कर सकें। सृष्टिके आरम्भ कालमें यह बात न थी। उस समय किसी प्रकारका बन्धन न था। स्त्री और पुरुष एक दूसरेको पसन्द कर अपनी काम-वृत्ति चरितार्थ करते थे, परन्तु बादको जब यह प्रथा अनर्थकारी सिद्ध हुई, तब मानव-समाजके लिये नियम बना दिये गये और यह स्थिर कर दिया गया, कि किस अवस्थामें किन पुरुषोंका संयोग वैध और किन स्त्री पुरुषोंका संयोग अवैध हैं। *

एक पुरुषको किन स्त्रियोंके साथ संयोग करनेका अधि-कार है अथवा एक नायकके लिये कौन कौन स्त्रियां नायिका हो सकती हैं—इस विषय पर चारायण, सुवर्णनाभ, घोटक

* देखो दाम्पत्य प्रेम नामक इसी पुस्तकका एक स्वतन्त्र परिच्छेद।

मुख, गोनर्दीय, बाभ्रव्य प्रभृति कामशास्त्रके रचयिताओंने बड़ा विचार किया है। वात्स्यायन मुनिने इन सब लोगोंके मन्तव्योंका उल्लेख कर निर्णय किया है कि नायिका चार प्रकारकी हो सकती हैं (१) कन्या (२) पुनर्भू अर्थात् अक्षत योनि विधवा (३) परदारा अर्थात् पराई स्त्री और (४) गणिका अर्थात् वेश्या।

काम प्रवृत्ति दो प्रकारकी होती है—पुत्रार्थ और सुखार्थ। परन्तु परदारा और वेश्यासे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह औरस सन्तान नहीं कहलाती। धर्म शास्त्रने परदारा या वेश्यासे सन्तानोत्पत्ति करनेकी आज्ञा भी नहीं दी, अतः यह स्वीकार करना होगा, कि यह दो नायिकायें पुत्रार्थी नायकके लिये निरुपयोगी हैं। कन्या उस नायिकाको कहते हैं जो अविवाहिता होती है। समान वर्णकी कन्या-के साथ यथाविधि पाणि ग्रहण कर सहवास करनेसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह औरस सन्तान कहलाती है। * इसलिये पुत्रार्थी नायकके लिये यह नायिका सर्वोत्तम और सर्वापेक्षा अधिक उपयुक्त मानी गयी है। पुनर्भू उस

---

* स्वक्षेत्रे संस्कृतायां तु स्वयमुत्पादयेद्धियम्।
तमौरसं विजानीयात्पुत्रं प्रथम कल्पितम्॥

—मनुस्मृति, अध्याय ९ श्लोक १६६

नायिकको कहते हैं, जिसका एक बार विवाह हो चुका होता है। पतिके मर जानेपर और कभी कभी पतिकी जीवित अवस्थामें ही यह पर पुरुषका आश्रय ग्रहण करती हैं। यह दो प्रकारकी होती है —(१) अक्षत योनि और (२) क्षत योनि। अक्षत योनिका स्थान क्षतयोनिकी अपेक्षा अधिक ऊँचा माना जाता है। धर्म-शास्त्रमें इनके पाणिग्रहणकी आज्ञा नहीं दी गयी, अतः जब इन्हें कोई अपनाता है, तब उसे किसी प्रकारका धर्म संस्कार नहीं करना पड़ता। यद्यपि कन्याके समान यह नायिका उत्तम नहीं समझी जाती, न उससे उत्पन्न सन्तान ही उतनी अच्छी समझी जाती हैं, तथापि उच्च वर्णके हिन्दुओंको छोड़कर भारतकी अन्यान्य जातियोंमें इनके पाणिग्रहणकी प्रथा प्रचलित है। उनसे जो सन्तान उत्पन्न होती है वह क्षेत्रज कहलाती है और उसे समाजमें वही स्थान दिया जाता है, जो औरस सन्तानको दिया जाता है।* इसलिये पुनर्भू नायिकाको भी हम पुत्रार्थी नायकके लिये उपयुक्त मान सकते हैं।

---

* यस्तल्पजः प्रमीतस्य क्लीबस्य व्याधितस्य वा
स्वधर्मेण नियुक्तायां स पुत्रः क्षेत्रजः स्मृतः
—मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १६७

औरस क्षेत्रजौ पुत्रौ पितृरिक्थांश भागिनौ।
—मनुस्मृति अध्याय ९ श्लोक १६५

परन्तु कन्या या पुनर्भू की तरह परदारा और वेश्या पुत्रार्थी नायकके लिये उपयुक्त नहीं हो सकतीं। जो लोग इनके प्रेम-बन्धनमें पड़ते हैं, उनके लिये कहना होगा, कि वे सन्तानोत्पत्तिके उद्देश्यसे नहीं, बल्कि आनन्द-प्राप्तिकी अभिलाषासे प्रेरित होकर ही ऐसा करते है। प्राचीन पण्डितों ने लिखा है, कि पर-स्त्रीके साथ अनुचित सम्बन्ध रखनेसे न केवल आनन्दकी ही प्राप्ति होती है, बल्कि अनेक बार भविष्यमें आनेवाली विपत्तियोंसे परित्राण मिलता है, वैरका प्रतिशोध होता है, शत्रु पर विजय मिलती है और जीविका व धनकी प्राप्ति होती है। वेश्याओं से सम्पर्क रखने-से भी इसी प्रकारके कई लाभ होनेकी सम्भावना रहती है, इसलिये उन्होंने—खास कर गोणिकापुत्र और वाभ्रव्यने—इनसे सन्बन्ध रखना उचित बतलाया है। इस सम्बन्धमें उन्होंने जो युक्तियां दी हैं, वे अकाट्य हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि परस्त्री गमनसे अनेक बार जीविका या धन लाभ होता है और अनेकबार बड़ेसे बड़ा काम अनायास हो जाता है, तथापि हम इसका समर्थन नहीं कर सकते। धर्म और लोकनीति दोनोंकी दृष्टिमें पर स्त्री और वेश्या-गमन निन्दनीय है। हम पर स्त्री गमनको व्यभिचार और वेश्यागमनको दुराचार समझते है। हमारी धारणा है

कि सभी शिष्ट समुदाय आजकल ऐसा ही समझता है। पर स्त्री और वेश्याओंसे सम्बन्ध रखनेवाले लोग आजकल सर्वत्र निन्दनीय ही माने जाते है। इनसे सम्बन्ध रखने पर लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक उठानी पड़ती है। इस लिये हम इन दोनों नायिकाओंको नायिका वर्गमें परिगणित करना उचित नहीं समझते।

कन्या और पुनर्भू नायिकाओंसे सन्तानोत्पत्ति की जा सकती है और उन्हें भार्या बनाकर यश और सुख प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये उन दोनोंको हम एक दूसरेसे भिन्न न समझ कर, एक वर्गमें रख सकते हैं। दूसरे वर्गमें पर दारा और तीसरे वर्गमें वेश्यायें आ सकती हैं। वात्स्यायन मुनिने अपने काम सूत्रमें इन तीनों प्रकारकी नायिकाओंको हस्तगत करनेके उपाय बतलाये हैं। साथ ही उन्होंने यह भी बतलाया है, कि किस नायिकामें कौन कौनसे गुण दोष होते हैं, और लोग उन्हें किस प्रकार अपने अधिकारमें ला सकते हैं। परन्तु हम कन्या भिन्न अन्य नायिकाओंको न सन्तानोत्पत्तिके लिये ही उपयुक्त समझते हैं, न आनन्द प्राप्तिके लिये ही। इसलिये हम केवल कन्याके सम्बन्धकी ही बातें अगले अध्यायोंमें अंकित करेंगे। हम पहले ही कह चुके हैं कि परस्त्री गमनको

हम व्यभिचार और वेश्या गमनको दुराचार समझते हैं। हमारी धारणा है कि इससे मानव-समाजका बड़ा अपकार होता है। इसलिये आगे चलकर, अपने पाठकोंको इन दोनोंकी हानियोंका दिग्दर्शन करानेकी भी हम चेष्टा करेंगे।

नायकको नायिका पसन्द करते समय किन किन बातों पर विशेष ध्यान रखना चाहिये—यह हम अगले अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक अंकित करेंगे, परन्तु यहाँ हम यह बतला देना आवश्यक समझते हैं, कि कैसी नायिकाको सर्वथा अगम्य समझना चाहिये। वात्स्यायन मुनिने इस सम्बन्धमें लिखा है, कि कुष्ठ रोगयुक्ता, उन्मत्ता (पगली), पतिता, छिपाने योग्य बातोंको प्रकाशित कर देनेवाली, जो जिस-तिससे सम्भोगकी प्रार्थना करती हो, जिसका यौवन गतप्राय हो चुका हो, जो बहुत गोरी या बहुत काली हो, जो दुर्गन्धसे युक्त रहती हो, जिससे किसी प्रकारका नाता या रिश्ता हो, जो स्त्रीकी समवयस्का सखी हो, जो संन्यासिनी हो, जिससे विद्या या राजसम्बन्ध हो उसकी स्त्री, मित्रपत्नी, श्रोत्रिय ब्राह्मणकी स्त्री, राजपत्नी और किसी आश्रमके गुरुकी पत्नी—इन्हें सर्वथा अगम्य समझना चाहिये। यहाँतक कि ये व्यभिचारिणी हों, पतिता हों, चरित्रभ्रष्टा हों और

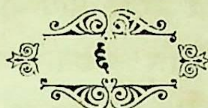
किसी परपुरुष से अनुचित सम्बन्ध रखती हों, तब भी बुद्धिमानको इनसे दूर रहना चाहिये।

अन्तमें हम अपने पाठकोंसे स्पष्ट कह देना चाहते हैं, कि चाहे वे पुत्रके अभिलाषी हों और चाहे आनन्दके, उन्हें सदैव अपनी विवाहिता पत्नीसे ही दाम्पत्य-सम्बन्ध रखना चाहिये। आजकल व्यभिचार और दुराचारकी जो वृद्धि हो रही है, वह देश और समाज दोनोंको रसातलकी ओर ले जानेवाली है। जो लोग परस्त्री या वेश्याओंसे सम्बन्ध रखते हैं, वे केवल आनन्दप्राप्तिके लिये ही वैसा करते हैं, परन्तु सच्चा आनन्द—निर्दोष और शान्तिपूर्ण आनन्द—वेश्या या परदाराके पास नहीं मिलता। वहां जो आनन्द मिलता है, वह क्षणिक होता है। उस आनन्दके पीछे न जाने कितना सन्ताप, कितनी चिन्ता और विपत्तियाँ छिपी रहती हैं। कभी कभी तो उस आनन्दके पीछे पश्चात्ताप भी करना पड़ता है। परन्तु सच्चा आनन्द जो कहीं बाहर नहीं बल्कि अपने घरमें, किसी दूसरेके पास नहीं प्रत्युत अपनी गृहिणीके पास ही होता है, उसमें पाप, सन्ताप, चिन्ता, विपत्ति या पश्चात्ताप नहीं होता। वह चित्तको शान्ति देता है और मनको प्रफुल्लित बनाता है। लोगोंको चाहिये कि वे उसी आनन्दकी खोज करें। वह

उन्हें बाजारमें नहीं, बल्कि अपने घरहीमें मिलेगा। उसे अपना लेनेपर वे देखेंगे, कि वह प्रत्यक्ष पारस है। उसके स्पर्शसे उनका लौहकर्कश हृदय और मिट्टीमें मिली हुई गृहस्थी सोनेकी हो गयी है। उनके घरमें ऋद्धि और सिद्धि बरस रही हैं और वे अलौकिक सुख उपभोग कर रहे हैं।

प्रिय पाठक! दाम्पत्य-प्रेम ही वह पारस है, जिसके स्पर्शसे संसार सोनेका हो जाता है। वही उस आनन्दका आगार है, जिसकी खोजमें लोग दरदर भटकते फिरते हैं और वही संसारके समस्त सुखोंका उद्गम-स्थान है। आओ, हम लोग उसीका गुणगान करें और देखें कि वह किस प्रकार हस्तगत किया जा सकता है।





दाम्पत्य-प्रेम।

संसारमें जितने प्रकारके प्रेम हैं, दाम्पत्य-प्रेम ही उन सबमें श्रेष्ठ है। इस प्रेमसे ही संसार की प्रतिष्ठा होती है। इस प्रेमसे ही नारी और पुरुषके दो विभिन्न हृदय एकमें मिल जाते हैं। "एक प्राण द्वै देह" की कहावत यहीं चरितार्थ होती है। संसारमें नन्दन-काननकी प्रतिष्ठा होती है। जिस परिवारमें, जिस घरमें स्वामी और स्त्रीमें परस्पर प्रेम नहीं है, उस परिवारमें और उस घरमें शान्तिका आवास कदापि नहीं रह सकता। प्रतिदिन अशान्तिका हाहाकार उठकर समस्त संसारको श्मशानमें परिणत कर देता है। वे परिवार और वे स्त्री-पुरुष बड़े ही अभागे हैं, जिनमें प्रेमका लेश नहीं है।

मनुष्य जब संसारकी सैकड़ों ज्वालाओंसे जल-भुन-कर पागल हो जाता है, तब एकमात्र दाम्पत्य-प्रेम ही

उसका शान्ति-प्रलेप होता है। संसारमें एकमात्र स्त्रीका मधुमय प्रेम ही, संसार भरको मायाकी जंजीर पहनाकर, जकड़ कर रखता है और विधाताके महान् उद्देश्य—सृष्टि रक्षा-व्यापारमें विशेष सहायता करता है। इसलिये यह परिणाम निकालना अनुचित न होगा, कि दाम्पत्य-प्रेम यदि न होता तो संसारका अस्तित्व ही न रहता। मनुष्य केवल मार-काट करके ध्वंसके पथमें अग्रसर होता रहता।

ऐसा मधुर जो दाम्पत्य-प्रेम है, वह जिससे बराबर समभावसे बिराजमान रहे, उसके लिये—उसके रक्षण और परिवर्द्धनके लिये जो कुछ करना उचित हैं, वह प्रत्येक मनुष्यका एकमात्र कर्त्तव्य होना चाहिये। हमारी समझमें मनुष्यको प्रत्येक उचित उपायसे दाम्पत्य-प्रेमकी रक्षा और अभिवृद्धि कर, अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहिये।

भगवान्‌की इच्छा भी यही है। मनुष्य विधाताकी इच्छाका सामञ्जस्य नहीं रख सकता, इसीलिए चिरकाल हाहाकार किया करता है। सामञ्जस्य यदि मौजूद रहे तो दाम्पत्य-प्रेम कभी क्षुण्ण नहीं हो सकता। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको उचित हैं, कि वह उन उपायोंका अवलंबन करे, जिनसे दाम्पत्य-प्रेमकी वृद्धि हो। यह प्रेम यदि

अटूट रहे तो सांसारका कोई भी दुःख मनुष्यको स्पर्श नहीं कर सकता। मनुष्य किसी सांसारिक पीड़ासे, पीड़ित नहीं हो सकता। तापसे दग्ध नहीं हो सकता। वह चिरकाल आनन्द-कल्लोलिनीमें अवगाहन कर, अपने मन, प्राण और सर्वाङ्गको शीतल किया करता है।

यह प्रेम बहुत ही पवित्र है। शान्तिदाता है। संसार-की विषम वेदनाओं, मर्मान्तिक चिन्ताओं और हृदयभेदी निराशाओंसे वेदनातुर, चिन्तित और निराश मानव-मन इसका आश्रय पाकर क्षणभरके लिये प्रफुल्ल हो जाता है। समस्त बाधाओंसे, बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है। इस दाम्पत्य-प्रेमका प्रचार कबसे हुआ, कैसे हुआ, किसने किया, उसका थोड़ासा इतिहास भी पाठकोंके हितार्थ यहाँ अंकित कर देना हम उचित समझते हैं।

बहुत पुराने ज़मानेमें विवाहकी प्रथा नहीं थी। मनुष्य दाम्पत्य-प्रेमकी कोई परवा नहीं करता था। स्त्री-पुरुष एक दूसरेको पसन्द कर अपनी काम प्रवृत्तिको चरितार्थ करते थे। इसके बाद उन लोगोंका आपसमें कोई सम्बन्ध नहीं रहता था। सन्तान उत्पन्न होनेपर पास-पड़ोसके आदमी उसकी सेवा शुश्रूषा करते थे। अतएव यह कहना अनावश्यक है, कि आजकलकी तरह उस समय कोई पारि-

वारिक बन्धन नहीं था। यह आसुरिक प्रथा जबतक मौजूद थी, तबतक ठीक ठीक पूर्णता मनुष्य प्राप्त नहीं कर सका था। भगवान् श्वेतकेतुने सबसे पहले इस प्रथा—अर्थात् विवाह-बन्धनका प्रवर्त्तन किया था। फलतः दाम्पत्य-प्रेमके आदि स्रष्टा भी वही कहे जा सकते हैं।

भगवान् श्वेतकेतुकी कथा बहुत मनोरञ्जक है। उस कथाके पहले यह जान लेना जरूरी है, कि पुराने ज़माने यहाँ स्त्रियोंकी अवस्था कैसी थी :—

अनावृताः किल पुरा स्त्रिया आसन् वरानने।
कामाचार विहारिण्यः स्वतन्त्राश्चारुहासिनि॥
तासां व्युच्चरमाणानां कौमारात्सुभगेपतीन्।
नाधर्माभूद्वरारोहे सहिधर्मपुराह्यभूत्॥
तं चैवधर्म पौराणं तिर्यग्योनिगताः प्रजाः।
अद्याप्यनुविधीयन्ते काम क्रोधविवर्जिताः॥
प्रमाण दृष्टधर्मोऽयं पूज्यतेज महर्षिभिः।
उत्तरेषु च रम्भोरु कुरुष्वद्वापि पूज्यते॥
स्त्रीणामनुग्रहकरः सहि धर्मः सनातनः।

—महाभारत आदि० १८८ अ०।

धर्मराज युधिष्ठिरके पिता पाण्डुने अपनी पत्नी कुन्तीसे

पुराने ज़मानेकी स्त्रियोंकी दशा इन श्लोकोंमें बतलाई है। इन श्लोकोंका अभिप्राय यह है :—

पाण्डु कहते हैं :—हे सुन्दरमुखी! हे चारुहासिनि! पुराने ज़मानेमें स्त्रियाँ अनावृत (अर्थात् घरोंमें बन्द नहीं) थीं। वे इच्छानुसार गमन और विहार कर सकती थीं। (अर्थात् वे जहाँ चाहें, जा सकती थीं, और जिससे चाहें विहार कर सकती थीं। किसी प्रकारकी रोक-टोक या धर्मका भय नहीं था।) उन्हें किसीकी अधीनतामें नहीं रहना पड़ता था। कौमारावस्थासे एक पुरुषसे लेकर अनेक पुरुषोंसे आसक्त होनेपर भी उन्हें किसी प्रकारका अधर्म नहीं होता था। (अर्थात् स्त्रियां कईबार या जितनी बार चाहें, पति-परिवर्त्तन कर सकतीं थीं, उन्हें किसी प्रकारका अधर्म नहीं होता था।) फलतः उस समय इस प्रकारका व्यवहार धर्म प्रचलित था। तिर्यग् योनिगत (पशुपक्षी, कीट पतंग इत्यादि) काम-द्वेष-विवर्जित प्राणी अब भी इस प्रकार धर्मानुसार काम करते हैं। तपः स्वाध्याय सम्पन्न महर्षिगण इस प्रामाणिक धर्मकी प्रशंसा किया करते हैं। उत्तर कुरुमें आज भी यह धर्म प्रचलित है। इसके बाद महाराज पाण्डु बतलाते हैं कि किस प्रकार इस प्रथाका लोप हुआ था। यहीं से श्वेतकेतुकी कथा प्रारम्भ होती है।

—काम-विज्ञान—

"प्राचीन समयमें उद्दालक नामक एक महर्षि थे। उनके पुत्रका नाम था श्वेतकेतु। एक समय श्वेतकेतु पिता माताके निकट बैठे हुए थे, इसीसमय एक ब्राह्मण आया और श्वेतकेतुकी माँका हाथ पकड़कर बोला—"आओ, हमलोग चलें।" श्वेतकेतुकी माताने चुपचाप ब्राह्मणका अनुसरण किया। पिताके सामने ही माताको बल-पूर्वक ले जाते देखकर श्वेतकेतुको बड़ा क्रोध आया। महर्षि उद्दालकने पुत्रके भावोंको ताड़ लिया, बोले "बेटा, क्रोध मत करो। यह नित्यधर्म है। गायोंकी तरह स्त्रियाँ सजातीय सैकड़ों पुरुषोंसे आसक्त होने पर भी अधर्ममें लिप्त नहीं होतीं।" लेकिन श्वेतकेतुको इससे सन्तोष नहीं हुआ। उन्हें पिताके समझानेसे और भी क्रोध आया और उन्होंने बलपूर्वक मनुष्यमें यह नियम स्थापित किया :—

व्युच्चरन्त्याः पतिं नार्या अद्य प्रभृति पातकम्।
भ्रूणहत्या समं घोरं भविष्यत्यसुखावहम्॥
भार्यां तथा व्युच्चरतः कौमारब्रह्मचारिणीम्।
पतिव्रता मेतदेव भविता पातकं भुवि॥

—महाभारत आदि० १२२ अ०।

अर्थात्—आजसे जो स्त्री पति भिन्न पुरुषान्तर संसर्ग

करेगी अथवा जो पुरुष कौमार ब्रह्मचारिणी या पतिव्रता स्त्रीको परित्याग कर, अन्य स्त्रीके प्रति आसक्त होगा, वे दोनों भ्रूणहत्या सदृश घोर पापमें लिप्त होंगे।"

इस कथासे हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं, कि उस समयकी स्त्रियाँ स्वेच्छाचारिणी थीं। एकसे लेकर अनेक पतियों तकसे खुल्लमखुल्ला सम्बन्ध रखती थीं। उस समय इस कार्यके लिये स्त्रियोंको निन्दित न होना पड़ता था और उस समयके लोगोंका ख्याल था, कि ऐसा करनेसे स्त्रियोंको अधर्म भी नहीं होता। फलतः उस समय "दाम्पत्य-प्रेम" नामक कोई चीज़ नहीं थी। स्वेच्छाहार-विहारमें लोग प्रवृत्त रहते थे। श्वेतकेतुको इस सामाजिक दुर्दशा पर क्रोध आया और उन्होंने प्रयत्न कर उसे निर्मूल कर दिया। उन्होंने अकेले इस कामको किया या ऋषियोंकी गोष्ठी हुई थी अथवा राजनियम बनवाया था, या प्रजामें घोर आन्दोलन कर इस नियमकी सृष्टि की थी, इसका हमें पता नहीं है। हमें इसका प्रयोजन भी नहीं। किन्तु श्वेतकेतु ही इस दाम्पत्य-जीवनके प्रवर्त्तक हैं, यह निर्विवाद है। ये श्वेतकेतु औद्दालकि श्वेतकेतुके नामसे प्रसिद्ध हैं। उपनिषदोंमें अनेक जगह इनका नाम आया है। यह बड़े विद्वान, धर्मनिष्ठ और तत्वज्ञानी थे। इन्होंने स्त्री-पुरुषोंके

व्यवहारको सुचारुरूपसे चलानेके लिये एक काम-शास्त्र भी बनाया था। इसका उल्लेख वात्स्यायनने अपने कामसूत्रमें किया है।

यद्यपि श्वेतकेतुने ही इस प्रथाका प्रवर्त्तन किया था, परन्तु एक दिनमें ही यह दाम्पत्य-जीवन प्रेम-बन्धनमें नहीं बँध गया। हजारों वर्षोंमें, सैकड़ों परिवर्त्तनोंके बाद दाम्पत्य-प्रेम इस अवस्थामें पहुँचा है। इसीलिये कहते हैं, कि इस प्रेमसे बढ़कर महत्वपूर्ण और महिमामय प्रेम दूसरा नहीं है।

हिन्दू नर-नारियोंमें जिस प्रकार प्रेम-बन्धन हैं, वैसा किसी अन्य देशमें और किसी अन्य जातिमें नहीं है। हमारे यहाँ विवाहके बादसे दाम्पत्य-जीवन आरम्भ होता है और यह कहना बाहुल्यमात्र होगा, कि इस जीवनमें प्रेमका अटूट और अपरिमित प्रभाव है। दुर्भाग्यसे इस समय दम्पतियोंमें वह प्रेम-प्रभाव—जो गार्हस्थ्यका मूल है—नहीं देखा जाता। इसके सामाजिक और परिस्थितिवश अनेक कारण हैं। उन सबपर प्रकाश डालना यहाँपर उचित नहीं प्रतीत होता।

प्रेमके आधार दो हैं, रूप और गुण। पहला गौण है और दूसरा मुख्य। पहला आधार निर्बल है, क्षय्य है

और दूसरा सबल और स्थिर। अतएव यह कहना एक प्रकारसे निरर्थक होगा, कि शुद्ध प्रेमका आधार गुण ही हो सकता है, रूप नहीं। कारण, सौन्दर्यके क्षीण होते ही प्रेमका विनाश हो जायगा। जो प्रेम सौन्दर्य पर अवलम्बित रहता है, वह मोह है। वह काम-लिप्साके भावसे प्रेरित रहता है। ऐसा प्रेम आनन्ददायक नहीं हो सकता। अतएव त्याज्य है।

दम्पतियोंमें जिस प्रेमकी आवश्यकता है अथवा होनी चाहिये, वह विशुद्ध प्रेम गुणज ही हो सकता है, रूपज नहीं। अतः दम्पतियोंमें स्वर्गीय सुखकी अभिवृद्धिके लिये, गार्हस्थ्य-जीवनको आनन्दमय बनानेके लिये गुणज प्रेमकी आवश्यकता है। दुःखकी बात है, कि हमारे आधुनिक दाम्पत्य-जीवनमें इस प्रेमका बहुत कुछ अभाव हो गया है। दम्पतियोंको प्रयत्न करना चाहिये कि यही प्रेम पुनः उनकी जीवन-लतिकाको हराभरा करनेवाला हो।

प्रेमके अभावसे हम लोगोंका जीवन नीरस और दुःखमय हो रहा है। प्रेमकी महिमा गाई जाती है, परन्तु दाम्पत्य-जीवनमें उसके अनुसार चलनेकी जरूरत नहीं समझी जाती। लेकिन हम लोगोंकी यह परिस्थिति बहुत

का होना बहुत जरूरी है। जिन दाम्पतियोंमें संयम नहीं होता, उनमें प्रेम नहीं हो सकता। डाक्टर फाउलरका कथन है कि "मेरा ४० वर्षका उचित रूपसे किया हुआ अभ्यास मुझे कहनेको मजबूर करता है, कि स्त्री पुरुषमें वैमनस्यको पैदा करनेवाला—उन दोनोंके दिलोंको तोड़ देनेवाला बारम्बार (कामान्ध बनकर) किया जानेवाला संयोग ही है।"

लेकिन इस समय जिस प्रकार प्रेमका अभाव परि-लक्षित होता है, वैसे ही संयमका भी अभाव हो गया है। संयमके अभावसे बड़ी हानि होती है। अतः स्त्री पुरुषोंमें प्रेमके साथ साथ संयम भी होना चाहिये। तभी गृहस्थ जैसे महान् आश्रमके कर्त्तव्योंका उचित रूपसे पालन हो सकता है।

यहाँ पर ऐतिहासिक प्रमाणों द्वारा यह दिखलानेकी जरूरत नहीं समझ पड़ती, कि अमुक-पति-पत्नीमें इस प्रकार-का प्रेम था, उससे उनको यह लाभ हुआ। अथवा अमुक दम्पतिमें प्रेम नहीं था, इसलिये यह हानि हुई। कारण, यह तो नित्यके अनुभवकी बात है। हम और आप नित्य ही इसका अनुभव करते रहते हैं। प्रत्यक्ष प्रमाण सबसे बलवत्तर होता है। अतएव इस प्रमाणको छोड़कर "ऐति

हासिक" प्रमाणोंकी खोज करना व्यर्थ है। व्यर्थ ही नहीं, बहुत बड़ी भ्रान्ति भी है।

हाँ, इतना जान लेना जरूरी है, कि यह दाम्पत्य-प्रेम हीका प्रभाव था, जो मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् रामचन्द्र समुद्रमें सेतु बांध कर दशाननको दलन करने गये थे। जब राजा विराट् के यहाँ अज्ञात वास कर रहे थे, तब द्रौपदीके प्रति अन्याय करनेके कारण भीमने सवंश कीचकका संहार किया था। यह भी दाम्पत्य-प्रेमका ही प्रभाव था। स्त्री और पुरुष जब परस्पर मिलजुलकर रहते हैं, तब वे असाध्य साधन कर सकते हैं। महाराज दशरथ एक बार राक्षसोंसे युद्ध कर रहे थे। अकस्मात् उनके रथका धुरा टूट गया। उनकी धर्मपत्नी महारानी कैकेयी उस समय उनके साथ ही थीं। उन्होंने उस धुरेकी जगह अपना हाथ लगा दिया और महाराज दशरथकी विजय हुई। यदि कैकेयी न होतीं, तो बतलाइये, राजा दशरथकी क्या दशा होती?

इसी प्रकारकी अनेक कथायें प्रसिद्ध हैं। पुरानी घटनाओंको छोड़कर यदि कोई इस समयकी घटनाओंपर दृष्टिपात करे, तो अनेक उदाहरण मिलेंगे। कहनेका तात्पर्य यह है कि जिन दम्पतियोंमें प्रेम है, सहानुभूति है,

एक दूसरेकी आशा आकांक्षाओंके प्रति आन्तरिक अनुराग है, वे ही दम्पति सुखी हैं।

एक दूसरेके प्रेममें लीन हुए दम्पतियोंको देखनेसे यह मालूम होता है, कि वे कितने निर्मल, कितने शान्त चित्त और कितने मिले हुए रहते हैं। सच्चा प्रेम उनके हृदयको इतना सुशील बना देता है, कि उनमेंसे सारे दुर्गण निकल जाते हैं और पुनीत प्रेमसे पावन हुआ उनका मन दुर्गुण की ओर जानेका विचार तक नहीं करता। पवित्र मनः शक्ति दुर्गुणोंको दबा देती है। इसीलिये सच्चा प्रेम उनके हृदयको और मनको भी पवित्र बना देता है।

प्रेमजन्य आनन्दके बढ़ जानेपर दम्पति पर्णकुटीमें तृण-शय्यापर भी स्वर्गीय सुख और अलौकिक आनन्द-का अनुभव करते हैं; वे आनन्दके नभोमण्डलमें विहार करते हुए अपना समय बिताते हैं। कुटिल प्रपञ्च उनके इस आनन्दमें बाधा डालनेको सर्वथा असमर्थ रहता है। उनके परस्पर व्यवहार आदिमें इतनी सुशीलता आ जाती है, कि मूर्ख उसे देखकर आश्चर्य करते हैं।

वस्तुतः वे दम्पति धन्य हैं, जिन्हें अपने जीवनमें सच्चे दाम्पत्य-सुखका अनुभव करनेका अवसर मिला है। दाम्पत्य-सुख दाम्पत्य-प्रेमपर ही निर्भर हैं और प्रेम संयम पर।

अतएव सबका परस्पर अभेद्य सम्बन्ध है। एकको परित्याग करनेकी कल्पना भी नहीं हो सकती। ऐसी दशामें दम्पतियोंको प्रयत्न-पूर्वक प्रेम-धर्मका पालन करना चाहिये।

परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं, कि यह प्रेम बाजारमें नहीं बिकता। मनुष्यको स्वयं अपने घरमें इसका बीजारोपण करना पड़ता है। यह एकाङ्गी नहीं होता। पति और पत्नी-दोनोंके हृदयमें समान रूपसे इसकी जड़ जमनी चाहिये। दोनों समान रूपसे जब जलसिंचन करते हैं तब यह पल्लवित होता है और उन्हें इसके सुमधुर फल आस्वादित करनेको मिलते हैं।

दाम्पत्य-प्रेम न चाहनेवालोंका संसारमें बिलकुल अभाव है। सभी इस प्रेमके भिखारी हैं। इस प्रेमबन्धनमें आबद्ध होकर सुखी जीवन प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा करना मनुष्यका एकमात्र कर्त्तव्य होना चाहिये। परन्तु लोग यह नहीं जानते, कि किस प्रकार इस प्रेमकी सृष्टि, किस प्रकार रक्षा और किस प्रकार अभिवृद्धि की जा सकती है। ऐसे लोगोंके लिये निम्नलिखित बातें विशेष उपयोगी प्रमाणित होंगी, क्योंकि दाम्पत्य प्रेमकी सृष्टि, रक्षा और अभिवृद्धि अधिकांशमें इन्हीं बातों पर निर्भर करती हैं :—

काम-विज्ञान

(१) विवाह होनेके पहले स्त्री और पुरुष एक दूसरेको अच्छी तरह पसन्द कर लें (२) पसन्दगीमें रूपकी अपेक्षा गुणोंपर विशेष ध्यान दें (३) हृदयमें अनुराग उत्पन्न होने पर ही विवाह करें (४) विवाह होनेके बाद पति और पत्नी एक दूसरेके निकट आत्म समर्पण कर दें। (५) पति या पत्नीमें कोई दुर्गुण हो, तो उसे भी गुण मान कर उसपर श्रद्धा स्थापित करें और तनमनसे उसे दूर करनेकी चेष्टा करें (६) दाम्पत्य-संयोग यथाविधि और नियमित मात्रामें किया जाय। ऐसा न हो, कि वह अत्याचारकी सीमामें जा पहुंचे और उससे स्त्री या पुरुष अथवा दोनोंका स्वास्थ्य नष्ट हो जाय (७) पति पत्नी सुख दुःखमें एक दूसरेके सहायक बने रहें (८) स्त्रियाँ पातिव्रत और पुरुष एकपत्नीव्रतका पालन करें (९) गृहकार्यमें, कपड़े व गहनोंके सम्बन्धमें, लड़के बच्चोंको व्याह शादीमें, आर्थिक अवस्थाके अनुसार ही खर्च किया जाय (१०) अपनी आवश्यकतायें जहांतक हो सके घटा दी जायँ।

इन्हीं सब बातोंसे दाम्पत्य-प्रेमकी सृष्टि, उसकी रक्षा और अभिवृद्धि होती है। अगले अध्यायोंमें हम इन्हीं बातोंपर विस्तार पूर्वक विचार करेंगे।



नारी-भेद

पिछले अध्यायमें हम यह बतला चुके हैं, कि दाम्पत्य प्रेम ही मानव-जीवनको सुखी बनानेका मूलमन्त्र है। दाम्पत्य-प्रेमका आरम्भ विवाहसे होता है। जबतक कोई स्त्री या पुरुष विवाह-बन्धनमें आबद्ध नहीं होता, तबतक वह दाम्पत्य-प्रेमसे सर्वथा अनभिज्ञ ही रहता है। परन्तु संसारमें ऐसे मनुष्य भी कम नहीं होते, जो विवाह हो जाने पर भी यह नहीं जानते, कि दाम्पत्य-प्रेम किस चिड़ियाका नाम है। उन्हें दाम्पत्य-प्रेम जनित आनन्द मिलना तो दूर रहा, उलटे वे यह अनुभव करते हैं, कि विवाह होनेके पहले वे कहीं अधिक सुखी थे। बहुतोंको विवाह होनेके बाद अपना जीवन भार मालूम होने लगता है और बहुतोंको यह विश्वास हो जाता है, कि विवाहसे

उनकी उन्नतिमें बाधा पड़ गयी है। ऐसा क्यों होता है? जो विवाह आनन्दका आगार मालूम होना चाहिये, वह दुःखकी खानि क्यों प्रतीत होने लगता है? जो काम सुखके लिये किया जाता है, वह दुःखका कारण क्यों हो पड़ता है? जो विवाह उन्नति मार्गका पोषक बतलाया गया है, वह उस मार्गमें बाधक क्यों सिद्ध होता है?

गम्भीरता पूर्वक विचार करनेसे ज्ञात होता है, कि ऐसा होनेका प्रधान कारण दाम्पत्य-प्रेमका अभाव है। लोग विवाहके समय पात्र निर्वाचन और विवाहके बाद दाम्पत्य-संयोग तथा गार्हस्थ्य धर्मके पालनमें ऐसी भयंकर भूलें करते हैं, कि जिनके कारण, दाम्पत्य-प्रेमका पल्लवित होना तो दूर रहा, वह जड़ मूलसे ही निर्वापित हो जाता है। विवाहके समय पात्र निर्वाचनमें असावधानी रखनेसे बहुधा बेमेल विवाह हो जाया करते हैं। कभी कभी तो वर और वधूकी उम्र, शारीरिक अवस्था—स्वास्थ्य और गठन—रूपरंग तथा गुणोंमें इतनी विभिन्नता आ जाती है, कि चेष्टा करने पर भी उन दोनोंमें आन्तरिक प्रेम उत्पन्न नहीं होता। कभी कभी सुकुमार और क्षीण स्वास्थ्यवाली स्त्रियाँ ऐसे पाशव-प्रकृति पुरुषोंके पाले पड़ जाती हैं, जो उन्हें कामयन्त्र समझ कर उनपर इतना अत्याचार करते हैं,

कि उन बेचारियोंका जीवन-कुसुम असमयमें ही मुरझा जाता है। इसके विपरीत कभी कभी किसी सहृदय पुरुषको ऐसी कर्कशा और हृदयहीन स्त्रियाँ मिल जाती हैं, जो अपने दुर्व्यवहारसे उसके नाकोंदम कर देती हैं। कहना व्यर्थ है, कि ऐसे स्त्री-पुरुषोंमें ठीक वैसा ही मेल रहता जैसा तीन और छःमें। जिसप्रकार ऊसरभूमिमें बीज अंकुरित नहीं होता, उसी प्रकार ऐसे नर-नारियोंके हृदयमें दाम्पत्य-प्रेमकी जड़ नहीं जमती। इसी प्रकार स्त्री या पुरुषमें अनेक ऐसी त्रुटियाँ होती हैं, जिनके कारण उनमें दाम्पत्य-प्रेम उत्पन्न नहीं होता और उसीके फलस्वरूप उन्हें अपना जीवन भार रूप मालूम होने लगता है।

हम अपने पाठकोंको ऐसी अनेक बातें बतलायेंगे, जिनसे दाम्पत्य-प्रेमकी उत्पत्ति, उसकी रक्षा और उसकी अभिवृद्धि होती है। हम पहले ही कह चुके हैं, कि दाम्पत्य-प्रेमकी उत्पत्ति या आरम्भ विवाहसे होता है, अतः दाम्पत्य-प्रेमकी सृष्टि करनेके लिये पहले पहल विवाह हीके समय चेष्टा करनी होती है। यदि दुर्भाग्यवश विवाहके समय इसके लिये कोई चेष्टा नहीं की जाती, तो ऐसे स्त्री पुरुषोंका योग हो जाता है, जिनमें दाम्पत्य-प्रेमका उत्पन्न होना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जाता है। इसलिये

जो लोग दाम्पत्य-प्रेमके इच्छुक हों, जो अपने जीवनको सुखमय बनाना चाहते हों, जो निराशा और निरुत्साहिता-को सदा अपने जीवनसे दूर रखना चाहते हों, उन्हें सर्वप्रथम पात्र निर्वाचन (पति या पत्नीकी पसन्दगी) के सम्बन्धमें सावधानता अवलम्बन करनी चाहिये।

हम इस पुस्तकमें अब कई अध्याय ऐसे ही लिखने जा रहे हैं जो पात्रनिर्वाचनसे सम्बन्ध रखते हैं। इन अध्यायों-की अधिकांश बातें हम प्राचीन पण्डितोंके मतानुसार ही अंकित करेंगे। संभव है, कि हमारे कुछ पाठकोंको वे अनावश्यक या वर्तमान कालके लिये अनुपयुक्त प्रतीत हों। परन्तु हमारी धारणा है, कि वे उन बातोंमें अच्छाई या गुणकी खोज करेंगे, तो उन्हें बहुतसी बातें ऐसी मिलेंगी जो वास्तवमें बहुत उपयोगी होंगी।

पात्रनिर्वाचनके सम्बन्धमें हम जो बातें लिखने जा रहे हैं, वे अधिकांशमें स्त्री और पुरुषोंके गुण, अवगुण और उनकी रुचियोंकी परिचायक हैं। पाठकगण यदि उनसे सार ग्रहण कर तदनुसार आचरण करेंगे, तो उन्हें बहुत लाभ होगा। इस सम्बन्धमें सबसे पहले हम नारी-भेद पर विचार करेंगे। प्राचीन पण्डितोंने स्त्रियोंको उनके रूप और गुणके अनुसार कई श्रेणियोंमें विभक्त किया है

Preface by चन्द्रशेखर पाठक

और यह बतलाया है, कि किस श्रेणीकी स्त्रीके साथ किस श्रेणीके पुरुषका विवाह होने पर उनमें दाम्पत्य-प्रेमकी सृष्टि होती है। कई पण्डितोंने इन्हें पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी—इन चार श्रेणियोंमें विभक्त किया है और कई पण्डित—जिनमें वात्स्यायन मुनि मुख्य हैं—मृगी, वड़वा और हस्तिनी यह तीन ही भेद मानते हैं। हम अपने पाठकोंके हितार्थ दोनों प्रकारके भेद अंकित कर रहे हैं, ताकि उन्हें इस विषयकी पर्याप्त जानकारी मिल सके।

पद्मिनी-लक्षण।

अमल मुकुल-मृद्वी फुल्लराजीवगन्धः।
सुरतपयसि यस्या सौरभं दिव्यमङ्गे॥
चकित मृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे।
स्तनयुगलमनर्घ्यं श्रीफल श्री विडम्बि॥

अर्थात्, जो कमलके अन्तःप्रदेशके समान कोमल हो, जिसकी देहमें अलौकिक सौरभ (सुगन्धि) हो, जिसकी आँखें चकित हरिणीको आँखोंके समान हों, जिसके नेत्र-प्रान्त रक्त (अर्थात् आँखोंके कोने लाल) हों, दोनों कुच मनोहर हों और उनका सौन्दर्य एवम् आकार प्रकार बिल्व-फलको मात कर देनेवाला हो।

Published by Pathak & Co 73, बी. वाराणसी घोष स्ट्रीट Calcutta.

तिलकुसुम समानां बिभ्रती नासिकांच ।
द्विज गुरुसुर पूजां श्रद्धानां सदैव ॥
कुवलयदल कान्तिः कापिचाम्पेय गौरी ।
विकच कमल कोशाकारकामातपत्रा ॥

जिसकी नाक तिलके फूल जैसी सुडौल और सुन्दर हो, जो सदैव ब्राह्मण, गुरु और देवपूजामें श्रद्धा रखती हो, जिसके शरीरकी कान्ति कमल-दलके रंगकी तरह और जिसका वर्ण चम्पाफूलके समान गोरा हो—

व्रजति मृदुसलीलं राजहंसीवतन्वी ।
त्रिवलि वलित मध्या हंस-वाणी सुवेषा ॥
मृदुशुचिलघु भुङ्क्ते मानिनी गाढ़ लज्जा ।
धवल कुसुम वासो वल्लभा पद्मिनीस्यात् ॥

जो कृशाङ्गी हो, राज-हंसीकी तरह जिसकी गति हो, त्रिवलिसंयुक्त हो, जिसकी हंसकी सी वाणी हो, जो मृदु शुद्ध और सूक्ष्म भोजन करनेवाली हो, सफेद फूलोंके वस्त्रोंको जो प्यार करती हो, वह पद्मिनी कहलाती है ।

काम-शास्त्रमें पद्मिनी जातिकी नारीकी बड़ी प्रशंसा की गयी है । इसको "उत्तमा" कहा गया है । आचार्य सिद्ध नागार्जुनने अपने रतिशास्त्र नामक ग्रन्थमें पद्मिनीके लक्षण इसप्रकार लिखे हैं :—

कमल-नयन-युक्ता क्षुद्ररन्ध्रा च नासा।
कृशतनु मृदुवाणी दीर्घ केशी सुभाङ्गी॥
परहित मतियुक्ता पद्मगन्धा सुवेषा।
अविरल कुचयुग्मा कीर्त्तिता पद्मिनी सा॥

जिसके नेत्र कमलकी तरह विशाल हों, जिसका नासारन्ध्र क्षुद्र हो, केश बड़े बड़े हों, देहयष्टि क्षीण अथच मनोहर हो, वेष सुन्दर और कुचद्वय घन सन्निविष्ट हों, जिसकी बुद्धि परहित साधनमें प्रवृत्त रहती हो और शरीर-की गन्ध पद्मकी तरह सुवासित हो।

हरिण नयनयुग्मा स्नेहयुक्ता सुवदनी।
पिकसम कलकण्ठिहास्य वक्त्राम्बुजासा॥
पतिगत मतियुक्ता लक्षणैर्लक्षितांगी।
भुवनतलनिवासा मोहयन्ती कटाक्षैः॥

जिसके नेत्रद्वय मृगी-लोचनोंकी तरह सुदृश्य, कंठ कोकिल-कंठकी तरह श्रुतिसुखकर, मुख-पद्म हास्यसे परि-पूर्ण, अंग सुलक्षणोंसे लक्षित और जो पतिपरायणा हो उसे पद्मिनी कहते हैं।

तात्पर्य यह कि पद्मिनी स्त्री बहुत ही सुन्दर स्वभाव-वाली, धर्मवती और पतिव्रता होती है। शरीर सुन्दर साँचेमें ढला हुआ, बालोंकी बारीकी और लम्बाई तथा

रंगत आकर्षणीय, एवम् शरीरसे फूलोंकी सी गन्ध आती है। वाणी मधुर, रसीली और स्वभाव देवताके तुल्य होता है। देहयष्टि लम्बी होती हैं। आँखें बड़ी बड़ी, चेहरा भरा हुआ, नाक, कान, होठ और उँगलियाँ पतली और ग्रीवा लम्बी होती है। सत्यप्रिय, ईश्वरकी भक्त और धर्मप्राण होती है। भोग-रुचि बहुत थोड़ी रखती है। हर समय कामकाजमें लगी रहती हैं। किसी समय उदास नहीं होती और प्रसन्न रहती है।

प्राचीन पण्डितोंने पद्मिनीके रंगरूप, आकृति प्रकृति और शील स्वभावके अतिरिक्त उसके महत्वका भी वर्णन किया है। रतिशास्त्रमें लिखा है कि :—

यस्मिन्गृहे वसेत्साहि तद्गृहं स्वर्गरूपकम्।
न तत्र शोकदु:खौस्त: सदा सुख विराजते॥
यस्य गृहे वसेद् ब्रह्मन् पद्मिनी पद्मगन्धिनी।
धन्योऽसौ पुरुषो लोके लक्ष्मीवान्सुखभाक् सदा॥
धनवान् पुण्यवान् सोऽपि यद्गृहे पद्मिनी-शुभा।
दीर्घजीवी भवेच्चैव महेशेन प्रकीर्त्तितम्॥

अर्थात् जिस घरमें पद्मिना स्त्री रहती है वह घर नि:सन्देह स्वर्गलोकके समान है। वहाँ शोक व दु:ख दिखाई नहीं देता। उस घरमें सदा सुख विराजमान

रहता है। जिसके यहाँ पद्मिनी स्त्री होती है, वह पुरुष संसारमें धन्य होता है, सुखी होता है और धनवान होता है। महादेवने स्वयं कहा है, कि जिसके घरमें पद्मिनी स्त्री होती है वह निःसन्देह धनवान, पुत्रवान और दीर्घजीवी होता है।

चित्रिणी-लक्षण।

सुगतिरनतिदीर्घा नातिखर्वा कृशाङ्गी।
स्तनजघन विशाला काक जङ्घोन्नतोष्ठी॥
मधु सुरभिरताम्बुः कम्बु कण्ठी चकोर—
स्वरवचन विभागा नृत्यगीतादि विज्ञा॥

जिस स्त्रीकी गति अच्छी, शरीर न बहुत छोटा न बहुत बड़ा, अंग क्षीण और स्तन तथा जंघायें बड़ी होती हैं एवम् काकजंघाओंकी तरह समजंघा, उन्नत ओष्ठ, कम्बु ग्रीवा (जिसके कंठमें शंखकी तरह तीन रेखायें होती हैं, उसे कम्बुग्रीवा कहते हैं) चकोरकी तरह वाक्यविन्यास और नृत्यगीत तथा अन्यान्य कलाओंकी जाननेवाली स्त्रीको चित्रिणी कहते हैं।

मदनसदनमस्या वर्तुलोच्छूनमन्त-
र्मृदुमदनजलाढ्यं लोमभिर्नातिसान्द्रैः॥

प्रकृति चपलदृष्टिर्वाह्य संभोगरक्ता।
रसयतिमधुराल्पं चित्रिणी चित्ररक्ता॥

चित्रिणी नारीकी दृष्टि स्वभावतः चपल होती है और वह वाह्य-सांभोग अर्थात् आलिंगन, चुम्बनादिके प्रति अनुरागिणी होती है। जिसका सांग मधुर होता है, जो रंगीन और चित्र-विचित्र कपड़ों, पुष्प मालाओं, अलंकार और शिल्प प्रभृतिको पसंद करती है, उसे चित्रिणी कहते हैं। आचार्य सिद्ध नागार्जुनने इसके लक्षण यह बतलाये हैं :—

कठिन घन कुचाढया नातिदीर्घा मनोज्ञा।
रतिरस गुणयुक्ता सुन्दरी नातिखर्वा॥
कमलनयन युग्मा लोभहीना सुशीला।
तिलकुसुम समानां नासिका चित्रिणी सा॥

अर्थात् स्तनयुगल कठिन और घनसन्निविष्ट, कद न बहुत लम्बा न बहुत छोटा, नेत्रद्वय कमल-दलकी तरह और नासिका तिल-पुष्पके सदृश होती है। यह रमणी, मनोहारिणी, रति-रसज्ञ, लोभहीना और सुशीला होती है।

यस्या मनो न चलति कर्हिचिच्च प्रलोभनैः।
सत्यं प्रियञ्च वदति सर्वदा मिष्टभाषिणी॥
दया क्षमावती या हि देवपूजा परायणा।
पत्यौ परायणा या हि नेक्षते परपुरुषम्॥

विप्रभक्ता च या नारी प्रीतास्यात् स्वल्प मैथुने।
सदा धर्मे मतिः यस्याश्चित्रिणी सा प्रकीर्त्तिता॥

अर्थात् जिसका मन किसी प्रकारके प्रलोभनोंसे विचलित नहीं होता, जो सत्य, मधुर और प्रिय बोलती है, जो दया और क्षमाका आगार होती है, जो देव और पति-पूजा परायणा होती है, जो परपुरुषकी ओर दृष्टिपात भी नहीं करती, जिसकी ब्राह्मण और धर्मपर भक्ति होती है और जो स्वल्प मैथुनसे तृप्त हो जाती है, उसे चित्रिणी कहते हैं।

तात्पर्य यह कि चित्रिणी स्त्री पतिव्रता और मिलनसार होती है। खाने पीनेमें कम समय खर्च करती है। भोगकी लालसा थोड़ी रखती है। शृंगार तथा हाव-भावकी प्रेमिक होती है। प्रत्येक काम शीघ्रतासे कर लेना चाहती है। कुछ अलस प्रकृतिकी होती है। तीर्थ, व्रत और साधुसेवा भी करती है। शरीर मझोला, गुदगुदा और सुन्दर होता है। केश घुंघराले, सिर गोल, कान बड़े, कुच लम्बे, नेत्र पतले, पिंडली और कमर मोटी होती है। गति अच्छी होती है। गाने बजानेकी शौकीन और प्रवीण होती है।

शंखिनी-लक्षण।

तनुरतनुरपि स्याद्दीर्घ देहाङ्घ्रिमध्या।
ह्यरुण कुसुमवासः काङ्क्षणीकोपशीला॥
अनिभृत शिरमंगे, दीर्घ निम्नंवहन्ती।
स्मरगृहमतिलोम क्षारगन्धि स्मराम्बु॥

अर्थात् शंखिनी स्त्रीका शरीर मोटा भी होता है और पतला भी। देह-यष्टि, चरण और मध्यभाग लम्बा होता है। लालफूलोंके वस्त्रोंको पसन्द करती है। स्वभाव क्रोधी होता है। अंग कोई नीचा और कोई ऊँचा होता है।

सृजति बहुनखांकं संप्रयोगे लघीयः।
स्मरसलिलपृषत्का किंचिदुत्तप्तगात्री॥
न लघु न बहु भोक्त्री प्रायशः पित्तलास्यात्।
पिशुन मलिन चित्ता शंखिनो रासभोक्तिः॥

अर्थात् शरीर कुछ कुछ गर्म रहता है। न बहुत अधिक खाती है, न थोड़ा। चुगुलखोरीकी भी आदत होती है और वाणी गधेकी सी कठोर होती है। आचार्य सिद्ध नागार्जुनने रति-शास्त्रमें इसके लक्षण यह बतलाये हैं :—

भवति कमलनेत्रा शीलयुक्ता च दीर्घा।
कठिन घन कुचाढ्या शंखिनी क्षारगन्धा॥

मधुर वचनयुक्ता कण्ठदेशे त्रिरेखाम्—
कथित मिदमशेषं लक्षणं शास्त्रयुक्तम् ॥

अर्थात् शंखिनी जातीय रमणीके नयनयुगल कमल-दलके सदृश होते हैं। देह दीर्घ होती है। स्तनद्वय कठिन और अविरल होते हैं। वचन मधुर और कण्ठदेश रेखात्रय विभूषित होता है। इस जातिकी स्त्रियाँ शीलयुक्त और इनकी देहोंमें क्षार-गन्ध अनुभूत होती है।

मदनेनातुरा याहि, आलाप रसिकासदा।
पत्युर्वापि गुरोर्वापि न विभेति कदाचन ॥
काङ्क्ष्यते नियतं याहि अन्यैश्च रमणं सदा।
मदनार्त्ता सदा ब्रह्मन्, शंखिनी सा स्मृता बुधैः ॥
ऊर्द्ध नासा महाभाग, क्षुत्पिपासातुरा सदा।
उच्चैश्च हसते याहि शंखिनी सा स्मृता बुधैः ॥

अर्थात् जो सदैव काम-पीड़ित रहती हैं, निरन्तर रसालापमें निरत रहती है, क्या पति और क्या दूसरे गुरुजन—किसीसे नहीं डरती हैं, जो दूसरे पुरुषोंसे रमणकी आकांक्षा करती है, जो सदा मदनातुर रहती हैं, उसे पण्डित लोग शंखिनी कहते हैं। पण्डितोंकी राय यह भी है, कि शंखिनी जातिकी स्त्रियोंकी नासिका कुछ उन्नत होती है और वह सदैव क्षुधार्त्त और पिपासातुर रहती हैं।

हस्तिनी-लक्षण ।

अललित गति रुच्चैः स्थूल वक्राङ्गलीकं ।
वहति चरण युग्मं कन्धरां ह्रस्वपीनाम् ॥
कपिल कच कलापा क्रूर चेष्टाति पीना ।
द्विरद मद विगन्धिः स्वाङ्गकेऽनङ्गके च ॥

अर्थात् जिसकी गति अच्छी नहीं होती, जिसके दोनों पैरोंकी अँगुलियां टेढ़ी और मोटी होती हैं, जिसके कंधे छोटे और मोटे होते हैं, केश-कलाप जिसका भूरे रङ्गका होता है, जिसकी चेष्टा क्रूर होती है, जिसकी देह बहुत स्थूल होती है और जिसके शरीरसे हाथीके मदकी गन्ध बाहर होती है ।

द्विगुण कटुकषाय प्राय भुग् वीतलज्जा ।
ललदति विपुलोष्ठी दुःखसाध्या प्रयोगे ॥
बहिरपि बहुरोमात्यन्त मन्तर्विशालं ।
वहति जघनरन्ध्रं हस्तिनी गद्गदोक्तिः ॥

अर्थात् जो बहुत भोजन करती हैं, कड़वी और कषैली चीज पसन्द करती है, निर्लज्ज होती है, सुरतमें बड़ी मुश्किलसे सन्तुष्ट की जा सकती है, देह भरमें रोमोंकी अधिकता होती है, गद्गद-भाषिणी होती है, उसे हस्तिनी

कहते है। आचार्य सिद्ध नागार्जुनने इसके सम्बन्धमें लिखा है कि :—

भवति मदन-दग्धा हस्तिनी स्थूल देहा।
नयन-दहन-रक्ता मद्य गन्धाल्पकेशी॥
कठिन घन कुचाढ्या नासिका स्थूल रन्ध्रा।
पुलकित सकलांगि सर्वदा काम दग्धा॥

अर्थात् हस्तिनी जातिकी स्त्रियां सदैव मदन-तापसे जलती रहती हैं। उनकी देह स्थूल होती हैं। आँखें अग्निकी तरह सुर्ख रङ्गकी होती हैं। बाल कम होते हैं। स्तन-द्वय कठिन और घन होते हैं। नाकके दोनों छिद्र स्थूल होते हैं। इसके शरीरसे सर्वदा मदकी गन्ध अनुभूत होती हैं और सदैव काम-तापसे तप्त रहनेके कारण इसका अंग पुलकित रहता है।

स्थूलाधरा स्थूल कुचा, स्थूल केश नितम्बिनी।
कामेन विह्वलायाहि हस्तिनी सा स्मृता बुधैः॥
कदाचार रतायाहि पर मैथुन कांक्षिणी।
हस्तिनीतां विजानीयात् त्रिषुलोकेषु विश्रुताम्॥

अर्थात् जिस रमणीके होठ मोटे हों, कुच-द्वय मोटे हों, नितम्ब प्रदेश स्थूल हो और जो नितान्त कामार्त्त हो, पण्डित लोग उसे हस्तिनी कहते हैं। जिसका आचरण

अच्छा नहीं है, जो पर पुरुषसे सम्भोगकी आकांक्षा रखती हैं। इस प्रकारकी नारीको हस्तिनी समझना चाहिये।

रति-रहस्य और रति शास्त्र प्रभृति ग्रन्थोंमें स्त्रियोंके जो चार भाग किये गये हैं, उनके लक्षण अंकित किये जा चुके। परन्तु हम पहले ही बतला चुके हैं, कि वात्स्यायन मुनि स्त्रियोंके (१) मृगी किंवा हरिणी (२) बड़वा और (३) हस्तिनी—यह तीन ही भेद मानते हैं। उनके मतानुसार रतिरहस्यमें इनके जो लक्षण बतलाये गये हैं, वह हम अपने पाठकोंके हितार्थ यहां अंकित करते हैं।

मृगी-लक्षण।

सम मूर्द्धा कुञ्चित घनकेशो, तुच्छोदरी नितम्बाढ्या।
अल्प-विवरनासा पुट विकच रुचिर पक्ष्मलाक्षी च॥
अरुणाधर कर चरणा कोमल तर सरल भुजलतिका च।
आयत कर्ण कपोल-ग्रीवाऽनतिमांसलोरु जघना च॥
सम गुल्फा मद्गज-गति रीर्ष्या कुलितोन्नतस्तनी तन्वी।
तरल मनाः सुकुमाराः लघुकोपा सुरत लम्पटालघु भुक्॥
कुसुम सुरभि रति सलिला सरलाङ्गुलिरलस मधुरोक्तिः।
निम्न षडङ्गुल गुह्या, ऋजु तनुरनुरागिणी हरिणी॥

अर्थात् जिसका सिर गोल हो, केश-पाश घुंघराले और

घने हों, पेट छोटा हो, विपुल या विशाल-नितम्बा हो, नासिकाके छिद्र छोटे हों, और खिले हुए मनोहर कमलके समान जिसके नयन हों। हथेलियां, तलवे और होठ जिसके स्वभावतः सुर्ख हों, बाहु-लता कोमल तथा सरल हो, कान, कपोल (गाल) और ग्रीवा चौड़ी हो, जंघायें ज्यादा मांसल न हों। जिसके गुल्फ (एंडीके ऊपरकी गांठ) बराबर हों, जो मद-मत्त गजराजकी गतिवाली हो, जो ईर्ष्यालु हो, जो ऊँचे कुचोंवाली हो, जो कृशाङ्गी हो, चञ्चल चित्तवाली हो, सुकुमार और कोमल अंगवाली हो, जिसके स्वभावमें क्रोधकी मात्रा कम हो, जो सम्भोगके लिये उत्सुक रहती हो और मिताहारी—अर्थात् सूक्ष्म भोजन करनेवाली हो, जिसकी उंगलियां सरल हों, उक्तियां मधुर और अलस हों, जो कोमलाङ्गी और अनुरागिणी—अर्थात् स्नेहवती हो, इस प्रकारकी देह और प्रकृतिवाली रमणी हरिणी-जातिकी होती है।

बड़वा-लक्षण।

निम्न समुन्नत मूर्द्धा स्थूल सरल सान्द्र शिरसिज प्रचया।
उत्पल-दल चल नयना स्थूलायत कर्ण युगल-वदना॥
स्थूल रदन राजि रायत दन्तच्छद पीन कठिन कुचकलशा।
सुललित मांसल बाहुः तुच्छोदरी कमल मृदु पाणिः॥

विस्तृत हृदय-कपाटा-गद्गद मधुरोक्ति रीर्ष्ययो द्विन्ना।
निम्न सुवर्त्तुल नाभिर्वक्र रुचिर जघन समलघूरुश्च॥
विपुल कटिर्नत मध्या खेलालस गमन रक्त सम चरणा।
चपल हृदय कोमल तनुर्मनिद्राहार प्रिया प्रिय प्रवणा॥
प्रथम चरम धात्वधिका पीत पलल गन्धि सुरताम्बुः।
क्षरण मदन रण-गुणिनी वहति च वडवा नवाङ्गुलं गुह्यम्॥

जो विषम अथच उन्नत मस्तकवाली हो, जिसके केश पाश स्थूल और घने हों, जिसके नेत्र कमल जैसे अथच चंचल हों, जिसके दोनों कान और मुख-मण्डल मोटा और चौड़ा हो, जिसकी दन्त पंक्ति स्थूल अर्थात् चौडी हो, जिसके होठ भी चौड़े हों, जिसके कुच मोटे और कठिन या कठोर हों, जिसकी भुजायें मांसल (अर्थात् गुदगुदी) और सुललित—अर्थात् मनोहर हों, जो छोटे पेटवाली हो, जिसके हाथ कमल कोमल—अर्थात् कमलके समान मुलायम हों।

जिसका वक्षस्थल अर्थात् हृदय विशाल हो, जिसकी वाणी पुलकित और मञ्जुल हो, (श्लोकमें "गद्गद" पद आया है, गद्गदका शब्दार्थ यह हैं, "अत्यधिक हर्ष, प्रेम या श्रद्धा आदिके आवेगसे इतना पूर्ण कि अपने आपको भूल जाय और स्पष्ट शब्द उच्चारण न कर सके. अथवा

अधिक हर्ष, प्रेम आदिके कारण रुका हुआ, अस्पष्ट या असंबद्ध इत्यादि) जो ईर्ष्यासे आकुल रहती हो, जिसकी नाभी गभीर और गोल हो, जिसकी जंघायें वक्र (अर्थात् टेढ़ी) खूबसूरत, और बराबर हों।

जिसकी कमर विशाल हो, जो बीचमें कुछ झुकी हुई हो, जिसकी गति विलास और आलससे भरी हुई हो, पैरोंके तलवे बराबर और सुर्ख रङ्गके हों, जिसका चित्त चंचल हो, हृदय कोमल हो, नींद और भोजन जिसे प्यारा हो और जो स्वभावतः प्रियके प्रति आसक्तचित्ता हो।

जिसके शरीरमें प्रथम और अन्तिम धातु अधिक हो, (प्रथम धातु है, वायु और चरम धातु है, श्लेष्मा, उन दोनोंसे युक्त—अर्थात् जो बात श्लेष्म प्रकृतिवाली हो) जिसके कामोद्दीपन अधिक होता हो—अर्थात् जो चंडवेगवती हो इत्यादि। इस प्रकारके शील-स्वभाव और आकार प्रकारसे युक्त रमणीको बडवा जातिकी रमणी कहते हैं।

हस्तिनी-लक्षण।

पृथुभिरलिक गण्ड श्रोत्रनासापुटैर्या।
करचरण भुजोरु द्वन्द्वकैर्ह्रस्वपीनैः॥
दरविनमित खर्व स्थूलया ग्रीवया च।
प्रकट रद शिखाभिः कुन्तलैः स्थूलनीलैः॥

अर्थात् जिसका ललाट, गाल, कान और नासारन्ध्र (नयनके छेद) स्थूल हों, जिसके हाथ-पैर और भुजा तथा उरु छोटे और पतले हों, जिसके केश स्थूल और श्यामल हों, दाँतोंके अग्रभाग विशाल हों, ग्रीवा कुछ झुकी हुई और स्थूल हो।

अनवरत रतार्त्ति: कुम्भि गम्भीर कंठ—
स्वर शबल शरीरा स्फारलम्बोधरोष्ठी ॥
विपुल मदन तोया कोपना पिंगलाक्षी ।
करिमद मदनाम्बुः प्रायशो गूढ़ पापा ॥

जो निरन्तर संभोग-वासनासे अधीर रहती हो, जिसका गजराजकी चिंघाड़ जैसा कंठस्वर हो, जिसका वर्ण पिंगल हो, जो बड़े लम्बे होठोंवाली हो, जिसका स्वभाव क्रोधी हो, जिसकी आँखें पिंगल वर्णकी हो और जो प्रायः छिपकर पाप करनेवाली हो उसे हस्तिनी समझना चाहिये। यह भी कहा गया है कि इस जातिकी स्त्री बहुत दोष करती है और दण्ड साध्या होती है।



पुरुष भेद।

जिस प्रकार स्त्रियोंके चार भेद माने गये हैं, उसी प्रकार पुरुष भी चार श्रेणियोंमें विभक्त किये गये हैं। परन्तु जिस प्रकार कुछ आचार्यों ने स्त्रियोंके तीन ही भेद माने हैं, उसी प्रकार कुछ आचार्यों ने पुरुषोंको भी तीन ही भागोंमें विभक्त किया है। जो लोग चार भेद मानते हैं, उनके :मतानुसार पुरुषोंकी श्रेणियाँ यह हैं— (१) शश (२) मृग (३) वृष और (४) अश्व। जो लोग तीन भेद मानते हैं, वे मृगको नहीं मानते। उनके मतानुसार पुरुषोंके (१) शश (२) वृष और (३) अश्व—यही तीन भेद हैं। पाठकोंकी जानकारीके लिये हम यह भेद विस्तारपूर्वक अंकित करते हैं।

शश-लक्षण।

आताम्रस्फार नेत्रा लघु समदशना वर्त्तुलास्याः सुवेषाः।
मृद्वारक्तं वहन्तः करमति ललितं श्लिष्ट शाखं सुवाचः॥
वृत्तव्यालोल लीलाः सुमृदुशिरसिजा नातिदीर्घां वहन्तो।
ग्रीवां जानूरुहस्ते जघन चरणयोर्बिभ्रतः कार्श्यमुच्चैः॥

जिसके नेत्र विशाल और सुर्ख हों, दाँत छोटे छोटे और बराबर हों, मुखमण्डल गोल हो, वेष अर्थात् आकार सुन्दर हो, जिसके हाथोंकी उँगलियां परस्पर विच्छिन्न हों, हाथ अति ललित, मुलायम और सुर्ख रंगके हों, जो भोगके लिये सतत लालायित रहता हो, जिसके शिरके बाल कोमल हों, जिसकी गरदन न बहुत चौड़ी और न बहुत कृश हो, जिसके हाथ-पैर और जंघायें बड़ी हों। साथ ही—

अल्पाहाराल्पदर्पा लघुसुरतरताः शौचभाजो धनाढ्याः।
मानोदीर्णाः शशाःस्युः सुरभिरतजलाः कान्तिमन्तःसहर्षाः॥

जो थोड़ा खाता है, जो अधिक गर्व नहीं रखता, जो शीघ्र ही संभोगमें तृप्त हो जाता है, जिसके आत्माभिमान अधिक रहता है, जो धनवान होता है, जो कान्तिमान होता है और जो सदैव प्रसन्न रहता है, उस पुरुषको शशक कहते हैं। यह रतिरहस्यकार कोकोक पण्डितके बतलाये हुए

लक्षण हैं। आचार्य्य सिद्धनागार्जुनने अपने रति-शास्त्रमें इसके निम्नलिखित लक्षण अंकित किये हैं :—

मृदु वचनसंयुक्तः शीलवान् गुणवान् तथा।
प्रियवादी सत्यभाषी शशकः पुरुषः स्मृतः॥
साधूनां संगमे चैव अनुरागी समुत्सुकः।
लक्षणैर्लक्षितः श्रीमान् शशोऽयं देवपूजकः॥
नखर्व्वो नातिदीर्घश्च गुरुद्विज परायणः।
परस्त्री विमुखोयश्च सदा परहिते रतः॥
गम्भीर वचनः शान्तः न पापे विद्यते मनः।
इतिते कथितं ब्रह्मन् शशकस्य च लक्षणम्॥

अर्थात् शशक जातीय पुरुष सुशील, गुणवान्, प्रियवादी, सत्यवादी और मधुरभाषी होता हैं। सत्संगमें अनुराग रखता है और उसके लिये सदा उत्सुक भी रहता है। इसका शरीर सब सुलक्षणोंसे युक्त रहता है। यह श्रीमान और ईश्वर-भक्त होता है। आकार न बहुत लम्बा न बहुत छोटा होता है। गुरु और ब्राह्मणोंका भक्त होता है, एवम् उनकी सेवामें निरत रहता है। स्व-पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्रियोंसे अनुराग नहीं करता और सदैव परोपकारमें लगा रहता है। इसकी वाणी गंभीर, स्वभाव, शांत और मन निष्पाप होता है।

मृग-लक्षण ।

कई प्राचीन ग्रन्थोंमें शशके बाद मृगका वर्णन पाया जाता है। परन्तु कामसूत्रमें वात्स्यायन और रतिरहस्यमें कोका पण्डितने इसका अलग भेद नहीं माना। उनके मतानुसार पुरुष तीन ही जातियोंमें विभक्त हैं, किन्तु सिद्ध नागार्जुनने यह भेद स्वीकार किया है अतः हम उन्हींके रतिशास्त्रसे उसके लक्षण यहाँ अंकित करते हैं :—

स्मितास्यः स्निग्ध गात्रश्च, दीर्घाङ्गो बलवान् सदा ।
नृत्यगीत प्रियो ब्रह्मन्, मृगोऽयं पुरुषं स्मृतः ॥
मृगस्येव महाभाग, दृष्टिः स्यात् चपला सदा ।
वह्याक्षी गुरुदेवेषु भक्तिमान् नियतं भवेत् ॥
कृष्ण-कथा भवेद् यत्र तत्र गच्छति नित्य सः ।
अभ्यागते गृहे कस्मिन् पूययेतं यथा विधि ॥

जो हँसमुख है, जिसकी देह स्निग्ध (चिकनी) और दीर्घ है, जो ताकतवर है, जो नृत्य-सङ्गीत इत्यादिका प्रेमिक है, जिसकी दृष्टि चंचल है, जो बहुत भोजन करता है, ईश्वर और गुरुपर भक्ति करता है, उनकी पूजा करता है, जहाँ श्रीकृष्णकी कथा होती हैं, वहां नित्य जाता है, घरमें अतिथिके आने पर (फिर वह अतिथि कोई भी क्यों न

हो) उसकी खातिरदारी करता है—उसकी नियमानुसार अभ्यर्थना करता है, उसे मृग जातिका पुरुष कहते हैं।

वृष-लक्षण ।

स्फाराभ्युन्नत मस्तकाः पृथुतरे वक्रालिके विभ्रतः ।
स्थूल-ग्रीव सुमांसल श्रुतिभृतः कूर्मोदराः पीवराः ॥
दीर्घ प्रोन्नत कक्ष लम्बित भुजा आरक्त हस्तोदरा ।
रक्तान्त स्थिर पक्ष्मलाम्बुजदलच्छाये क्षणाः सात्विकाः ॥

जिसका सिर विशाल और उन्नत हो, मुख और ललाट चौड़ा हो, ग्रीवा स्थूल हो, कान मांसल हों, जिसका पेट कछुएके आकारका हो, जो मोटा हो, जो आजानु बाहु हो, जिसकी हथेलियाँ सुर्ख हों, जिसकी लाल कमालके दलकी तरह आँखें हों, जिसकी प्रकृति सात्विक हो। और—

खेलत्सिंह पदक्रमा मृदुगिरः पीड़ा सहास्त्यागिनो ।
निद्रासक्तिभृतस्त्रपाविरहिता दीप्ताग्नयः श्लेष्मलाः ॥
मध्यान्ते सुखिनोऽतिमज्ञवपुषः सक्षारमेदोऽधिकाः ।
सर्वस्त्रीसुभगा नवाङ्गुलमितं लिङ्गं वृषा बिभ्रति ॥

जिसकी गति (पद-निक्षेप) खेलते हुए सिंहके सदृश हो, जो मधुरभाषी हो, कष्टसहिष्णु हो, त्यागी (अर्थात् उदार) हो, जिसे बहुत सोनेकी आदत हो, जो निर्लज्ज

हो, जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो, जिसकी प्रकृति श्लेष्मल हो, जो आयुके अन्तिम समयमें सुखी हो, जिसके शरीरमें मज्जा अधिक हो, जिसके मेदा अधिक हो और जो सर्व स्त्रियोंका प्रेमपात्र हो उसे वृष समझना चाहिये। यह रति रहस्यकारके निर्धारित किये हुए लक्षण हैं। आचार्य सिद्ध नागार्जुनने इसके लक्षण यह बतलाये है :—

शोभनाङ्गो नताङ्गश्च तथा भूरि कुटुम्बकः।
गुणवान् शीलवांश्चैव वृषोऽयमी द्दशो मतः॥
शरीरे पूग गन्धिः स्यात् जिह्वा दीर्घा तथा भवेत्।
यस्य नरस्य हे ब्रह्मन् वृषः स परिकोर्त्तितः॥
ह्रस्वौ च चरणौ यस्य हृष्ट पुष्ट कलेवरः।
योऽसौ लज्जाविहीनश्च, वृषः स परिकीर्त्तितः॥
नारी दर्शन मात्रेण यस्यादुत्फुल्ल मानसः।
बिभेति न च पापेभ्यो वृषः स परिकीर्त्तितः॥

अर्थात् जिसकी देह-यष्टि मनोहर और कुछ झुकी हुई हो, जो गुणवान् और न्यायी हो, जिसके शरीरसे पूग (सुपारी) की गन्ध अनुभूत हो, जिसकी जीभ बड़ी हो, जिसके चरण छोटे हों, कलेवर हृष्ट पुष्ट हो, जो निर्लज्ज हो, जो स्त्रियोंको देखते ही प्रफुल्ल-मानस हो जाता हो और जो पापसे नहीं डरता हो, उसे वृष समझना चाहिये।

रति रहस्यमें पं० कोकाजीने इस जातिके पुरुषको "निद्रासक्ति भूतः" अर्थात् बहुत सोनेवाला कहा है, परन्तु रति शास्त्रकारका कथन है कि "निद्रां न भजते तादृक्" अर्थात् तादृश निद्रालु नहीं होता। यह इन दोनों आचार्यों-की रायमें अन्तर है। हमारी समझमें कोकाजीका कथन अधिक माननीय है, क्योंकि उन्होंने प्राचीन पण्डितोंके ग्रन्थोंका सहारा लेकर ही रति रहस्य संकलित किया है।

अश्व-लक्षण।

वक्त्र श्रोत्र शिरोधराधररदै रत्यन्त दीर्घैः कृशैः—
र्यैस्युः पीवर कक्ष मांसल भुजाः स्थूलज्जु सान्द्रैः कृचैः
प्रौढ़ेर्ष्याः कुटिलाङ्ग जानु सुनखाः दीर्घाङ्गुलिश्रेणयो
दीर्घ स्फार विलोल लोचन भृतः प्रौढाश्च निद्रालसाः ॥

अर्थात् जिसका मुख, कान, ग्रीवा, होठ और दांत छोटे या बड़े हों—जिसका कलेजा मजबूत हो, जिसकी भुजाये मांसल हों, जिसके सिरके बाल स्थूल कोमल और घने हों, जिसका स्वभाव ईर्ष्यालु हो, जिसकी जङ्घाये तथा अन्यान्य अङ्ग टेढ़े मेढ़े हों, जिसके नाखून अच्छे हों, जिसकी उंगलियोंकी पंक्ति लम्बी हो, जिसकी आँखें विशाल और चञ्चल हों और जो सोना बहुत पसन्द करते हों, साथ ही—

गम्भीरांम्मधुरां गिरं द्रुत गतिं पीनोरुकौ बिभ्रतो ।
दीप्ताग्नि प्रमदारताः शुचिगिरो रेतोऽस्थिधातूज्ज्वलाः
तृष्णार्त्ता नवनीत शीत बहल क्षार स्मराम्बुद्रवा ।
लिङ्गैर्द्वादशकांगुलैर्निगदिता अश्वाः समोरः स्थलाः ॥

जो मधुर भाषी हो, जिसकी चाल तेज हो, जिसकी जंघायें मोटी हों, जिसकी जठराग्नि प्रदीप्त हो, जो स्त्रियोंमें अधिक अनुरक्त हो, जो सत्य-वादी हो, जो रेत-धातु और अस्थि-धातुसे उज्वल हो, जिसका वक्ष स्थल बराबर हो, उस पुरुषको अश्व श्रेणीके अन्तर्गत समझना चाहिये।

उपर्युक्त लक्षण "रति-रहस्य" के है। आचार्य सिद्ध नागार्जुनके लक्षण इनसे कुछ भिन्न है। उनका कथन है किः—

कृष्ण वर्णो महापापी पर निन्दा-परायणः ।
तापितः स्मर बाणेन हयो धर्म विवर्ज्जितः ॥ १
स्थूलाङ्गश्चोग्रभावश्च निद्रां न भजते क्वचित् ।
दिवा-रात्रि सदा तिष्ठेत् नारी दर्शन-लालसः ॥२

अर्थात् जिसका रङ्ग काला हो, जो महा-पापी हो, जो दूसरेकी निन्दा करनेमें प्रवृत्त रहता हो, जो काम-बाणसे दग्ध रहता हो, जो धर्म-रहित हो, जिसके अंग स्थूल हों, स्वभाव उग्र हो, जो कभी सोता ही न हो, जो दिन

रात स्त्रियोंके दर्शनोंके लिये लायायित रहता हो। उसे अश्व जातिका पुरुष समझना चाहिये।

यहाँ भी लक्षणोंमें मत-भेद है। रति-रहस्य और रति-शास्त्र दोनोंके लक्षणोंमें आकाश पातालका अन्तर है। ऐसी अवस्थामें यह निश्चय करना कठिन है, कि दोनोंमेंसे किस आचार्यके लक्षण समीचीन है। फिर भी हम रति रहस्य-कारके लक्षणोंको अधिक महत्वपूर्ण समझते हैं। क्योंकि वात्सायन मुनिकी सम्मति भी उन्हींके पक्षमें हैं।

स्त्री और पुरुषोंकी जाति निर्धारित करते समय काम सूत्र और रति रहस्य प्रभृति ग्रन्थोंमें यह भी बतलाया गया है, कि किस जातिकी स्त्री या पुरुषकी जननेन्द्रिय कितनी बड़ी होती है। हम इन बातोंको अधिक महत्व देना उचित नहीं समझते। इस सम्बन्धमें केवल इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा, कि शश और पद्मिनीकी, मृग और हरिणीकी, वृष और शंखिनीकी तथा अश्व और हस्तिनीकी जननेन्द्रियोंका परिमाण समान होता है, अतः उन्हींका दाम्पत्य-संयोग सुखकर हो पड़ता है। इस सम्बन्धमें हम आगे चलकर विशेष रूपसे विचार करेंगे।



नारी-चिन्ह-विचार

आजकल विवाह करते समय लड़के लड़कियोंके माता-पिता सबसे पहले धन और फिर रूप व गुण आदि देखते हैं। जिन देशोंमें लड़के लड़कियोंको अपने लिये पत्नी या पति पसन्द करनेका अधिकार हैं, वहाँ प्रायः रूप ही पर अधिक ध्यान रक्खा जाता है, परन्तु रूप और धन ऐसी चीजें नहीं है, जो दाम्पत्य प्रेमकी सृष्टि और अभिवृद्धिमें कुछ सहायता दे सकें। बहुधा रूपवान् स्त्री पुरुष दूसरोंकी अपेक्षा अधिक लम्पट और कामी होते हैं। वे अपने रूप सौन्दर्यके सुनहले घड़ेमें न जाने कितने विषैले दुर्गुणोंको छिपाये रहते हैं। इसी प्रकार धन और सद्गुण भी शायद ही कहीं एक साथ दिखाई देते हैं। जो लोग लक्ष्मीकी गोदमें पले हुए होते हैं, वे बहुधा अभिमानी, दुराचारी और हृदय-हीन होते हैं,

इसलिये व्याह करते समय प्राचीनकालमें धन और रूपकी अपेक्षा वर कन्याके ग्रह, हस्तरेखा, सामुद्रिक चिन्ह तथा अन्यान्य लक्षणोंकी ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। आजकल लोगोंकी आस्था इन बातों पर नहीं रही, यह बड़े दुःखकी बात है। हस्तरेखा, सामुद्रिक चिन्ह और जन्म कुण्डली आदिसे जो गुणदोष ज्ञात हो सकते हैं, वे रूप सौन्दर्य, धन या विद्या आदि देखनेसे कदापि नहीं हो सकते। अपना रूप, गुण और विद्यादि दिखाते समय मनुष्य आडम्बर या छल कपट कर सकता है, तिलका ताड़ करके दिखा सकता है और दूसरोंको धोखा दे सकता है, परन्तु सामुद्रिक चिन्ह आदि ऐसी चीजें हैं जो आइनेकी तरह मनुष्यके गुणदोष सम्मुख रख देती हैं। हमलोग जिस समय इन बातोंको ढकोसला समझ कर भूलते जा रहे हैं, उस समय पाश्चात्य वैज्ञानिकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित होता जा रहा है और वे इसकी सत्यता स्वीकार करते जा रहे हैं। कपाल विद्याके सहारे पात्र पात्रीके निर्वाचनकी सलाह देते हुए डाक्टर कावेनने 'दी सायन्स आफ ए न्यु लाइफ' नामक अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तकमें लिखा है कि But there is a more satisfactory and more positive mode of choosing—

one in which hypocrisy and deciet avail nothing, and one which every man and woman is earnestly enjoined to adopt. It is by and through Phrenology. अर्थात् "पात्र पात्री निर्वाचनका विशेष सन्तोषदायक तरीका—जिसमें आडम्बर या छल कपट भी नहीं चल सकता —कपाल-विद्या द्वारा गुणदोषकी परीक्षा करना है।" प्राचीनकालमें हमारे यहाँ भी इन बातों पर लोग खूब ध्यान देते थे। यद्यपि हमारी अकर्मण्यतासे इस विषयकी अधिकांश पुस्तकें नष्ट हो गयी हैं, तथापि संस्कृत साहित्यमें अब भी इतनी पुस्तकें हैं, जितनी शायद ही किसी दूसरी भाषाके साहित्यमें होंगी। हम अपने पाठकोंसे इन बातों पर विश्वास कर, इस विषयकी पुस्तकें देखनेका अनुरोध करते हैं।

स्त्री और पुरुषोंके अङ्ग प्रत्यंगकी बनावट और पैरोंके नखसे लेकर शिखा पर्यन्त जो चिन्ह विद्यमान् रहते हैं, उनका यदि संक्षेपमें भी फल वर्णन किया जाय, तो कम से कम एक ऐसी ही पुस्तक तैयार हो सकती है। इस पुस्तकमें उन सब लक्षणोंका देना सम्भव नहीं है। फिर भी पाठकोंकी जानकारीके लिये स्त्री पुरुषोंके कुछ चिन्ह

हम इस पुस्तकमें अंकित कर रहे हैं। आशा है, कि इससे वे लाभान्वित होंगे।

सुलक्षणा स्त्रीके लक्षण।

सीमन्त और मस्तक—जिस स्त्रीका सीमन्त (सेंथा) अच्छा और मस्तक उन्नत होता है, वह सुलक्षणा होती है। जिसका मस्तक हाथीके कुम्भकी तरह सुगोल होता है, वह सौभाग्यवती और ऐश्वर्यशालिनी होती है।

मुख—जिस स्त्रीका मुखमण्डल निर्दोष होता है—जिसके आँख, नाक और कपोल प्रभृति अंगोंमें किसी प्रकारके क्षतचिन्ह या दाग नहीं होते, जिसका मुख सुगन्धिसे युक्त, सुगोल और पिताके मुखके समान होता है, वह स्त्री सुलक्षणा होती है।

केश—जिस स्त्रीका केशकलाप भौंरेकी तरह काला, सूक्ष्म और सुकोमल एवम् जिसके केशकलापका अग्रभाग कुछ कुञ्चित और कुटिल होता है, वह स्त्री सुखभागिनी होती है।

नेत्र—जिस स्त्रीके नेत्र देखनेमें नीलपद्मके समान, कान तक विस्तृत, प्रान्तभाग रक्तवर्ण, पुतली काली, चारों तरफ दूधके समान श्वेत और पलकके केश काले होते हैं, वह स्त्री सुलक्षणा होती है।

कपोल—जिस स्त्रीके कपोल मांसयुक्त, कोमल, गोल और समुन्नत होते हैं, वह शुभदायिनी होती है।

भौंह—जिस स्त्रीकी दोनों भौंह सुगोल, काली, एक दूसरेसे अलग, कोमल, बालोंसे भरी हुई और धनुषकी तरह टेढ़ी होती है, वह स्त्री अच्छी होती है।

कान—जिस स्त्रीके दोनों कान अधिक मांसयुक्त न हों, समान गठनवाले हों और कोमल हों, उसे सुलक्षणा समझना चाहिये।

नासिका—जिस स्त्रीकी नासिका समान अर्थात् न बहुत ऊँची न बहुत चिपटी हो और नासिकाके दोनों छिद्र समान, सुन्दर और छोटे हों, उसे कल्याणी समझना चाहिये।

जीभ—स्त्रियोंकी जीभ कोमल, सरल और श्वेत या रक्तवर्णकी शुभप्रद समझी जाती है।

दन्त—दूधकी तरह सफेद, स्निग्ध, संख्यामें पूरे बत्तीस, दोनों पंक्तियाँ समान और कुछ उन्नत होने पर अच्छे समझे जाते हैं।

गरदन—जिस स्त्रीकी गरदन और उदर पर तीन रेखायें दिखाई देती हैं, वह सौभाग्यवती होती है। रोमयुक्त, शंखके समान दीप्तिवाली, कठिन गोलाकर और रक्तवर्णकी आभासयुक्त ग्रीवा अच्छी समझी जाती है।

कण्ठ—मांसयुक्त गोल कण्ठदेश सुलक्षण होता है।

कंधे—जिस स्त्रीके कंधे छोटे, स्थूल और झुके हुए होते हैं, वह सुलक्षणा समझी जाती है।

बाहु—जिस स्त्रीके दोनों बाहु सरल, मांसयुक्त, कोमल ग्रन्थियुक्त और शिरा तथा रोमरहित होते हैं, वह सुलक्षणा समझी जाती है।

हृदय—जिस स्त्रीका वक्षस्थल समतल और रोमरहित होता है वह धनशालिनी, चिरसधवा और पतिकी प्रेम-भागिनी होती है।

स्तन—जिस स्त्रीके दोनों स्तन रोम हीन, स्थूल, घन और समान होते हैं वह सुलक्षणा समझी जाती है। जिस स्त्रीका दाहिना स्तन बायें स्तनकी अपेक्षा कुछ उन्नत होता है, वह स्त्री रमणीकुलमें श्रेष्ठा और पुत्रवती होती है। जिस स्त्रीका बायाँ स्तन दाहिनेकी अपेक्षा कुछ उन्नत होता है, वह सुन्दरी कन्याको जन्म देती है। दोनों स्तन परस्पर सटे हुए, गोलाकार, स्थूल, कठिन और उच्च होनेसे शुभ होते है। अग्रभाग स्थूल, विरल और सूक्ष्म होनेपर अशुभ समझे जाते हैं। जिस स्त्रीके स्तन हृदय पर पहले स्थूल होते हैं और फिर उनका अग्रभाग क्रमशः सूक्ष्म हो जाता है, वह अपने जीवनमें पहले सुखभोग करती है और बादको

दुःख पाती है। जिस स्त्रीके स्तनोंका अग्रभाग मनोहर, श्याम वर्ण और सुगोल होता है, वह सुलक्षणा होती है और जिस स्त्रीका स्तनाग्र अन्दरकी ओर दबा हुआ तथा दीर्घ और कृश होता है, वह स्त्री कुलक्षणा होती है।

पीठ—जिस स्त्रीका पृष्ट-देश रोमशून्य और मांस-युक्त होता है तथा जिसकी रीढ़ नहीं दिखलाई देती, वह स्त्री सुलक्षणा होती है।

नाभी—जिस स्त्रीकी नाभी प्रशान्त, गंभीर और दक्षि-णावर्त्त युक्त होती है, वह स्त्री अच्छी होती है।

कटि—सिंहके समान पतली कमरवाली स्त्री सुख-भागिनी होती है।

नितम्ब—जिस स्त्रीके नितम्ब कोमल और मांसयुक्त होते हैं, वह सौभाग्यवती होती है।

उरु—जिस स्त्रीके उरु हाथीकी सूँढ़के समान क्रमशः सूक्ष्म, रोमहीन, शिराशून्य, घन और सुगोल होते हैं, वह धनशालिनी होती है।

चरण—जिस स्त्रीके पैरकी उँगलियां परस्पर प्रायः सटी हुई, ताम्रवर्ण नखोंसे युक्त, दोनों पैर कछुएकी पीठके समान समुन्नत और घुंटना सुडौल होता है, वह स्त्री सौभाग्यवती होती है।

करतल और पदतल—जिस स्त्रीकी हथेली और तलवेमें उर्ध्वरेखा होती है, वह हीन वंशकी होनेपर भी राज-पत्नी होती है। जिस स्त्रीकी हथेली और तलवेमें रथ, वज्र, ध्वजा और चक्रके चिन्ह होते हैं, वह स्त्री अतुल ऐश्वर्य-शालिनी होती है। जिस स्त्रीकी हथेली कोमल, मध्यभाग ऊँचा, लालिमायुक्त, साफ और प्रशस्त तथा अल्परेखा युक्त होती है, वह भाग्यवती होती है।

जिस स्त्रीकी हथेलीमें मत्स्यरेखा होती है, वह सौभाग्य-वती होती है। हाथीका चिन्ह होने पर सुपुत्रवती और पद्मचिन्ह होने पर राजमहिषी तथा राजमाता होती है। जिस स्त्रीके हाथमें तोरण और दीवारकी सी रेखा होती है, वह अत्यन्त नीच वंशकी होने पर भी रानी होती है। हथेलीमें त्रिशूल, शङ्ख, गदा और दुन्दुभीका चिन्ह होने पर वह इस लोकमें सुकीर्ति प्राप्त करती हैं। जिस स्त्रीकी हथेलीमें गाड़ी या हल आदिका चिन्ह होता है, वह कृषक-पत्नी होती है। जिसकी हथेलीमें चामर, अंकुश और धनुषका चिन्ह होता है वह राज-रानी होती है। जो स्त्री हरिणके समान नेत्रवाली होती है और उसकी हथेलीमें यदि तराजूकी दण्डीका चिन्ह होता है, तो वह दीर्घ जीवी पति प्राप्त करती है और अनेक सन्तानोंकी जननी होती हैं।

जिस स्त्रीकी हथेली और तलवोंमें ताम्रवर्ण रेखा तथा ताम्रवर्ण नख होते हैं, वह स्त्री दीर्घ जीविनी और पुत्र पौत्र सम्पन्ना होती है।

कुलक्षणा स्त्रीके लक्षण।

मस्तक—जिस स्त्रीका मस्तक बहुत स्थूल होता है, वह अपनी मान मर्यादा नष्ट कर दुष्टजनोंसे प्रेम करती है। जिस स्त्रीका मस्तक लम्बा होता है, वह सर्वनाशिनी वन्ध्या और निज वंशकी ध्वंसकारिणी होती है। मस्तक दीर्घाकार होनेसे देवर घातिनी, रोमयुक्त होनेसे रोगिनी, स्थूल होनेसे विधवा और विशाल होनेसे दुर्भागिनी होती है।

केश—जिस स्त्रीके केश विरल, पिङ्गल वर्ण, स्थूल, रूखे और छोटे होते हैं, वह वन्ध्या या विधवा होती है।

नेत्र—दोनों नेत्र उन्नत होनेपर स्त्री अल्पायु, गोल होनेसे कुलटा, मेष महिषके सदृश होने पर अशुभ, गायके नेत्रोंकी तरह पिङ्गल वर्ण होने पर गर्विता, कबूतरके नेत्रोंकी भाँति होने पर दुःशीला, रक्त वर्ण होने पर पति-घातिनी, गड्ढेमें धसी होने पर दुश्चरित्रा, हाथीके समान होने पर कुलक्षणा, बायीं आँख कानी होने पर वेश्या, दाहिनी

आंख कानी होने पर वन्ध्या और पिङ्गलवर्ण, श्यामवर्ण तथा चञ्चल नेत्रा होने पर असती होती हैं।

पलक—जिस स्त्रीकी पलकें अल्प और स्थूल होती हैं, वह अमङ्गलदायिनी होती है।

भौंह—जिस स्त्रीकी भौंह पर दो रेखायें दिखाई दें, जिसकी भौंहें सरल, दोनों मिली हुई, पिङ्गलवर्ण और दीर्घ रेखायुक्त हों उसे कुलक्षणा समझना चाहिये।

नाक—जिस स्त्रीकी नासिकाका अग्रभाग सिकुड़ा हुआ और रक्तवर्णका होता है, वह विधवा होती है। जिसकी नाक चिपटी या बैठी हुई होती है, वह दासत्व करती है और जिसकी नाक बहुत छोटी या बहुत बड़ी होती है, वह स्त्री कलहप्रिया होती है।

दाढी—जिस स्त्रीकी दाढी रोमयुक्त, कुटिल और अत्यन्त स्थूल होती है, वह कुलक्षणा होती है।

कपोल—जिस स्त्रीके कपोल श्वेतवर्णके हों और उन पर गढे दिखाई देते हों, वह बाहरसे सती साध्वी दिखाई दे तब भी उसे कुलटा समझना चाहिये। जिसका गण्ड-स्थल रोमयुक्त, कर्कश, नीचा और मांसहीन होता है, वह भी कुलक्षणा होती है।

दांत—जिसके कुछ दांत छोटे और कुछ बड़े होते हैं,

वह कष्ट भोग करती है। जिसके दांत विषम होते हैं, वह क्लेश और भयका कारण हो पड़ती है। जिस स्त्रीके निम्न पंक्तिमें अधिक दांत होते हैं, वह अपनी माताके नाश-का कारण होती है और जिसके दांत विकट होते हैं, वह वेश्यावृत्ति द्वारा कालयापन करती है।

अधर और ओष्ट—जिसका ओष्ठ अधरकी अपेक्षा उच्च होता हैं, वह कटुवचन द्वारा लोगोंके साथ कलह करती है। जिसके ओष्ट प्रान्त पर रोमावली दिखाई देती है, वह पतिके लिये कभी भी मङ्गलदायिनी नहीं होती। जिसके अधर लम्बे, कृश और रुक्ष होते हैं, वह हतभागिनी होती है। जिसके अधर और होंठ धूसरवर्ण और स्थूल होते हैं, वह स्त्री विधवा और विवाद प्रिया होती है।

जीभ—जिसकी जीभ सफेद होती है, वह स्त्री जलमें डूब कर मरती है। जिसकी जीभ काली होती है वह अत्यन्त कलहप्रिया होती है। जिसकी जीभ बहुत स्थूल होती है वह दरिद्रा होती है। जिसकी जीभ बहुत बड़ी होती है वह अभक्ष्य भक्षणमें रुचि रखती है और जिसकी जीभ बहुत चौड़ी होती है, वह दुःख भागिनी होती है।

हास्य—जिस स्त्रीके हँसते समय गण्डदेशमें गढ़े पड़ जाते हैं, वह कुलटा होती है और जिसका मुँह लाल हो

जाता हैं, वह अपने जीवनके तीसरे भागमें पतिका वध कर यथेच्छ सुख-सम्भोगमें लीन होती है।

गरदन—जिस स्त्रीकी गरदन रोमयुक्त, शुष्क, विस्तीर्ण और वक्र होती है, वह अनेक कष्ट भोग करती हैं।

कन्धे—जिस स्त्रीके कन्धे स्थूल और रोमयुक्त होते हैं, वह विधवा होकर दूसरोंके यहां दासत्व करती है।

गात्र—जिसका गात्र सूखा, शिरायुक्त और मांसहीन होता हैं, वह कुलक्षणा होती है।

बाहु—जिस स्त्रीके दोनों बाहु स्थूल, रोमयुक्त और छोटे होते हैं, वह चिरकाल दुःख भोग करती है।

वक्षस्थल—जिस स्त्रीका वक्षस्थल रोमयुक्त होता है वह पतिघातिनी होती है और जिसका हृदय विस्तीर्ण होता है वह वेश्या और निर्दया होती है।

स्तन—जिस स्त्रीके स्तनोंका ऊपरी भाग स्थूल, विरल और विस्तृत होता है, वह कुलक्षणा होती है। जिस स्त्रीके दोनों स्तन पेट पर लटक पड़ते है, वह अवश्य वैधव्य भोग करती है।

पार्श्वदेश—जिस स्त्रीके पार्श्वदेशमें शिरायें दिखाई देती हों और रोमावली हो, वह दुश्चरित्रा, दुःखभागिनी और सन्तानहीना होती है।

जठर—जिस स्त्रीका जठर बड़ा होता है, वह सन्तान हीना होती हैं। जिसका जठर-देश लम्बा होता है, वह पति घातिनी होती है और जिसका जठर-देश उन्नत होता हैं वह जन्म वन्ध्या होती है। इसी तरह जिसके पेटका ऊर्ध्व भाग गोलाकार, कपिलवर्ण और रोमावलीयुक्त होता है, उस स्त्रीको राज वंशमें उत्पन्न होने पर भी दासी वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करना पड़ता हैं।

कटि—जिस स्त्रीका कटि देश अवनत, बड़ा, संकीर्ण मांसहीन या रोमयुक्त होता है, वह वैधव्य और दुःख भोग करती है।

उरु—स्त्रियोंका उरु देश अत्यन्त रोमयुक्त होनेसे वह विधवा, चिपटा होनेसे दुर्भागिनी, मध्यस्थलमें छिद्रयुक्त होनेसे महा दुःख भागिनी और मध्यस्थल कठिन होनेसे दरिद्रा होती है।

जानु—जिस स्त्रीके जानु माँसहीन होते हैं, वह स्वेच्छाचारी और जिसके शिथिल होते हैं, वह दरिद्रा होती है।

गुल्फ—जिस स्त्रीके गुल्फ (घुंटने) मांसहीन, अपुष्ट और शिथिल होते हैं, वह स्त्री दुर्भागिनी होती है।

चरण—जिस स्त्रीके चरण कर्कश, विवर्ण, कठिन,

विभक्त, अधिक अंगुलीयुक्त, लम्बे चौड़े और शुष्क होते हैं, वह स्त्री कुलक्षणा होती है।

पदाङ्गुली—जिस स्त्रीकी चरणांगुली दीर्घ होती हैं, उसे वेश्या वृत्ति करनी पड़ती है, जिसकी कृश होती हैं वह निर्धन होती है, जिसकी छोटी होती हैं, वह अल्पायु और जिसकी टेढ़ी होती हैं, वह दुर्दशा ग्रस्त रहती है।

चाल—जिस स्त्रीके चलते समय पृथ्वी कांपने सी लगती है, वह विवाहके बाद कुछ ही दिनोंमें विधवा हो जाती हैं।

नख—जिस स्त्रीके नख बहुत चौड़े होते हैं, वह दुःख भागिनी होती है।

हथेली और तलवे—जिस स्त्रीके तलवे विवर्ण, कर्कश और रूखे होते हैं, वह दुर्भागिनी होती है। जिसकी हथेलीमें काक, शृगाल, व्याघ्र, बिच्छू, सूर्य, गर्दभ, बिल्ली या ऊंटके चिन्ह होते हैं, वह स्त्री कुलक्षणा होती है और पतिको दुःख देती है। हथेलीमें रेखाओंकी अधिकता होनेसे स्त्री विधवा, कमी होनेसे दरिद्रा और शिरायुक्त होनेसे भिक्षुकी होती है।

तिल चिन्ह—जिस स्त्रीके हृदय पर तिल या कोई दूसरा चिन्ह होता है, वह सौभाग्यवती होती है। जिसके ललाट

के मध्यस्थान या भौंहके निकट मसा होता है, वह धनवती, सौभाग्यवती और पति पुत्र तथा दास दासी युक्त होती है। जिस स्त्रीके दाहिने स्तन पर रक्तवर्णका चिन्ह (तिल) होता है, वह चार कन्या और तीन पुत्रोंको जन्म देती है और जिसके वामस्तन पर वैसा चिन्ह होता है, वह केवल एक पुत्रको जन्म देनेके बाद विधवा हो जाती है। जिस स्त्रीकी नाकके अग्रभाग पर तिल या मसा होता है और जिसके दाँत तथा जीभ कृष्ण वर्णकी होती है, वह विवाहके बाद दस ही दिनोंमें विधवा हो जाती है। नासिकाके अग्रभाग पर लाल तिल होनेसे स्त्री रानी तक हो सकती है, परन्तु काला तिल होनेसे वह विधवा और भ्रष्टा होती है।

अन्यान्य लक्षण।

जिसके पैरोंके तलवे स्निग्ध और समुन्नत हों, एवं नाखून सुर्ख रङ्गके हों, वह कुमारी पति और पितृ-कुलका कल्याण करनेवाली होती है।

जिस रमणीके पैरोंका अगला हिस्सा ऊँचा, तलवे पद्मकी तरह और स्वेद-हीन हों, वह राज-रानी होती है।

जिसके पैरोंके नाखून स्निग्ध, उन्नत, सुर्ख और गोलाकार हों, उसका पति राजा होता है।

जिस कुमारीका पार्ष्णि देश मोटा होता है ; वह दुर्भागिनी होती है। जिसका पार्ष्णि देश सम अर्थात् बराबर होता है, वह कल्याण-कारिणी होती है और जिसका पार्ष्णि देश उन्नत होता है वह कुलटा होती है।

चलनेके समय जिस कुमारीकी कनिष्ठा उँगली पृथ्वीका स्पर्श नहीं करती है, वह कुमारी विवाहके बाद शीघ्र ही विधवा हो जाती है।

चलनेके समय जिस कुमारीके पैरोंकी तर्जनी, मध्यमा अथवा अनामिका उँगली पृथ्वीका स्पर्श नहीं करती है, वह दु:खिनी होती है और भिक्षा वृत्तिके द्वारा जीवन निर्वाह करती हैं।

चलनेके समय जिसके पैरोंकी तर्जनी उँगली अँगूठेके ऊपर हो जाती है, वह कुलटा होती है। अतएव उसका त्याग ही करना श्रेय है।

जिसके दोनों पैर उच्च शिरा विशिष्ट हों, हाथ और पैरकी उँगलियोंके नाखून सुर्ख रंगके हों, गुल्फ (घुटने) कछुएकी पीठकी तरह उन्नत हों, उसका पति राज-पद प्राप्त करता है।

जिसकी चाल राज-हंसकी तरह होती है अथवा जो गज-गामिनी होती है और जिसकी कमर सिंहकी कमरके समान क्षीण होती है, वह स्त्री सुखभागिनी होती है।

जिसके पैरोंके तलवेका मांस मृदुल और रङ्ग सुर्ख होता है, एवम् सर्वदा गर्म रहता है, वह बहुत धनकी स्वामिनी होती है।

जिसके दोनों पैर विवर्ण, शुष्क, खण्डित, रूखे और आकारमें सूप जैसे हों, वह सदैव दुःख भोग करती है।

जिसके पैरोंकी उँगलियाँ कृश होती है; वह नारी दरिद्रा होतो हैं। जिसके पैरोंकी उँगलियाँ लम्बी होती हैं, वह कुलटा होती है। जिसके पैरोंकी उँगलियाँ टेढ़ी होती हैं, वह दुःखिनो होती है, और जिसको उँगलियाँ छोटी होती हैं, वह बहुत थोड़े दिन जीवित रहती है।

जिसके चलने पर जमीनसे धूलि-राशि उत्थित होती है, वह कलंकिनी होती है।

जिसके जंघास्थित रोम-कूपमें एक एक रोम देख पड़ता है, वह कुमारी राजाकी महिषी होती है, जिसके जंघास्थित प्रति रोम विवरमें दो दो रोम देख पड़ते हैं, वह सुखी और सौभाग्यशालिनी होती है और जिसके प्रति रोम-कूपमें तीन तीन रोम देखे जाते हैं, वह पति-हीना होती है।

जिसकी दोनों जंघायें समान होती हैं, वह शुभ-दायिनी होती है। जिसकी जानुसन्धि सम अर्थात् उच्चनीच नहीं हैं, वह पतिका कल्याण करनेवाली होती है।

जिस नारीका नितम्बदेश चारों ओरसे उन्नत, मांसल अर्थात् गुदगुदा और आयत अर्थात् चौड़ा हो, वह नारी सुख भागिनी होती है।

जिस नारीके दोनों नितम्ब कोमल, गुदगुदे, बलि रेखा शून्य और बेलके फलकी तरह गोल गोल हों, वह नारी सुख-भागिनी होती है।

जिसकी जङ्घायें मांस रहित, टेढ़ी, वामावर्त्त चिन्हसे चिन्हित और बड़ी होती हैं, वह चिर दुःखिनी होती है।

जिस रमणीका पेट शिरा हीन हो, ऊँचा न हो, पेटकी चमड़ी मुलायम हो, वह दीर्घ कालतक सुख भोग करती है।

जिस नारीकी शारीरिक गठन मृदङ्ग या घड़ेकी तरह होती है, अथवा कूष्माण्ड (कुम्हड़े) की तरह होती है, वह कलंकिनी होती है।

जिस नारीकी कमर चिपटी, झुकी हुई, मांस-रहित और रोग युक्त होती है वह दुःखभागिनी होती है।

जिस नारीकी देहकी रोम-राजि सूक्ष्म और सरल होती है, वह सुखी होती है और उसके विपरीत दुःखी होती है।

जिसके शरीरकी रोम-राजि कपिल वर्ण और वृत्ताकार होती है, वह दासी वृत्ति द्वारा जीविका प्राप्त करती है।

जिसके शरीरकी रोम-राजि स्थूल और विच्छिन्न प्रतीत होती है, वह दुःखिनी होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

जिसका दोनों कुक्षियाँ बराबर होती हैं, वह चिर-काल सुख भोग करती है और जिसकी कुक्षियाँ नीची होती हैं, वह दरिद्रा होती है।

जिसकी कुक्षियाँ पृथुल—मोटी—होती हैं, उस नारीके बहुतसे पुत्र होते हैं। वह राजकुमार प्रसव करती है और चिर दिन सुखसे अतिवाहित करती है।

जिस नारीकी दोनों बगलें उन्नत और शिरायुक्त होती हैं, वह चरित्र-हीना होती है और चिर-काल दुःख भोग करती है।

जिसका हृदय-देश रोम-हीन होता है, वह नारी धनवती और सुहागिनी होती है।

जिसका वक्षस्थल बराबर होता है, वह सर्वदा दुःख भोग करती है और जिसका वक्षस्थल नीचा होता है, वह अभागिनी होती है।

जिस नारीका हृदय देश रोम-पूर्ण होता है, वह पति-घातिनी होती हैं। जिसका हृदय विषम और विशाल होता हैं, वह दुःख भोग करती है।

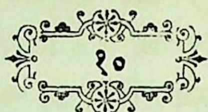
जिस नारीके स्तनद्वयका अग्रभाग श्यामवर्ण और गोलाकार होता है, उसे सुलक्षणा समझना चाहिये।

जिस नारीके करतल (हथेलियाँ) कोमल, अल्परेखा विशिष्ट और छिद्र शून्य होते हैं, वह शुभदा होती है।

जिस नारीके हाथोंकी उँगलियाँ निम्न, विवर्ण, पीतवर्ण अथवा सुक्तिके रंगकी तरह हों, वह दरिद्रा होती है।

जिस नारीका शरीर सूखा, शिरायुक्त और मांसहीन होता है, वह अमंगलकारिणी होती है।





पुरुष-चिन्ह-विचार

स्त्रियोंकी तरह पुरुषोंके शरीरमें भी नाना प्रकारके चिन्ह विद्यमान रहते हैं और उनसे उनकी प्रकृति शील-स्वभाव, गुण अवगुण और सौभाग्य आदिका पता चलता है। विवाहके समय यदि अन्यान्य बातोंके साथ साथ वरकन्याके यह लक्षण भी मिलाकर देख लिये जायें, तो उन दोनोंका बहुत उपकार हो सकता है। जिस प्रकार कन्या और वरकी उम्र बहुत बड़ी छोटी होने पर, वह विवाह बेमेल गिना जाता है और उन दम्पतियोंमें दाम्पत्य-प्रेमकी सम्भावना बहुत कम समझी जाती है, उसी प्रकार इन लक्षणोंका मेल न होनेसे भी विवाह बेमेल हो सकता है और उनके दाम्पत्य-प्रेममें बाधा पड़ सकती है। मान लीजिये, कि वरमें कुछ ऐसे चिन्ह हैं जिससे वह बड़ा

सुशील, सरल, शान्त और सौम्य हो सकता है और स्त्रीमें कुछ ऐसे चिन्ह हैं, जिससे वह कलहप्रिय और बकझक करनेवाली हो सकती है, तो उन दोनोंका विवाह क्या बेमेल न होगा ? इसीलिये हम इन चिन्होंको अंकित कर रहे हैं और अपने पाठकोंका ध्यान इस ओर आकर्षित कर रहे हैं। परन्तु ध्यान रहे, हम पहले ही कह चुके हैं, कि हम जो चिन्ह अंकित कर रहे हैं, वे पर्याप्त नहीं हैं—यह तो केवल इस विषयका दिग्दर्शन मात्र है। यदि पाठकोंको यह विषय जाननेकी विशेष रुचि हो, तो उन्हें इस विषयकी स्वतन्त्र पुस्तकोंका सहारा लेना चाहिये। स्त्रियोंकी भाँति पुरुषोंमें साधारणतः परिलक्षित होनेवाले चिन्ह और उनका फल इस प्रकार है :—

(१) जिसकी हथेलीमें बज्र, ग्राम अथवा तुला (तराजू) का चिह्न होता है, वह सब सिद्धियाँ प्राप्त करता है। धनवान् और दीर्घजीवी होता है।

(२) जिसकी हथेलीमें खड्ग, कमल और अठकोना चिह्न होता है, वह धनवान् होता है।

(३) जिसके पैरोंके तलवोंमें मीन-रेखा, पताका, बज्र अथवा अंकुशका चिह्न होता है, वह दीर्घजीवी, श्रीमान् और महा सुखी होता है।

(४) जिसके तलवोंमें पद्म, चक्र और तोरण चिह्न होता है, वह राजा होता है।

(५) जिसके दोनों गुल्फ गूढ़ हों, तलवा खिले कमलकी तरह हों, वह भाग्यवान्, धनवान् और स्त्रियोंका प्यारा होता है।

(६) जिसके पैरोंके तलवे विरूप और सूपकी तरह होते हैं, वह व्यक्ति दरिद्रावस्थामें काल-यापन करता है।

(७) जिसकी नाभि प्रशस्त, सुन्दर, गभीर और मछलीकी तरह हो, वह बुद्धिमान् होता है और आजीवन सुखभोग करता है।

(८) जिसका उदर बराबर हो, वह भाग्यवान्, जिसका उदर घड़ेकी तरह गोल और दीर्घ हो, वह निर्धन, जिसका उदर सर्पकी तरह लम्बा हो, वह धनहीन और जिसका उदर रेखाओं द्वारा अंकित हो, वह दीर्घजीवी होता है।

(९) जिस व्यक्तिकी वस्ति अर्थात् नाभिके नीचेका भाग विस्तीर्ण, कोमल और किञ्चित् उन्नत हो, उसे सुलक्षण पुरुष समझना चाहिये और यदि रोमपूर्ण, शिरा-विशिष्ट हो, तो कुलक्षण पुरुष समझना चाहिये।

(१०) जिस पुरुषकी कमर सिंहकी कमरकी तरह क्षीण

हो, वह राजपद प्राप्त करता है और जिसकी कमर बंदरकी कमरकी तरह होती है, वह धनहीन होता है।

(११) जिसके उदरमें सिर्फ एक वलि (रेखा) देख पड़ती है, वह सौ वर्ष जीवित रहता है। जिसके दो रेखायें देख पड़ती हैं, वह भी भोगी होता है। जिसके उदरमें तीन रेखायें देख पड़ती हैं, वह राज-पद प्राप्त करता है, अथवा अध्यापकके पदपर नियुक्त होता है। जिस व्यक्तिकी ये रेखायें सरल होती है, वह सुखी होता है, जिस व्यक्तिकी रेखायें कुटिल होती हैं, वह अगम्य नारीमें आसक्त होता है। जिस व्यक्तिका पार्श्वोदर (अर्थात् पेटके दोनों तरफके हिस्से) स्थूल होते हैं वह व्यक्ति राज-पदमें अभिषिक्त होता है।

(१२) जिस व्यक्तिके उदरकी रोम-पंक्ति कोमल, सुदृश्य और दक्षिणावर्तसे युक्त होती है, वह व्यक्ति राज-पद प्राप्त करता है और जिसकी उदरस्थ रोम-पंक्ति अत्यन्त कठोर, कुत्सित और वामावर्त्तसे युक्त होती है, वह दूसरेका दास और दरिद्र होकर दुःख प्राप्त करता है।

(२३) जिस व्यक्तिकी कुक्षियोंका आकार बटपत्रके समान

हो, सुगन्धयुक्त और ऊर्ध्व रोम-सम्पन्न हो, उसे सुलक्षण पुरुष समझना चाहिये।

(१४) जिसका हृदय सम, उच्च मांसमय, विस्तृत हो और थोड़े ही कारणसे जिसका हृदय कम्पित न होता हो, वह राज-पदमें अभिषित होता है। जिसके उदरकी रोमराजि कर्कश होती है, शिरा देख पड़ते हैं, वह अति क्लेशमें दिन पात करता है।

(१५) जिसका वक्षस्थल सम हो, वह धनवान् होता है। जिसका हृदय स्थूल होता है, वह असीम बलशाली होता है। जिसका वक्षस्थल ऊँचा-नीचा होता है, वह निर्धन होता है। जिसका हृदय विषम होता है, उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाती है।

(१६) जिसके दोनों कन्धे हाथीके कन्धोंकी तरह हों, वह महा भाग्यवान् और धन्य होता है।

(१७) जिसके बाहुद्वय कृश, ईषत् कुटिल और विशाल होते हैं, वह सुखी होता है। जिसके बाहुद्वय आजानुलम्बित, सुगोल और स्थूल होते हैं, वह राजचक्रवर्त्ती होता है। जिसके बाहु मांसरहित, रोमपूर्ण और हाथीकी सूँड़की तरह हों, वह श्रेष्ठता प्राप्त करता है।

(१८) जिसका हाथ चँमरकी तरह हो, वह निर्धन होता है। जिसके हाथ बाघके हाथोंकी तरह हों, वह महा बलवान् होता है। जिसके हाथोंका मांस काला हो, वह चोर होता है।

(१९) जिसके हाथका मणिबंध निगूढ़, उत्तमरूपसे गठित और सुगंधयुक्त हो, वह राज-पद प्राप्त करता है। जिसके मणिबंधमें छेद देख पड़ता है, वह नराधम और दरिद्र होता है।

(२०) जिसकी हथेलियाँ निम्न—खाली हों, उसका पैतृक धन नष्ट हो जाता है। जिसकी हथेलियाँ सम्वृत और निम्न होती हैं, वह धनवान् होता है। जिसकी हथेलियाँ उन्नत हों, वह दाता होता है और जिस व्यक्तिकी हथेलियाँ विषम होती हैं, वह कुलक्षण पुरुष होता है।

(२१) जिसकी हथेलियाँ और स्तन लाक्षा (महावर) के सदृश सुर्ख हों, वह धनवान् होता है। जिस व्यक्तिकी हथेलियाँ पीत रंगकी होती हैं, वह परस्त्री-में निरत रहता है और जिसकी हथेलियाँ रूखी होती हैं, वह दरिद्र होता है।

(२२) जिसके हाथोंकी उँगलियोंका अग्रभाग सूक्ष्म—पतला

हो, वह मेधावान् होता है। जिसके हाथोंकी उँगलियाँ स्थूल होती हैं, वह दरिद्र और जिसके हाथोंकी उँगलियाँ कृश होती है, वह विनयवान् होता है।

(२३) जिसके हाथोंके अंगूठोंके बीचमें अथवा अंगूठेके मूलमें रक्तवर्ण और समरेखायें देखी जायँ, वह धनवान् और राजा होता है और जिसके उँगलियोंके जोड़ दीर्घ होते हैं, वह पुत्रवान् होता है।

(२४) जिसके हाथोंकी उँगलियाँ परस्पर मिली हुई न हों, वह दीर्घजीवी पुत्र पौत्रादियुक्त, भाग्यवान् और सुखी होता है। जिसकी उँगलियाँ घन (अर्थात् उँगलियोंमें व्यवधान या अन्तर कम हो) हों, वह धनवान् होता हैं और जिस व्यक्तिके मणिबंधसे तीन रेखायें निकल कर हथेलीभरमें फैल जाती है, वह व्यक्ति राजपद प्राप्त करता है।

(२५) जिसका अंगूठा उँचा, मांसल और गोल हो, वह महा सुखी होता है और जिसका अंगूठा कुटिल, छोटा और चपटा हो, वह दुःखी और भाग्यहीन होता है।

(२६) जिसके नाखून धानकी भूसीकी तरह छोटे हों, वह

व्यक्ति नपुंसक होता है। जिसका नखसमूह कुटिल, प्रस्फुटित और कुत्सित हो, वह दरिद्र होता है।

(२७) जिसका मुख श्यामल, मृदु, सौम्याकार और संवृत हो, वह राजपद प्राप्त करता है और जिस व्यक्तिका वदन श्यामल और शिथिल हो, उसे चिरदिन क्लेश भोग करना पड़ता है।

(२८) जिसका मुख देखनेमें भयंकर हो, वह दुर्भाग्यवान् होता है। जिसका मुख स्त्रियोंके मुखकी तरह हो—अर्थात् जनाना चेहरा हो, वह पुत्रवान् होता है। जिसका मुख वर्त्तुलाकार अर्थात् गोल होता है, वह धनवान् होता है और जिसका मुख दीर्घाकार होता है, वह दरिद्र होता है।

(२९) जिन पुरुषोंके मुख मांसल, स्निग्ध, सुगंधयुक्त, वर्त्तुलाकार और पिताके मुखके अनुकूल हों, वे पुरुष सुपात्र होते हैं।

(३०) जिसका मुख चन्द्रमाकी तरह मनोहर हो, वह धर्मशील होता है और जिन लोगोंके मुख मृग और चूहेकी तरह हों, वे अभागे होते हैं।

(३१) जिन लोगोंका मुख कमलकी तरह उल्लसित होता है,

वे धनधान्यसे युक्त होते हैं और जिन व्यक्तियोंके मुख पर किसी समय हास्य नहीं देखा जाता, वे लोग आजीवन क्लेशका अनुभव करते हैं।

(३२) जिस व्यक्तिका सिर छत्राकार हो, वह राजपद पर अभिषिक्त होता है, जिस व्यक्तिका मस्तक दीर्घ हो, वह क्लेशित होता है और जिसका शिरोदेश स्थूल और कपड़ेकी तरह हो, वह अधम और पापात्मा होता है।

(३३) जिस व्यक्तिका सिर स्थूल हो, वह धनवान् होता है और जिसका मस्तिष्क शूलाकृति होता है, वह राजपद पर अभिषिक्त होता है।

(३४) जिसका सिर विषम हो, वह पुण्यशील और नरपति होता है। जिसका मस्तक दीर्घ और शीर्ण हो, वह दुःखभोगी होता है और जिसका सिर हाथीके सिरकी तरह हो, वह राजपद प्राप्त करता है।

(३५) जिसके सिरके बाल काले, आकुञ्चित, स्निग्ध और पृथक् पृथक् हों, केशोंका अग्रभाग अभिन्न और कोमल हो और जिसके सिरमें थोड़े बाल रहते हैं, वह नृपति-पद प्राप्त करता है।

(३६) जिसके आँखोंका रंग सुर्ख हो अथवा जिसकी आँखें

Mathematics are very hard

बाघ और सिंहके नेत्रोंकी तरह हों, वह उग्र स्वभाव-का होता है और जिसकी आँखें मुर्गेकी आँखोंकी तरह हों, वह कार्याध्यक्ष, परोक्षदर्शी और सुनेत्र कहा जाता है।

(३७) जिसके नेत्रद्वय रक्तवर्ण हों, उसको कभी नारी विरह नहीं होता। जिसकी आँखोंका रंग कपिल होता है, वह धनवान् होता है और जो व्यक्ति सुनेत्र होता है, वह धन, रूप, ऐश्वर्य और सुख प्राप्त करता है।

(३८) जिस व्यक्तिकी बरुनी (पक्ष्म) घन, स्निग्ध, कृष्णवर्ण और सूक्ष्म हों, उसे सुलक्षण समझना चाहिये और जिसके पक्ष्म कपिल वर्ण विरल और स्थूल हों, वह निन्दनीय होता है।

(३९) जिसकी दोनों भौंहोंके बीचमें किसी प्रकारका चिह्न देखा जाता है, वह सदाचारी और प्रभावशाली होता है, यहाँतक कि राजा भी उसके वशीभूत रहता है।



११

ऋतु-विचार

स्त्री और पुरुषोंके भेद तथा चिन्ह आदि बातोंपर विचार करनेके बाद अब हम स्त्रियोंके ऋतु धर्म तथा विवाह आदि विषयों पर विचार करेंगे, क्योंकि दाम्पत्य-जीवनसे इन विषयोंका घनिष्ट सम्बन्ध है। दूसरे शब्दोंमें हम यह भी कह सकते हैं कि उनके भावी जीवनका सुख दुःख इन्हीं विषयोंपर निर्भर रहता है, इसलिये इन विषयोंकी उपेक्षा नहीं की जा सकती और इसीलिये काम-विज्ञानसे कुछ असम्बन्ध होने पर भी इन्हें हम विस्तारपूर्वक अंकित कर रहे हैं।

हमारे देशमें साधारणतः बालिकायें १२।१३ वर्षकी अवस्थामें ऋतुमती होती हैं। इस ऋतुके होनेका मतलब क्या है? स्वाभाविक नियमानुसार बालिकाओंके १२।१३

वर्षकी वयसमें जरायु या गर्भाशयके अन्दर रक्तका सञ्चार होता है। इस समय जरायुका मुँह किञ्चित् खुल जाता है, और रक्त योनि-पथसे बाहर निकल आता है। इस रक्त-स्रावका नाम है—रज-पात। इस शोणित-स्रावके और भी तीन नाम हैं, यथा— रज, आर्त्तव और पुष्प। जिन बालिकाओंका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, जिन्होंने जीवनमें कभी अस्वाभाविक उपायोंसे इन्द्रिय-सञ्चालन नहीं किया, उनकी ऋतु भी स्वाभाविक नियमके अनुसार हुआ करती है। नैसर्गिक नियमके अनुसार महीने महीने जिन स्त्रियोंको ऋतु हुआ करती है, उनके पीड़ा होनेका कोई कारण नहीं है। इससे वे विशेष यन्त्रणाका अनुभव नहीं करतीं। प्रति-मास ठीक समय पर यह ऋतु उपस्थित होती है। रक्त चार दिनसे लेकर ६ दिनतक अवस्थान करता है।

जिनका स्वास्थ्य अच्छा होता है, उनका शोणित-स्राव दो दिनसे अधिक स्थायी नहीं होता। इस रक्तका परिमाण आध पावसे लेकर एक पाव तक होता देखा जाता है। जिन स्त्रियोंके मासिक ऋतुका होना प्रारम्भ हो गया है, जो लोग खूब स्वस्थ सबल हैं, जिनके शरीरमें किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं है, उन लोगोंको कुछ अन्दाज मिल जाता है कि, कब—किस समय—शोणित-स्राव होगा। इस

अन्दाजका विपर्यय कदाचित् कभी दो एक दिन इधर या उधर भी हो सकता है।

जिन स्त्रियोंके स्वाभाविक नियमके अनुकूल, निर्दिष्ट समय और निर्दिष्ट परिमाणमें यह ऋतु-स्राव होता है, उनका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है, इसके समझनेमें किसीको विलम्ब नहीं होता। लेकिन इसका यदि व्यतिक्रम हो, यह नियम यदि परिवर्त्तित हो, तो समझना होगा कि, उस स्त्रीका स्वास्थ्य अच्छा नहीं हैं। उसके गर्भाशयमें कोई दोष उपस्थित हुआ है, उसके जरायुमें कुछ बिकार पैदा हो गया है।

इस समय अगर उपयुक्त चिकित्सकों द्वारा इन सब दोषोंका निवारण न किया जाय, तो उस नारीका स्वास्थ्य सदाके लिये—चिर कालके लिये भग्न हो जाता है। उसे चिर-काल अस्वस्थ अवस्थामें चिर अशान्तिमें दिन व्यतीत करने पड़ते हैं।

अतएव ऐसे स्थलोंमें पहले ही विशेष सतर्कताका अवलम्बन करना उचित है। इन सब विषयोंको अनुचित लज्जा या संकोचके वशीभूत होकर अप्रकाशित रखना—छिपा रखना—किसी प्रकार उचित नहीं कहा जा सकता। जिस पर सुख, शान्ति और स्वास्थ्य निर्भर करता है, वह

क्या छिपानेकी सामग्री है? लेकिन बड़े खेद और दुःखकी बात है कि, स्त्रियां प्रायः इस व्यापारको अप्रकट रखती हैं। नित्यके व्यवहारमें प्रायः यही नियम देखा जाता है। कितना भयंकर अत्याचार है? दूसरे पर नहीं, अपने पर, अपने सुख, शान्ति और स्वास्थ्य पर कितना भीषण वज्र-पात है। इसका परिणाम क्या कभी अच्छा हो सकता है? मामूली जूड़ी बुखार तककी उपेक्षा नहीं की जाती, जरा सा अजीर्ण होते ही चूर्णकी शीशियाँ साफ कर दी जाती हैं, लेकिन कितने आश्चर्यकी बात है, कि इस भयंकर रोगकी—ठीक समय पर मासिक धर्म न होनेकी—उपेक्षा की जाती है। यह उदासीनता अच्छी नहीं है।

इस उदासीनताके कारण हमारे देशमें प्रतिशत सत्तर स्त्रियोंके ऋतु सम्बन्धी पीड़ा देखी जाती है। इसका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह प्रत्यक्ष है। अब यह आलोचना करनेका विषय नहीं रहा हैं। घर घरमें यह व्याधि भयंकर रूपसे फैली हुई है। ऋतुके सम्बन्धमें कुछ व्यतिक्रम होते ही सावधान होना उचित है। इन सब बातोंको छिपाकर चिर-कालतक यन्त्रणा भोग करते रहना कदापि उचित नहीं है। देहमें रोगको पाल रखना ही पाप है। जो स्त्री शरीरमें व्याधि पाल रखती है, वह

स्वास्थ्य-हीन होकर अशान्तिकी सृष्टि करती है। ऋतु-कालमें कुछ नियमोंपर विशेष दृष्टि रखना, प्रत्येक स्त्रीका कर्त्तव्य है। इन सब नियमोंके न जानकेके कारण अनेक स्त्रियोंको अनेक समय विशेष यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। यहाँ तक कि समस्त जीवन व्यर्थ हो सकता है।

तथापि हमलोगोंका ऐसा दुर्भाग्य है, कि इतने बड़े आवश्यक विषयोंको अश्लील समझ कर इनकी शिक्षा देना कितने ही लोग नीति विरुद्ध समझते हैं। इसकी अपेक्षा दुःख अथवा शोकका विषय और क्या हो सकता है? जो स्त्रियां इन सब बातोंका, इन सब विषयोंका विशेष ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं, उन लोगोंको कभी कोई कष्ट नहीं प्राप्त होता। वे लोग पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ करके यौवनको चिर दिनके लिये धारण कर सकती हैं। अतएव प्रत्येक नारीको इस विषयका विशेष ज्ञान प्राप्त करना उचित है। स्त्रियोंके १२।१३ वर्षकी उमरसे प्रारम्भ होकर प्रायः पैंतालीस सालकी उम्र तक प्रतिमास रजोदर्शन हुआ करता है। कभी कभी स्त्रियोंके पचास वर्षकी अवस्थाके बाद भी नियमित रूपसे रजस्राव होते देखा जाता है। लेकिन ऐसा कभी कभी होता है। पैंतालीस सालकी उमरके बाद स्त्रियोंको रजस्राव होना बन्द हो जायगा, यही स्थिर

कर लेना उचित है। स्वाभाविक मासिक-धर्म स्त्रियोंके पैंतालीस सालकी उम्र तक ही होता है। लेकिन जिस तरह पचास सालकी उम्रके बाद भी नियमित रूपसे ऋतु होते देखी जाती है, उसी प्रकार बहुत छोटी छोटी लड़कियों में किसी किसीके ऋतु होते देखी जाती है। इस प्रकारकी घटनायें विरल नहीं हैं। हाँ, संख्या नितान्त अल्प हैं।

छोटी छोटी बालिकाओंकी ऋतुके सम्बन्धमें जर्मन-चिकित्सकोंने विशेष दृष्टिपात किया है। एक लड़कीके २ सालकी उम्रमें ऋतु ४ दिन रहती थी। यहाँतक कि उसके गुह्यांग पर केश निकल आये थे और अन्यान्य अंग युवती स्त्रियोंकी तरह पुष्ट हो गये थे।

इसी प्रकार एक बालिका एक सालकी उम्रमें ऋतुमती हुई थी और दस सालकी उम्रमें सन्तान प्रसव किया था। और एक बालिका चार सालकी उम्रमें ऋतुमती हुई थी। इस बालिकाने आठ सालकी उम्रमें सहवास कर गर्भ-धारण किया था और नियमित समयपर एक मांसपिण्ड प्रसव किया था।

इस तरह बालिकाओंकी ऋतुके सम्बन्धमें प्रोफेसर डाक्टर हिनरिच किस् एम० डी० की पुस्तकमें अनेक उल्लेख

पाये जाते हैं। किसी किसी डाक्टरकी राय है, कि डिम्ब-कोषकी विकृत अवस्था इस प्रकारकी शैशव ऋतुका कारण होती है। अस्त्र-चिकित्साके द्वारा इस प्रकार शैशव ऋतु बन्द की जा सकती है। अति शैशवकालमें यदि कोई बालिका ऋतुमती हो, तो उसे दाम्पत्य-संयोगमें न प्रवृत्त होने देना चाहिये। इस प्रकारका रजोदर्शन बिल्कुल अस्वाभाविक है। इस प्रकारकी बालिका यदि सहवासके फलसे गर्भवती हो, तो उसकी सन्तान कभी जीवित अवस्थामें नहीं उत्पन्न हो सकती। कैसे उत्पन्न होगी? जननीके देह-यन्त्रकी पुष्टिके बिना भ्रूण पुष्ट नहीं हो सकता। ऐसी स्थितिमें अधिकांश स्थलोंमें रक्तपिण्डके प्रसव होनेकी ही सम्भावना है। अतएव ऐसी बालिकाओंका सहवास करना कदापि उचित नहीं है। इससे उनकी देह नाना रोगोंकी खानि हो ऊठती है। वे कभी किसीको एक क्षणके लिये भी सन्तुष्ट नहीं कर सकतीं।

प्रायः हमलोग सोचा करते हैं, कि प्राकृतिक नियमानुसार पैंतालीस सालकी उम्रमें, रजोदर्शन बन्द होनेके पश्चात् स्त्रियोंके फिर गर्भसञ्चार नहीं होता। परन्तु ऋतु बन्द होनेके बाद भी अनेक स्त्रियोंको साठ सत्तर सालकी बयस पर्यन्त गर्भधारण करते देखा गया है। किन्तु ऐसी घट-

नायें विरल ही होती हैं। ऋतु बन्द हो जानेके पश्चात् अधिकांश स्थलोंमें स्त्रियोंके गर्भधारणकी क्षमता नहीं रहती। साधारणतः इतना जान लेना ही हमारे लिये यथेष्ट है।

ऋतुकालमें स्त्रियोंको निम्नलिखित नियमोंपर विशेष ध्यान रखना उचित और आवश्यक है। इस समय जहाँ-तक सावधान और नियमित रहा जा सके, उतना ही अच्छा है। उतना ही कल्याण है। अतएव प्रत्येक नारीको इन नियमोंके प्रतिपालनकी चेष्टा करना उचित है :—

(१) आहार हल्का और पाचन होना चाहिये। गुरुपाक वस्तु—देरसे हजम होनेवाली चीजका भोजन करना इस समय बिल्कुल मना है।

(२) बहुत अधिक गर्म अथवा शीतल पदार्थोंका पान या आहार करना अनुचित है।

(३) ठण्डे या खुले स्थानोंमें शयन करना निषिद्ध है।

(४) शीतल जलसे स्नान करना अथवा देह धोना उचित नहीं है। शीतकालमें हाथ-पैर धोनेके लिये गरम जल व्यवहार करना चाहिये। मामूली ठण्डक लगनेसे भी ऋतु बन्द हो जानेकी सम्भावना है। इस समय यदि सर्दी लग जाय, तो पेटमें दर्द और श्वेतप्रदर प्रभृति बीमारियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यहाँतक कि कभी कभी जरायु

पक जाता है। अतएव ऋतुकालमें किसी तरह भी सर्दी लगने देना उचित नहीं है। लेकिन बड़े खेदकी बात है, कि हमारे देशकी स्त्रियाँ इन बातोंकी बहुत ही अवहेलना करती हैं। उसका फल भी उनको भोग करना पड़ता है। प्रकृति नियम उल्लंघन करनेवालेको कदापि क्षमा नहीं करती। हमारा विनीत-निवेदन है, कि आलस्य परित्याग करके इस अवस्थामें इन सब नियमोंका पालन स्त्रियाँ अवश्य करें। अन्यथा उन्हें भयंकर कष्टोंका सामना करना पड़ेगा।

(५) ऋतुकालमें चार दिन अथवा जबतक शोणित मौजूद रहे, तबतक सहवास करना उचित नहीं है। स्वतन्त्र घरमें शयन करना ही कर्त्तव्य है। यदि परिस्थिति-के कारण यह सम्भव न हो, तो अलग बिस्तरेपर सोना उचित है। ऋतुकालमें स्वामीके साथ सहवास करना एकदम निषिद्ध है। इस सम्बन्धमें हमारे धर्मशास्त्रोंने भी बार बार निषेध किया है।

ऋतुकालमें जो नारी स्वामीके साथ सहवास करती है, उसे असीम यन्त्रणा मिलती है। उसकी देह अनेक रोगोंसे आक्रान्त हो जाती है। उसे चिर-जीवन कठिन रोगोंसे ग्रस्त होकर अशेष कष्ट प्राप्त करना पड़ता है। अतएव इस विषयमें प्रत्येक नारीको सतर्कताका अवलम्बन

करना उचित है। ऐसे अनेक मूर्ख पुरुष हैं, जो सोचते हैं, कि इस समय सहवास करनेसे गर्भ नहीं होता। यह बहुत बड़ी गलती है। ऋतुके प्रथम दिनसे लेकर ऋतु-कालके बीचमें सहवास करनेसे गर्भका होना सम्भव है। इस प्रकारके सहवासके फलसे प्रायः देखा जाता है, कि ऋतु बन्द हो जाती है और इस समय जो सन्तान जन्मग्रहण करती है, वह विकलांग होती है। अतएव इस समय सहवास करना बिल्कुल उचित नहीं है।

(६) ऋतुकालमें स्त्रियोंको रेल-गाड़ी, घोड़ा गाड़ी अथवा मोटर पर बैठकर अधिक दूर जाना निषिद्ध है। इस समय अतिरिक्त परिश्रम करना उचित नहीं है।

(७) आजकल हमारे देशमें स्त्रियोंकी जो जरायु-सम्बन्धी इतनी पीड़ा देखी जाती है, उसका एकमात्र कारण है स्त्रीका शैथिल्य। इस समय महीन कपड़ा पहनना बिल्कुल अनुचित है। इस समय उदरमें सर्दी लग जानेसे जरायुकी श्लैष्मिक झिल्लियोंमें प्रदाह उपस्थित होता है। बादको यह इतना प्रबल हो उठता है, कि बड़े बड़े विचक्षण चिकित्सक भी इसे आराम करनेमें समर्थ नहीं होते। फलतः वन्ध्यत्व, कष्टरज, पेड़ूमें दर्द प्रभृति रोग उत्पन्न होते हैं और ये सब रोग स्त्रीके आजीवन संगी हो

जाते हैं। ऋतुकालमें जरायु अथवा डिम्बाधारमें रक्त-की अधिकता होनेपर उसे सदैव मोटे कपड़ेसे ढक रखना उचित है।

व्यास संहितामें ऋतुमती स्त्रीके कर्तव्य इस प्रकार निर्धारित किये गये हैं :—

योषितो नित्यकर्म्मोक्तं नैमित्तिकमथोच्यते।
रजोदर्शनतो दोषान्सर्व्वमेव परित्यजेत्॥
सर्व्वैरलक्षिता शीघ्रं लज्जिताऽन्तर्गृहेवसेत्।
एकाम्बरवृता दीना स्नानाऽलंकारवर्ज्जिता॥
मौनिन्यधोमुखी चक्षुः पाणिपद्भिरचञ्चला।
अश्नीयात् केवलं भक्तं नक्तं मृन्मयभाजने॥
स्वपेद्भूमावप्रमत्ता क्षपेदेवमहस्त्रयम्।
स्नायीत च त्रिरात्रान्ते सचैलमुदिते रवौ॥
विलोक्य भर्त्तुर्वदनं शुद्धा भवति धर्म्मतः।
कृतशौचा पुनः कर्म्म पूर्व्ववच्च समाचरेत्॥

अर्थात् रजोदर्शन होनेपर स्त्री सब नित्यकर्म त्याग करे और लज्जावती होकर एकान्तगृहमें रहे। एकवस्त्र धारण करे। स्नान व अलंकार त्याग करे और दीना व मौनिनी होकर रहे। नेत्र, हाथ और पैरों द्वारा चाञ्चल्य प्रकाश न करे। केवल रात्रिको मिट्टीके बने हुए पात्रमें अन्न भोजन

करे। भूमि-शय्यापर सोवे। इस प्रकार प्रमादशून्य अवस्थामें ३ दिन व्यतीत करनेके बाद चौथे दिन सूर्योदय होने पर सवस्त्र स्नान करे और पतिका मुख दर्शन करे। * ऐसा करनेसे ऋतुमती स्त्री धर्मतः शुद्ध होती है। शुद्ध होनेके बाद वह पुनः अपने नित्यकर्म कर सकती है।

ऋतुमती नारीको किस प्रकार रहना चाहिये, इसपर सिद्धनागार्जुनकी राय इस प्रकार है :—

(१) ऋतुमतीको स्नान और आभूषण परित्याग कर देना चाहिये। एकवस्त्र पहनना चाहिये और एकान्तमें स्थिर बैठना चाहिये।

(२) ऋतुमतीको दिनमें एकबार मृत्तिकाके पात्रमें भोजन करना चाहिये और रातको जमीनपर सोना चाहिये।

(३) बहुत बातें न करनी चाहियें। देहमें गन्ध या उबटन नहीं लगाना चाहिये। पान न खाना चाहिये। अञ्जलिसे पानी न पीना चाहिये। मधु और मांसाहार यत्नपूर्वक परित्याग कर देना चाहिये। आँखोंमें अञ्जन न लगाना चाहिये। अग्नि-स्पर्श न करना चाहिये और रोना अथवा शोक न करना चाहिये। तीन दिन इस प्रकार

---

* महर्षि भृगुने लिखा है, कि पति अनुपस्थित हो तो उसका ध्यान कर, सूर्यदर्शन करना चाहिये।

व्यतीत करना चाहिये। चौथे दिन स्नान करके शुद्ध होना चाहिये।

ऋतुकालमें स्त्रियोंको जिन नियमोंका पालन करना चाहिये और जिन नियमोंके पालन करनेसे स्त्रियोंका शरीर स्वस्थ रहता है, उनमेंसे अधिकांश ऊपर लिखे जा चुके हैं। इन नियमोंके पालन करनेकी ओर प्रत्येक स्त्रीको ध्यान रखना चाहिये। उपेक्षासे, औदासिन्यसे विशेष हानि होनेकी सम्भावना है।

ऋतुके समय यदि शरीरमें पीड़ा न हो, रक्त आधपाव-से कम और एक पावसे अधिक न निर्गत हो, कपड़ोंमें लगे हुए रक्तके दाग जलमें धोते ही साफ हो जाँय और रक्तका निर्गमन चार, पांच दिनसे अधिक न हो, तो समझना चाहिये कि जरायु नीरोग और स्वस्थ है। ऋतुकालमें जो रक्त बाहर होता है, वह अगर पतला न हो, गाढ़ा हो तो तुरन्त समझ लेना चाहिये, कि जरायु किसी न किसी व्याधिसे आक्रान्त है। यदि अधिक दिनतक रक्त बाहर होता रहे, तो वह भी स्वस्थताका लक्षण नहीं हैं। ऋतु-कालके समय स्त्रियोंका शरीर भारी रहता है और देहमें बहुत अधिक गरम मालूम होती है।

मासिक रक्तस्राव स्त्रियोंका एक विशिष्ट धर्म है।

इसलिये इसका दूसरा नाम है, स्त्री-धर्म। इस ऋतु-स्रावके साथ स्त्रियोंके स्वास्थ्यका अति निकट सम्बन्ध है। ऊपर जिन नियमोंका उल्लेख किया गया है, प्रत्येक नारीको उन नियमोंको ऋतुकालमें अवश्य पालन करना चाहिये। जो स्त्रियाँ ऋतुकालमें इन नियमोंका पालन करती हैं, वे नीरोग होकर स्वस्थ और सबल पुत्र कन्याकी जननी होती हैं। संसारमें अनन्त शक्ति विस्तृत करती हैं। विश्व-जगत्को शान्ति-कुञ्ज या "अमरपुरी" बना देती है।

हमारे यहाँ ऋतुके सम्बन्धमें कई बातोंका विचार किया जाता है। अर्थात् नारीके पहले पहल जिस दिन, जिस तिथि, जिस मास, जिस नक्षत्र और जिस समय ऋतु-स्राव होता है, उसके फलाफलकी विवेचना की जाती है। यह विचार केवल उसी समय किया जाता है, जब कन्या पहले पहल ऋतुमती होती है। पाठकोंकी जानकारीके लिये रतिशास्त्रसे हम यह विषय उद्धृत करते हैं।

तिथि-फल-विचार।

यदि स्त्री प्रतिपद (पड़वा) तिथिको पहले पहल ऋतुमती हो, तो वह चिररोगिनी होती है,। किसी किसीकी सम्मति है, कि उसकी शीघ्र मृत्यु हो जाती है।

यदि कोई स्त्री द्वितीयाको ऋतुमती होती है, तो उदासिनी होती है, किसी किसी आचार्यकी राय है, कि उसकी स्मरणशक्ति भी ठीक नहीं रहती।

यदि कोई स्त्री तृतीयाको ऋतुमती होती है, तो वह अपुत्रा होती है अर्थात् उसके सन्तान नहीं होती। किसी किसी शास्त्रकारकी राय है, कि उसकी ऋतु व्यर्थ जाती है।

जो स्त्री चतुर्थी तिथिको पहले पहल ऋतुमती होती है, उसकी सन्तान गर्भमें अथवा भूमिष्ट होनेके बाद ही विनष्ट हो जाती है। किसी किसो शास्त्रकारकी सम्मति है, कि वह आजन्म वन्ध्या होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

जो स्त्री पञ्चमीको पहले पहल रजोदर्शन करती है, वह जीवन्मृत होकर अथवा चिर-रोगिनी होकर जीवन अतिवाहित करती है।

षष्ठी तिथिको जो स्त्री ऋतुमती होती है, वह शीघ्र ही मर जाती है। उसका जन्म और जीवन विफल हो जाता है।

जो स्त्री सप्तमी तिथिको ऋतुमती होती है, वह जन्म वन्ध्या होती है—उसके कभी पुत्र कन्या नहीं होती है।

जो नारी अष्टमी तिथिको पहले पहल रजोदर्शन करती है, वह सुख धनधान्य आदिसे युक्त होतो है।

जो रमणी नवमी तिथिको रजस्वला होती है, वह सौभाग्यवती होती है, सुखभोग करती है और दीर्घजीवन प्राप्त करती है।

जो स्त्री दशमी तिथिको पहलेपहल रजोदर्शन करती है, वह व्यभिचारिणी होती है।

जो स्त्री एकादशी तिथिको ऋतुमती होती है, वह कुल-घातिनी होती है।

जो स्त्री द्वादशीको पहलेपहल रजोदर्शन करती है, वह धर्मशीला होती है।

जो स्त्री त्रयोदशीको ऋतुमती होती है, उसे वैधव्य दुःख नहीं भोगना पड़ता और वह पतिव्रता होती है।

चतुर्दशी तिथिको जो स्त्री पहलेपहल रजोदर्शन करती है, वह दुःख और शोक भोगती है—आजीवन दुःखी रहती है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

जो पूर्णिमाको ऋतुमती होती है, वह भाग्यवती और पुत्र पौत्र सम्पन्न होती है।

अमावस्याको जो पहलेपहल ऋतुमती होती है, वह गर्विता, व्यभिचारिणी और कठोरभाषिणी होती है। किसी शास्त्रज्ञकी सम्मति है, कि वह रोगग्रस्त रहती हैं और अकालमें वृद्ध हो जाती है।

दिवस-फल-विचार।

रतिशास्त्रमें तिथियोंकी भाँति दिनोंके फलाफलका भी वर्णन है। विस्तार-भयसे मूल श्लोक न लिख कर हम उनका अर्थ ही पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं। दिनोंके बाद मास और नक्षत्रोंका फलाफल भी कहा गया है। दिनोंका फलाफल इस प्रकार है :—

जो रमणी रविवारको पहले पहल रजोदर्शन करती है, वह विधवा होती है।

जो स्त्री सोमवारको रजस्वला होती है, वह पतिव्रता, सुशीला और सदा सुहागिन हुआ करती है।

जो नारी मंगलवारको ऋतुमती होती है, वह व्यभिचारिणी होती है।

जो कामिनी बुधवारको ऋतुमती होती है, वह सुख-सौभाग्यशालिनी होती है।

जो नारी बृहस्पतिवारको ऋतुमती होती है, उसका पति धनवान और श्रीमान होता है।

जो रमणी शुक्रवारको ऋतुमती होती है, वह पुत्रवती होती है और पुत्र दीर्घजीवी होते हैं।

जो स्त्री शनिवारको ऋतुमती होती है, वह वन्ध्या होती है।

मास-फल-विचार ।

जो नारी वैशाख मासमें ऋतुमती होती है, वह सुहासिनी और प्रियंवदा होती है।

जो नारी ज्येष्ठ मासमें पहलेपहल रजोदर्शन करती है, वह विधवा होती है।

जो स्त्री आषाढ़में ऋतुमती होती है, वह ऐश्वर्यशालिनी होती है।

जो स्त्री श्रावणमें रजोदर्शन करती है, वह चिर दुःखिनी और मृतवत्सा होती है। अर्थात् उसकी सन्तान दीर्घजीवी नहीं होती, अतएव उसे चिरजीवन दुःखमें अतिवाहित करना पड़ता है।

जो स्त्री भाद्र मासमें ऋतुमती होती है, वह अकाल-वार्द्धक्यसे आक्रान्त होती है।

जो नारी आश्विन मासमें ऋतुमती होती है, वह चिर-दुःखिनी होती है।

जो रमणी कार्त्तिकमें रजस्वला होती है, वह अपने कुलका नाश करनेवाली होती है।

जो स्त्री मार्गशीर्षमें रजोदर्शन करती है, वह पतिव्रता और धर्मशीला होती है।

जो स्त्री पौष मासमें ऋतुमती होती है, वह कामुकी होती है।

जो नारी माघ मासमें रजस्वला होती है, वह निःसंदेह पतिव्रता होती है।

जो नारी फाल्गुन मासमें रजस्वला होती है, वह बहु पुत्रवती होती है और उसके पुत्र दीर्घजीवी होते हैं।

जो नारी चैत्र मासमें रजोदर्शन करती है, वह मदन-विह्वला होती है।

नक्षत्र-फल-विचार।

महीनोंके बाद नक्षत्रोंका फलाफल वर्णन किया गया है। वह इस प्रकार है :—

अश्विनी नक्षत्र शुभप्रद है। जो स्त्री इस नक्षत्रमें पहले पहल रजोदर्शन करती है, वह सुखी और पति-प्रणयिनी होती है।

भरणी नक्षत्र दुःखप्रद है। जो स्त्री इस नक्षत्रमें पहले पहल रजोदर्शन करती है, वह विधवा होती है।

जो नारी कृत्तिका नक्षत्रमें रजोदर्शन करती है, वह दरिद्र और चिरदुःखिनी होती है।

रोहिणी नक्षत्र अशुभ है, अतएव इस नक्षत्रमें जो स्त्री

पहलेपहल रजोदर्शन करती है, उसे अशेष कष्ट प्राप्त होते हैं और वह विधवा होती हैं।

मृगशिर नक्षत्र भी वैसा ही अशुभ है। अतः इसका फल भी रोहिणी नक्षत्र जैसा होता है।

जो स्त्री आर्द्रा नक्षत्रमें पहले पहल रजस्वला होती है, उसे भी वैधव्य यन्त्रणामें दग्ध होना पड़ता है।

जो स्त्री पुनर्वसु नक्षत्रमें ऋतुमती होती है, वह शोकातुर होती है।

जो स्त्री पुष्य नक्षत्रमें ऋतुमती होती है, वह सुखी होती है।

जो नारी अश्लेषा नक्षत्रमें ऋतुमती होती है, वह ऐश्वर्यशालिनी होती है और उसका जीवन दीर्घ होता है।

जो कामिनी मघा नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह दुःखिनी होती है।

जो नारी पूर्वफाल्गुनी नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह हतभागिनी विधवा होती है।

उत्तरफाल्गुनी नक्षत्र शुभ है, अतः इस नक्षत्रमें जो रमणी रजोदर्शन करती है, वह सुखभागिनी होती है।

जो नारी हस्त नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह ऐश्वर्यशालिनी और पतिवल्लभा होती है।

चित्रा नक्षत्रका फल भी उपरोक्त जानना चाहिये।

स्वाति, विशाखा और अनुराधा ये तीनों नक्षत्र शुभप्रद और सुखावह हैं। इन नक्षत्रोंमें जो नारी रजस्वला होती है, वह पतिके सौभाग्यको बढ़ानेवाली होती है।

जो स्त्री ज्येष्ठा नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह शोकातुर होती है।

मूल नक्षत्र शुभप्रद है, अतः जो स्त्री इस नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह धन और धान्य आदिसे सम्पन्न होती है।

पूर्वाषाढ़ नक्षत्र शोक और दुःखका कारण है, अतः इस नक्षत्रमें जो नारी रजस्वला होती है, वह विधवा होती है।

जो स्त्री उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें ऋतुमती होती है, वह पतिव्रता और सुखकी अधिकारिणी होती है।

जो नारी श्रवण नक्षत्रमें रजस्वला होती है, वह ऐश्वर्य युक्त होती हैं।

धनिष्ठा, शतभिष और उत्तराषाढ़ ये तीनों नक्षत्र शुभप्रद हैं। इन सब नक्षत्रोंमें जो नारी ऋतुमती होती है, वह सुखी होती है।

उत्तराभाद्रपद नक्षत्र अशुभ है, अतः इस नक्षत्रमें

जो नारी पहले पहल रजस्वला होती है, वह विधवा होती है।

रेवती नक्षत्रमें जो नारी रजस्वला होती है, वह धन धान्यवती होती है।

समय-फल-विचार।

जो स्त्री दिनमें रजस्वला होती है, वह सुखी होती है, उसका कल्याण होता है।

जो स्त्री रात्रिके समय रजस्वला होती है, वह पतिकी प्रणयिनी और स्वामीकी मंगलकारिणी होती है।

जो स्त्री प्रातःसन्ध्या या सायंसन्ध्याको रजस्वला होती है, वह वन्ध्या होती है।





विवाह

गृहस्थ आश्रम श्रेष्ठ आश्रम है, इस बातसे कोई इनकार नहीं कर सकता। यही बात ऋषियोंने भी बारबार कही है। हमलोग यदि एकबार पृथिवीके चारों ओर देखें, तो अनायास ही मालूम कर सकते हैं, कि कोई एकाकी नहीं रहना चाहता। सभी संगी या संगिनी के लिये व्याकुल देख पड़ते हैं। प्रकृतिका भी यही नियम है। इस नियमसे ही प्रकृति सृजन और ध्वंसके मध्य अनादि-कालसे चली आ रही है। अतएव गृहस्थ आश्रम सर्वश्रेष्ठ आश्रम है। मनुष्य इस बातसे कैसे इनकार कर सकता है? इस प्रत्यक्ष सत्यको कैसे उपेक्षाकी दृष्टिसे देख सकता है?

इस सौन्दर्यमयी पृथिवीमें जिस ओर देखा जाय, पशु पक्षी, कीट पतंग, अणु परमाणु सभी सुखके लिये व्याकुल

हैं। उस सुखकी आशासे कोकिल, कोकिल-वधूके साथ, सिंह सिंहिनीके साथ और पुरुष नारीके साथ मिलनेके लिये व्याकुल हो उठता है। स्त्री और पुरुष इन दोनोंके सम्मेलन-से ही गृहस्थ-धर्मकी सृष्टि हुई है। गृहस्थाश्रमका मूल स्त्री और पुरुष ही हैं। यह उद्देश्य दो प्राणियोंके मिलनसे ही सफल होता है। जिससे दो हृदय सम्मिलित होकर संसारमें नन्दन कानन प्रतिष्ठित कर सकें, उसीका नाम विवाह है। विवाहके द्वारा ही जगत्‌के सर्वश्रेष्ठ आश्रमके धर्मका पालन होता है। इसीलिये विवाह इतना आनन्द-मय, इतना उल्लासमय और इतना मंगलमय माना जाता है।

इस संसारमें सुख कौन नहीं चाहता? सभी तो सुखके भिखारी हैं। व्याह करके स्वयं सुखी होने और दस आदमियोंको सुखी करनेके विचारसे ही तो मनुष्य व्याहके लिये इतना व्याकुल हो उठता है। लेकिन व्याह करके यथार्थ सुखी कितने आदमी होते हैं? हम जोर देकर कह सकते हैं, प्रति शत पाँच भी नहीं। यह बात नहीं कि, उसका कोई कारण नहीं है। जरासा सोचकर देखनेसे कारण अनायास ही समझमें आ सकता है। विवाह तो सुखके लिये होता है, फिर मनुष्य व्याह करके अभाव और दैन्यमें क्यों प्रतिदिन डूबता रहता है? क्यों

मनुष्य व्याह करके दुःखकी ज्वालासे हाहाकार किया करता है ? व्याह करना ही भूल है अथवा व्याह करके ही विषम गलती की गई है, यह कहकर बारबार क्यों आक्षेप करता रहता है ? वैवाहिक जीवन क्यों दुःखमय हो रहा है ? विवाहित स्त्री-पुरुषोंके मुँहसे स्वर्गीय हास्य कहाँ चला गया है ? आनन्द-ज्योति क्यों मलिन हो गई है ? उत्फुल्लता क्यों लुप्त हो गई है ?

बात यह है कि कर्त्तव्य को लेकर ही मनुष्यका जीवन गठित हुआ है। देह-पर भी मनुष्यका एक कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्यके पालन किये बिना मनुष्य किसी तरह दुःख मुक्त नहीं हो सकता। मनुष्य यदि चिरसुखका अधिकारी होना चाहे, तो अपनी देहके प्रति उसका जो कर्त्तव्य है, उसे पालन करना उचित है। यदि विवाहके सम्बन्धमें सब बातोंको जान कर मनुष्य व्याह करे तो विवाह किसी प्रकार दुःखद नहीं हो सकता। विवाहका चरम उद्देश्य सुख है, मनुष्य उसे प्राप्त कर अपना जीवन चिरसुखी कर सकता है।

हमारे देशमें माता पिता या अभिभावक ही हमलोगोंकी जीवनसंगिनी या संगीका प्रबन्ध करते हैं। पुराने जमानेमें दूरदर्शी माता पिता या अभिभावकों द्वारा कदाचित्

हो निर्वाचनमें भूल होती रही होगी। वे लोग वरकन्याके लक्षण मिलाकर, दोनोंके स्वभावके तारतम्यका निरीक्षण करके व्याह किया करते थे। अतएव यह कहना व्यर्थ है, कि मनुष्य व्याह करके अनन्त सुखका अधिकारी होता था।

आजकल पाश्चात्य देशोंमें अपने अपने मनके अनुकूल पात्र पात्रीका निर्वाचन करनेका अधिकार प्रत्येक नरनारीको है। वहाँके मनीषियोंकी राय है, कि जीवन भर जिसके साथ अतिवाहित करना होगा, जिसको लेकर चिरसुखी होना होगा, उसके निर्वाचनका भार प्रत्येक नर नारीके हाथमें रहना ही उचित है। अतएव वयःप्राप्त नर-नारीको अपनी इच्छानुकूल संगी चुननेका अधिकार है। पुराने जमानेमें भारतवर्षमें भी यह मत प्रचलित था। हमारे यहाँ इसको "गान्धर्व विवाह" कहते थे। क्षत्रियों यह प्रथा विशेष रूपसे प्रचलित थी।

भगवान् वात्स्यायनने अपने काम-सूत्रमें इसी मतका समर्थन किया है। आपकी राय है कि—

व्यूढ़ानां हि विवाहानामनुरागः फलं यतः।
मध्यमोपि हि सद्‌योगो गान्धर्वस्तेन पूजितः॥
सुखत्वादवहुक्लेशादपि चावरणादिह।
अनुरागात्मकत्वाच्च गान्धर्वः प्रवरो मत॥

तात्पर्य यह है, कि विवाह करनेका फल अनुराग है। अनुरागात्मक गान्धर्व विवाह सुखका हेतु है। इसमें विशेष क्लेश नहीं भोगना पड़ता है, इसमें विधिवत् वरण सन्निधान भी नहीं है और यह अनुरागात्मक है। इसलिये अन्य प्रकारके विवाहोंसे यह विवाह श्रेष्ठ है।

आजकल हमारे देशमें इसी मतकी ओर लोगोंका अधिक झुकाव हो रहा है। लोग इसके पक्षमें उत्साहपूर्वक अपना मत व्यक्त करते हैं, परन्तु हमें उनकी बातोंके औचित्य और कार्यकी उपयोगितामें सन्देह है। हमें उनकी तर्क-शैली अपूर्ण मालूम होती है। क्योंकि यह विवाह अनुराग पर निर्भर होते हैं और अनुराग कोई ऐसी चीज नहीं है, जो सदा एकरस रहे। उसमें परिवर्त्तनका होना स्वाभाविक है और यह प्रायः देखा भी जाता है। आज किसी कारण किसी पर हमलोग अनुरक्त होते हैं और इस समय हमें वह पदार्थ संसारके उसी किस्मके सब पदार्थोंसे सुन्दर मालूम होता है। उस समय हम यह विश्वास भी नहीं करना चाहते, कि इसी किस्मकी इससे बढ़कर कोई वस्तु हो सकती है। परन्तु कुछ दिनोंके बाद हमारी यह धारणा भ्रान्त सिद्ध होती है।

मन स्वभावतः रिझवार होता है। बाहरी गुणोंपर ही

मुग्ध होकर वह प्रायः किसी पदार्थ पर मुग्ध हो जाता है और यह संसारका बिल्कुल प्रचलित नियम है, कि अपने प्रेम-पात्रके अवगुण भी अपनेको गुण ही मालूम होते हैं। अर्थात् अनुराग होनेके बाद हम अपने प्रेमाधारके गुणों या अवगुणोंके सम्बन्धमें विशेष कुछ नहीं जानना चाहते। हम केवल इसी बातसे सन्तुष्ट रहना चाहते हैं, कि वह हमारे अनुरागका आधार है। हमारा मन उसपर मुग्ध है, यही बहुत बड़ा गुण है। कभी कभी नूतनता—अर्थात् नूतन वस्तुमें भी हमारा अनुराग इसीप्रकार बढ़ता रहता है। कुछ लोगोंकी राय है, कि मानव-मन नित्य नवीन वस्तुओंकी ओर ही आकृष्ट होता है। खैर, दोनोंमेंसे चाहे जो कुछ हो, परन्तु यह निश्चित है, कि अनुराग परिवर्त्तन-शील है और मनुष्य सदा—जीवन भर एक ही व्यक्तिसे अनुरक्त रहेगा, इसकी स्थिरता नहीं है। तब गान्धर्व-विवाहका समर्थन कैसे किया जा सकता है। यौवन-कालमें मनुष्य—चाहे वह पुरुष हो और चाहे स्त्री-के मनकी स्थिति भिन्न प्रकारकी होती है। परस्परके प्रति आकर्षणके लिये दो ही चार बातोंकी आवश्यकता होती है और फिर दो ही चार बातोंमें खटपट हो जाती हैं। ऐसी दशामें यह प्रणय चिरस्थायी होगा, इसकी आशा नहीं। हमारा

देश युरोप नहीं है, कि प्रणय-विच्छेद होते ही तलाक दे दी जाय, स्वामी दूसरी स्त्रीको और स्त्री दूसरे पतिको चुन ले। हमारे यहाँ तो विवाह एक बहुत बड़ा धार्मिक बन्धन है, इस बन्धनमें एकबार बँध जाने पर आजीवन बँधे रहना पड़ता है। हम लोगोंका विश्वास है, कि जन्म जन्मान्तरमें भी पति-पत्नीका सम्बन्ध अविच्छेद्य भावसे बना रहता है। अतएव हमारे लिये तो ब्राह्म और आर्ष आदि विवाह ही उचित हैं।

हाँ, हमारे यहाँ विवाह मात्र धार्मिक बन्धन हैं। चाहे वह गान्धर्व हो और चाहे आसुर। यदि एक युवक और युवती प्रथम प्रणयके आवेगमें एक दूसरेके प्रति अनुरक्त हो जायँ और उनका गान्धर्व-विवाह हो जाय, तो उन्हें आजीवन उसी बन्धनमें बँधकर रहना होगा। फिर एक दूसरेका परित्याग कर सकना असम्भव है। विवाहके बाद यदि वह कामजन्य-प्रेम अन्तर्हित हो गया, यदि प्रणयका पाश छिन्न-भिन्न हो गया तो दाम्पत्य-जीवनको दुःखमय होते देर नहीं लगती।

यौवनकालमें युवक और युवतियोंमें सांसारिक अभिज्ञता बहुत कम रहती है। अतएव यह भार माता-पिताके हाथोंमें ही रहना चाहिये। परन्तु युवक और युवतियोंकी सम्मति

मामूली सी किसी चीजके जोड़नेमें बहुत बड़े हिसाबकी जरूरत पड़ा करती है। और यह तो एक आत्माके साथ दूसरी आत्माका मिलन है। विशेष हिसाब-किताब किये बिना क्या यह सम्मिलन संभव है ?

हम पहले ही लिख आये हैं, कि हमारे समाजमें पिता, माता या अभिभावक ही लड़के-लड़कियोंका व्याह किया करते हैं। अतएव इस सम्बन्धमें उन्हींको यथेष्ट ध्यान रखना चाहिये। कारण, युवक बेचारे यदि ध्यान रक्खें भी, तो उससे क्या हो सकता है। सबसे पहले इस बातकी विवेचना करनी चाहिये, कि वह विवाह करनेके उपयुक्त है कि नहीं। द्वितीय जिसके साथ वह विवाह करने जा रहा है, उसके साथ उसका मिलना होना संभव है, या नहीं। इन सब बातोंको भलीभांति विवेचना करनेके बाद जो व्याह करते हैं उनका व्याह कदापि दुःखमय नहीं हो सकता। वे व्याहका पूर्ण सुख चिरकाल तक भोगते रहते हैं। केवल मनके अनुसार पात्री या पात्रके होनेसे ही व्याह सुखमय नहीं हो सकता। कारण, वयसके साथ भी व्याहका विशेष सम्बन्ध है। अतएव उस ओर भी सतर्क दृष्टि रखनी चाहिये।

प्रत्येक देशमें विवाहका एक निर्दिष्ट समय और निश्चित

आयु है। किन्तु जल वायुके तारतम्यसे यौवनके पहले या पीछे उपस्थित होनेसे सब देशोंके विवाहका समय एक नहीं हो सकता।

सन्तान उत्पादन करनेकी शक्ति मनुष्यके शरीरमें जस समय आये, विवाह करनेके लिये वही उपयुक्त समय कहा जा सकता है। पहले ही कह चुके हैं कि, जल-वायुके तारतम्यके अनुसार यौवन-चिन्ह शीघ्र या देरीसे प्रकट होते हैं। अत्यन्त ग्रीष्म प्रधान देशोंमें ६।१० सालकी आयुमें भी बालिकाओंके यौवन-लक्षण प्रकट होते देखे जाते हैं। जिन देशोंमें ग्रीष्म और शीतका अधिक आतिशय्य होता है, वहाँ पर बालिकाओंके साधारणतः १२।१३ वर्षकी अवस्थामें यौवन लक्षण प्रकट होते हैं और लड़के १५ से लेकर १८ वर्षकी आयुमें यौवनमें पदार्पण करते हैं। इसके अतिरिक्त खाद्य-द्रव्य और समाज संगसे भी यौवनका तार तम्य होता रहता है।

जल वायुके गुणोंसे अथवा अन्य किसी कारणोंसे जिसके शरीरमें अल्प वयसमें ही यौवन आ जाता है, वह किसी प्रकार दीर्घ-जीवन प्राप्त करके संसारमें सुख शान्ति भोग नहीं कर सकता। यौवन बहुत थोड़े समयमें ही उसके शरीरसे अन्तर्हित हो जाता है और वह जरा-

अस्त हो जाता है। किन्तु जिसके शरीरमें यौवन धीरे धीरे आता है, जिसके शरीरका यन्त्र-समूह धीरे धीरे पुष्टि लाभ करता है, वे लोग दीर्घ काल पर्यन्त यौवन श्रीसे मण्डित रहकर पृथिवीमें अनन्त शान्ति और संसारमें अनन्त सुख भोग करते हैं। अतएव इससे यह परिणाम निकालना चाहिये, कि यौवन-काल जितना धीरे धीरे देहपर अपना राज्य-वस्तार करके लावण्य प्रस्फुटित करे, उतना ही मङ्गल है।

प्रायः हम देखते रहते हैं, कि पृथिवीके सब देशोंके मनुष्योंके शरीरोंमें यौवन लक्षणोंका प्रकाश होना ही विवाह-काल निरूपित हुआ करता है। किन्तु यह निरूपण बिलकुल भ्रान्त है। बालिकाओंके रजोदर्शनके बाद ही उनके शरीरके यन्त्र-समूहने परिपुष्टता प्राप्त कर ली, और वे गर्भधारण करनेमें समर्थ हो गयीं, यह नहीं माना जा सकता और न ऐसा होता ही है। जो लोग इस बातको मानते हैं कि रजोदर्शन होना ही गर्भ-धारणके सामर्थ्यकी कसौटी है, वे महा भ्रान्त हैं। वे इस भ्रान्त धारणाके वश-वर्त्ती होकर अपनी सन्तान-सन्ततिका बहुत बड़ा अनिष्ट करते हैं। वस्तुतः बालिका रजोदर्शनके २।३ वर्ष बाद गर्भ-धारण करनेमें समर्थ होती है।

बालिकाके प्रथम यौवन-लक्षण प्रकाश होनेके बाद, या

प्रथम रजोदर्शनके बाद ही उसके शरीरके सम्पूर्ण अस्थि, शिरा, धमनी, सन्तान धारण करनेवाला यन्त्र अर्थात् जरायु इत्यादि भलीभांति परिपुष्टि नहीं प्राप्त कर सकते। प्रकृति उस समय केवल यह निर्देश करती है, कि यह समय पर फलवती होगी। शरीरके अन्दर ऐसी अनेक अस्थियाँ हैं, जिनकी पूर्णताकी प्राप्ति २५ वर्षकी उम्रके पहले नहीं होती। पचीस वर्षके पहले पैरोंकी हड्डियाँ और पेलविस सम्पूर्णरूपसे पुष्ट नहीं हो जातीं।

इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि, तेरह साल या अठारह सालकी उम्रमें बालिकाके यौवन धर्म प्राप्त होने पर भी उसका यन्त्र समुदाय और अङ्ग प्रत्यङ्ग आदि पूर्णता प्राप्त नहीं करते। अतएव असम्पूर्ण और अपरिणत यन्त्र विशिष्ट कोई बालिका गर्भ धारणके लिये उपयुक्त नहीं कही जा सकती। अज्ञतावश ऐसी बालिकायें गर्भ धारण करके कुछ रुग्ण और अल्पायु शिशुओंकी मातायें हो सकती हैं। अतएव रजोदर्शनके बाद ही विवाह करनेकी शीघ्रता करना ठीक नहीं है। अभिज्ञता द्वारा मालूम हुआ है कि, बालिकाओंके अंग १६ से लेकर १८ वर्ष तककी अवस्थामें पूर्णता प्राप्त करते हैं। अतएव यही समय विवाहके लिये उपयुक्त समझना चाहिये।

पुरुषके शरीर-यन्त्रादि सम्पूर्ण परिपुष्टता प्राप्त करते हैं, २५ से ३० वर्ष तककी अवस्थामें। हमारे धर्म-शास्त्रोंमें इसी मतका बराबर अनुमोदन किया गया है। जो पुरुष इसके पहलेही इन्द्रिय परिचालना आरम्भ करते हैं, उनका शरीर घुने हुए बांसकी अवस्था प्राप्त करता है। प्रकृति निपुण हाथोंसे उसे चाहे जितना सँवारनेकी चेष्टा करे, अपने वह सब व्यर्थ हो जाती है। शारीरिक अवस्था फिर किसी प्रकार नहीं सुधरती।

अपरिणत आयुमें जो बालिकायें गर्भ-धारण करती हैं, उनके देहयंत्रादिकी पुष्टि नहीं होती। इसका प्रधान कारण यह है, कि जो शक्ति उनके शरीरको मजबूत बनाती है, वही उनके गर्भस्थ भ्रूणके पुष्ट करनेमें लग जाती है। इसका परिणाम यह होता है, कि जननीके शरीरका यंत्र-समुदाय और अंग-प्रत्यंगादि परिपुष्टि लाभ नहीं करते और गर्भस्थ सन्तान भी रोग-ग्रस्त, दुर्बल और अल्पायु होतो है। यद्यपि कभी कभी ऐसे लड़कोंमेंसे दो एकको स्वस्थ और सबल होते देखा गया है, तथापि उनको भी पूर्ण यौवन प्राप्तिके पहले ही संसारसे विदा ग्रहण करनी पड़ती है।

इसके अतिरिक्त जननीके शारीरिक यंत्र आदिकी वृद्धि

इस प्रकार बाधा प्राप्त होकर उसकी श्री और सौन्दर्यको बिल्कुल नष्ट कर देती है। शरीर नाना प्रकारके रोगोंका आकर हो जाता है और "बीसा सो खीसा" की कहावत चरितार्थ करतीं हुईं वे संसारमें केवल अशान्ति ही उत्पन्न करती हैं। स्त्रियोंकी तरह ही जो पुरुष २५ वर्षकी अवस्था के पहले अतिशय इन्द्रिय सेवी होता है, वह भी उपर्युक्त कारणोंसे अकाल वार्द्धक्य प्राप्त कर, प्राकृतिक नियम भंग करनेका प्रायश्चित्त करता है।

जिस प्रकार स्त्री और पुरुषकी उपयुक्त अवस्थामें अर्थात् देह और देह यंत्रोंके सम्यक् पुष्ट हो जानेपर विवाह करना उचित है, वैसे ही स्त्री पुरुषकी वयस और सामञ्जस्यताकी ओर विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। सोलह वर्षकी बालिकाके साथ यदि साठ सालके बूढ़ेका व्याह हो तो उसका परिणाम कदापि कल्याण-जनक नहीं हो सकता। इस प्रकारके संयोगसे यदि संतान उत्पन्न हो, तो वृद्ध-वृक्षका फल जिस ढंगका होता है, वह संतान भी ठीक उसी ढंगकी होती है।

अतएव ऐसे विवाहको किसी प्रकार विवाह नहीं कहा जा सकता। बड़े दुःखकी बात है कि हमारे देशमें अबतक ऐसे असामञ्जस्य विवाह देखे जाते हैं। इस प्रकारके

विवाहोंका परिणाम क्या होता है, यह किसीसे छिपा नहीं है। ऐसे असामञ्जस्य-पूर्ण विवाहोंका होना—जाति, देश और समाजके लिये विशेष हानिकर है।

विवाहके समय स्त्री-पुरुषोंकी उम्रमें कमसे कम ६ वर्षका अन्तर होना सर्वथा उचित है। स्त्रीको अपेक्षा पुरुष यदि अन्ततः ६ वर्ष भी बड़ा न हो, तो इच्छानुसार सन्तान-प्राप्ति नहीं हो सकती। प्रत्येक स्त्रीको यह बात :विशेष रूपसे समझ लेना चाहिये, कि पूर्ण सोलह वर्षके पहले उसे किसी प्रकार स्वामीके साथ सहवास करना उचित नहीं है। उपयुक्त नहीं है। और दूसरी ओर पुरुषोंको भी पच्चीस वर्षके पहले पत्नीमें उपनत होना निषिद्ध है। यदि हम लोग अपने समाजको फिर इस नियमसे सुसंघटित कर सकें—यदि फिर हमलोग अपने लड़के लड़कियोंको पवित्र ब्रह्मचर्यकी शिक्षा दे सकें, तो देश फिर दीर्घायु, श्री सम्पन्न, बलवान्, और सर्व कर्म-पटु नरनारियोंसे पूर्ण हो सकता है। जबतक हमलोग अब्रह्मचर्यशील रहेंगे, तब तक किसी साधनमें सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकेंगे। संसार कभी सुख शान्तिसे पूर्ण नहीं हो सकेगा, विवाह करके भी मनुष्य सुख नहीं पा सकेगा, उसे केवल हाहाकार और दुःखही नसीब होगा।

विवाह-व्यवस्था धर्मशास्त्रों और वैद्यक ग्रन्थोंके मतानुसार ही होनी चाहिये। हमारे समाजमें अबतक गर्भस्थ बच्चोंका भी विवाह हो जाता है! २।३ वर्षके लड़के लड़कियोंके व्याह तो बहुत बड़ी संख्यामें होते हैं। अधिकसे अधिक पुरुषोंका १४ से १८ वर्षतक और लड़कियोंका १० से १४ तकका व्याह उच्च कोटिके शिक्षित पुरुषोंमें भी प्रचलित है! और इसीको वे लोग बहुत समझते हैं। कुछ लोग बाल विवाहके पक्षमें यह युक्ति भी दिया करते हैं कि "ससुरालमें ही कन्याको अपना सम्पूर्ण भावी जीवन अतिवाहित करना है, अतएव यदि लड़कपनसे ही वह ससुरालमें रहेगी तो उन लोगोंके साथ बिल्कुल हिलमिल जायगी," परन्तु हमारी मोटी बुद्धि इस युक्तिकी सारवत्ताको उपलब्ध करनेमें सर्वथा असमर्थ है।

सोचनेकी बात है, कि जब कन्या वयस्का हो जायगी, पिताके घरमें उसे उपयुक्त शिक्षा मिल जायगी, देह और मनका यथेष्ट विकाश हो चुका होगा, उस समय यदि वह ससुरालमें जाय, तो अधिक मन-मिलनकी सम्भावना है अथवा उस अवस्थामें, जब कि वह बहुत छोटी होती है और जब उसे धोती पहिननेका भी शऊर नहीं होता। दूसरी बात विचारणीय यह हैं कि क्या माता-पिता कन्याको

गार्हस्थ्य धर्मकी शिक्षा नहीं दे सकते ? तीसरी बात यह प्रष्टव्य है, कि कितने घरोंमें बालिका बधुओंको ऐसा सुयोग और सुअवसर प्राप्त होता है ? चौथी बात यह है, कि विवाहके बाद बालिका-बधू और बालक-बरको भी तो "सुहाग रात" मनानी पड़ती है और कभी कभी वैसे भी सहवास करनेका मौका दिया जाता है। हृदयपर हाथ रखकर जरा बतलाइये, कि वह अवस्था कैसी भीषण होगी ? लड़कोंको उसी समयसे इन्द्रिय-जनित सुखानु-भूति मिल जायगी और इसके बाद वे उसी ओर ढुलक पड़ेंगे। इसी प्रकारके अनेक कारणोंसे बाल-विवाह और किशोर विवाह सर्वथा त्याज्य हैं। यदि किसी जमा-नेमें ऐसा होता भी रहा हो, तो भी आजकल वह व्यवस्था सर्वथा बदलने योग्य हो गई हैं। शास्त्रकारोंने मनुष्योंको मानुषी विवेक-बुद्धिसे काम लेनेकी आज्ञा दी है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है :—

केवलं शास्त्र माश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः।
युक्ति हीन विचारेतु धर्म हानिः प्रजायते॥

अर्थात् केवल शास्त्रोंका ही आश्रय करके कर्त्तव्यका निर्णय न करना चाहिये। युक्ति हीन निर्णय करनेसे धर्मकी हानि हो जाती है। इस लिये वर्त्तमान समयमें

बाल विवाहकी प्रथा—यदि वह शास्त्र सम्मत हो तब भी बदली जा सकती है।

जो :अपरिणामदर्शी या अपरिणत युवक और युवती अदम्य इन्द्रिय-लालसाकी परितृप्तिके लिये उपयुक्त समयके पहले विवाह करते हैं, उनका सुख-स्वप्न दो दिन बीतते न बीतते भंग हो जाता है। जिस ब्रह्मचर्यके मधुमय फलसे वे लोग मेधा, धैर्य, शारीरिक द्रढ़ता और अन्यान्य शक्तियां प्राप्त कर सकते, उससे वे लोग सदाके लिये वंचित होकर जीवन-संग्राममें अभिभूत हो जाते हैं। मूर्ख मल्लाहके हाथोंमें नौकाका भार रहनेसे तूफ़ानके समय जो अवस्था आरोहियोंकी होती है, युवकों या युवतियोंकी अविवेचनाके फलसे उनके देह-यन्त्रादिकी भी वही दशा होती है। इस समय मनुष्य यदि सावधान न हो जाय, तो उसे दुःख पाना ही होगा, कोई उसे उस दुःखसे बचा न सकेगा। सुख साधनाकी सामग्री है। यदि संसारमें अनन्त सुखोंके अधिकारी होनेकी इच्छा हो, तो उसके लिये थोड़ी या बहुत साधना करना सभीके लिये उचित है। यह साधना बिल्कुल कष्टसाध्य नहीं है। केवल अभ्यासका प्रयोजन :है। संयमके अभ्याससे जिनका बाल्यकाल गठित होता है, इस साधनामें उन्हें बिल्कुल कष्ट

नहीं प्राप्त होता। इस पृथिवीमें वे ही यथार्थ सुखी होते हैं।

आजकल हमारे देशसे पात्री निर्वाचन प्रथा बिल्कुल उठ गई है। आजकल तो दहेजका युग है। योग्य और अयोग्यका विचार बिल्कुल लुप्त हो गया है। कन्याके पिता की तिजोरी या केश बोक्स की ओर वर पक्षके लोगोंकी नज़र रहती है। किसी किसी समाजमें "कुल" का भी विचार होता है। लड़की और लड़के की एकाध सालकी छोटाई बड़ाई कुछ गिनी ही नहीं जाती। जहाँ विचार यह होना चाहिये, कि लड़के की आयु लड़कीकी आयुसे ड्योढ़ी हो, वहाँ आजकल यह सुननेको मिलता है, कि यदि लड़की की उम्र लड़केकी उम्रसे एक साल ज्यादा है, तो कोई हर्जकी बात नहीं है! किमाश्चर्य मतः परम्।

परन्तु पुराने ज़मानेमें इन सब बातोंका विशेष विचार होता था। अफ़सोसकी बात तो यह है, कि मनुष्य ज्यों ज्यों अधिक अपनेको सभ्य कहता जाता है, उतना ही इस ओरसे लापरवाह होता जाता है। पुराने जमानेमें स्त्रियाँ चार श्रेणीमें विभक्त थीं और पुरुष भी चार ही श्रेणियोंमें बँटे थे। विवाहके समय वर कन्याकी श्रेणी, गुण अवगुण, शारीरिक स्वास्थ्य, सामुद्रिक चिन्ह आदि बातोंपर विचार

किया जाता था। अब भी उसी प्रकार विचार करनेकी आवश्यकता है। प्राचीन ऋषियोंने कन्या निर्वाचनके सम्बन्धमें विशेष सावधान होनेको लिखा है। उन्होंने विवाहके समय निम्न लिखित बातोंपर विशेष ध्यान रखनेकी आज्ञा दी है।

वंशानुगत कोई व्याधि है या नहीं, इस सम्बन्धमें पहले से ही अनुसन्धान करना चाहिये। यक्ष्मा, कुष्ठ, श्वास, अर्श-उन्माद, प्रभृति रोग वंशानुक्रमसे कई पुश्ततक चलते रहते हैं। इस प्रकारकी व्याधि-विशिष्ट किसी पुरुषको उचित नहीं है, कि अपनी लौकिक व्याधि छिपाकर अपनी कन्या या पुत्रका व्याह करे। इसका परिणाम कभी शुभ नहीं हो सकता। यह तो संसारमें व्याधिके बीजोंको बिखरा देना है। इससे केवल एकही परिवारकी क्षति नहीं होती, बल्कि इससे समाजका भी विशेष अनिष्ट होता है। हमारे शास्त्रोंमें लिखा है, कि जो इस प्रकारकी व्याधिको छिपाकर अपनी कन्या या पुत्रका विवाह करता है, वह अनन्त काल तक कुम्भीपाक नरकमें सड़ता रहता है। अतएव इस प्रकार पुत्र कन्याका व्याह करना किसीको उचित नहीं है। मनु स्मृतिमें इस सम्बन्धमें यह लिखा हुआ है—

हीन क्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोम शार्शसम्।
क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वित्रि कुष्ठि कुलानि च ॥

अर्थात् क्रिया-हीन, (जात कर्मादि संस्कार रहित) कन्याओंका उत्पादक, वेदके पठन पाठनसे रहित (अर्थात् मूर्ख) लम्बे लम्बे अधिक रोमवाला, अर्श (बवासीर) रोगी, क्षय (राजयक्ष्मा) मन्दाग्नि, मृगी, श्वेत दाग और कुष्ठ रोगी जिस कुलमें हो, उसकुलकी लड़कीके साथ व्याह न करे।

आजकल हिस्टीरिया नामक व्याधि अधिकांश स्त्रियोंमें पाई जाती है। यदि इनकी संख्या प्रति शत ८० भी कही जाय तो अनुचित न होगा। यह व्याधि कौलिक अर्थात् वंशानुगत हो गई है। यदि मातामें यह व्याधि होगी, तो कन्यामें भी इसका वर्त्तना सम्भव है। इसके अतिरिक्त इस प्रकारकी रोगग्रस्ता स्त्रीकी सन्तान प्रायः धीर, बुद्धिविशिष्ट और निरोग नहीं होती। अतएव ऐसी स्त्रियोंसे विवाह करना उचित नहीं है। इस प्रकारकी रोग-पीड़ित स्त्रियोंको व्याह कर घरमें लानेसे परिवारकी शान्ति और सुख नष्ट हो जाता है। विवाहका परिणाम दुःखमय हो जाता है।

दीर्घायतन और बलवान् पुरुषको कभी क्षुद्रायतन और

कमजोर स्त्रीसे व्याह न करना चाहिये। इस प्रकारके मिलनके फलसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह प्रायः स्वल्प-जीवी होती है। इसके अतिरिक्त गर्भ-धारण और प्रसवके समय ऐसी स्त्रियोंके जीवनकी विशेष आशंका रहती है। पूर्णायतन सम्पन्ना, उपयुक्त दैर्घ्य विशिष्ट स्त्री ही विवाह करनेके लिये उपयुक्त है।

पत्नी निर्वाचनके समय पात्रीकी शिक्षाकी ओर भी ध्यान रखना आवश्यक है। विश्व विद्यालयके सर्वोच्च उपाधि धारी पुरुषसे एक ज्ञान-हीन रमणी का सम्मिलन एकदम वाञ्छनीय नहीं है। इसी प्रकार एक उच्च-शिक्षिता रमणीके साथ वर्ण-ज्ञान विहीन पुरुषका विवाह भी सुखका हेतु नहीं हो सकता।

जो स्त्री स्वभावतः अलस प्रकृतिकी है, उससे भी विवाह करना उचित नहीं है। आलस्य परायणा नारी परिवारमें घोर अशान्ति उत्पन्न कर देती है। इस प्रकारकी स्त्री कभी सुगृहिणी नहीं हो सकती।

स्वगोत्र और स्ववर्णमें भी विवाह न करना चाहिये। जिन समाजोंमें यह नियम प्रचलित है, वहाँसे भी यह क्रमशः लुप्त होता जा रहा है। हमारे महर्षियोंने अपनी अभिज्ञताके फलसे जान लिया था, कि इस प्रकारके विवाहोंमें स्त्री-

पुरुष किसी प्रकार सुखी नहीं हो सकते। जिन स्त्रियोंके धर्मानुराग नहीं है, जो स्त्री माता और पिताके प्रति भक्तिमती नहीं है, जो नारी कलहप्रिया और अहंकृता है, जो नारी शिशुओंसे प्रेम नहीं रखती, जो नारी अलंकार (गहना) और परिच्छदो (कपड़ो-लत्तों) के प्रति विशेष अनुरक्त है, जो नारी नृत्य गीत और आमोद-आह्लादमें सर्वदा व्यस्त रहती है, उस स्त्रीसे पुरुषोंको कभी व्याह करना उचित नहीं। ऐसी स्त्रियोंके परिवारमें पदार्पण करते ही—समस्त परिवार अशान्तिकी ज्वालासे धक धक करके जल उठता है। परिवारकी सम्पूर्ण सुख-शान्ति सदाके लिये मिट जाती है। यह तो अनेक ऋषियोंकी सम्मिलित सम्मति है और कन्याके मूल दोषोंपर पूर्ण प्रकाश डालती है। अब मनुजीकी और कामसूत्र प्रणेता वात्स्यायनमुनिकी सम्मति सुनिये। मनुजी कहते हैं—

नोद्वहेत् कपिला कन्यां नाधिकांगीं न रोगिणीम्।
नालोमिकां नातिलोमां न वाचाटां न पिंगलाम्॥

जिस कन्याके बाल भूरे हों, जो अधिकांगी हो, जो सदा बीमार रहा करे, जिसके शरीरमें रोम न हों या बहुत हों, जो बहुत बोलनेवाली हो और जिसकी आँखें पीली हों, उसके साथ व्याह न करे।

नर्क्ष वृक्ष नदी नाम्नीं नान्त्य पर्वत नामिकाम् ।
न पक्ष्यहि प्रेष्य नाम्नीं नच भीषण नामिकाम् ॥

नक्षत्र, वृक्ष, नदी, :म्लेच्छ, पहाड़, पक्षी, सांप और दासीके नाम पर जिसका नाम हो, उससे तथा भयानक नामवाली कन्यासे व्याह न करे। वात्स्यायनकी राय है :—

"सुप्तां रुदतीं निष्क्रान्तां वरणे परिवर्ज्जयेत्। अप्रशस्त नामधेयाञ्च गुप्तां दत्तां घोनां पृषतामृषभां विनतां विकटां विमुण्डां शुचिदूषितां सांकरिकी राकां फलिनीं मित्रां स्वनुजां वर्षकरींच वर्ज्जयेत्।"

अर्थात् सोती हुई, रोती हुई और गृह-त्यागिनीसे विवाह न करना चाहिये। अप्रशस्त नामवाली, (जिसका नाम सुन्दर न हो) गुप्ता, (जिसे देखा न गया हो) दत्ता (जिसके व्याह बातचीत दूसरे वरके साथ हो रही हो, घोना (कपिला) पृषता—शुक्ल विन्दुयुक्ता, ऋषभा—पुरुषाकृति सम्पन्ना, विनता—जिसके कन्धे झुके हुए हों, विकटा-जिसकी जंघायें असंहत हों, विमुण्डा—बड़े शिरवाली, शुचि दूषिता—जिसने मृत पिताके मुखमें अग्नि प्रदान किया हो, सांकरिकी-पर पुरुष-दूषिता, फलिनी—गुंगी, मित्रा—मित्र कहकर जो पहले ग्रहणकी जा चुकी हो, स्वनुजा

—जो अपनेसे बहुत छोटी हो, और वर्षकरी—अर्थात् जिसके हाथ पैर पसीजते हों, ऐसी कन्याओंसे विवाह न करना चाहिये ।

नक्षत्राख्यां नदी नाम्नीं वृक्ष नाम्नीञ्च गर्हिताम् ।
लकार रेफोपान्ताञ्च वरणे परिवर्ज्जयेत् ॥

नक्षत्र नामवाली जैसे,—श्रवणा, विशाखा, अश्विनी इत्यादि, नदीनामवाली जैसे,—गंगा, यमुना सरस्वती इत्यादि, वृक्षनामवाली जैसे—जम्बु, मालती इत्यादि, और जिसके नामका उपान्त्य (अन्त्यके समीप) का वर्ण रकार और लकार इत्यादि हो, इस प्रकारकी कन्यायें बहुत निन्दनीय होती हैं। वरण-विषयमें इनका परित्याग करना चाहिये। इसी प्रकार अन्य भी बहुतसे देशी विदेशी पुरुषोंकी सम्मतियां उद्धृत की जा सकती हैं, परन्तु यहांपर उनकी आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। इससे निरस्त होना ही हम श्रेयस्कर समझते हैं। कैसी कन्याओंसे व्याह करना चाहिये, इसपर मनुजीकी राय है—

अव्यांगाङ्गी सौमनाम्नीं हंस वारण गामिनीम् ।
तनुलोम केश :दशनां :मृद्वंगी मुद्वहेत्स्त्रियम् ॥

जिसका कोई :अंग बिगड़ा न हो, (अर्थात् जिसको

शारीरिक गठन सुडौल हो) सुखसे उच्चारण करने लायक जिसका नाम हो, हंस या हाथीकी सी मन्दगति वाली हो, सूक्ष्म रोम, केश और छोटे दातोंवाली और कोमलांगी हो, उससे व्याह करे। कामसूत्र प्रणेता लिखते हैं :—

"तस्मात् कन्यामभिजनोपेतां माता पितृमतीं त्रिवर्षात् प्रभृति न्यून वयसं श्लाघ्याचारे धनवति पक्षवति कुलेसम्बन्धि प्रिये सम्बन्धि भिराकुले प्रसूतां प्रभूत मातापितृपक्षां रूपशील लक्षण सम्पन्ना मन्यूनाधिका विनष्ट दन्त नखकर्ण केशाक्षि-स्तनीमरोगि प्रकृति शरीरां तथाविध एव श्रुतवान् शीलयेत् ॥"

इसका तात्पर्य संक्षेपमें यह है, कि जो कन्या अभिजनो पेत है, माता पिताके प्रति भक्तिमती है, जो अपनी उम्र से कमसे कम तीनवर्ष छोटी है, जिसका आचार श्लाघ्य है, जिसका कुल उत्तम और महान् है, जिसके माता पिता प्रभृति जीवित हैं, जिसका वंश प्रतिष्ठित और प्रशंशित है, जो रूप, शील इत्यादि लक्षणोंसे युक्त है, जिसकी आंख, कान, नाक, दांत-केश प्रभृति सुन्दर हैं और जिसका शरीर रोगप्रकृति-सम्पन्न नहीं है, ऐसी कन्याके साथ ऐसे ही गुण वाले पुरुषका विवाह सम्बन्ध होना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिने जहाँ कन्याके सम्बन्धमें निर्णय किया है, वहाँ पुरुषोंके सम्बन्धमें भी निर्णय:कर दिया है। इतना सुन्दर निर्णय इतने अच्छे ढंगसे शायद और कोई नहीं कर सका। उन्होंने उपर्युक्त सूत्रमें स्पष्ट कह दिया है, कि कन्या और वरके गुणोंपर समान रूपसे विचार करना चाहिये। दोनोंके गुण बराबर ही होने चाहिये। जिससे व्याहका प्रकृत अभिप्राय सिद्ध हो सके। घोटक-मुख नामक एक आचार्यने लिखा है—

यां गृहीत्वा कृतिन मात्मान मन्येत्। न च समानै-र्निन्द्येत। तस्यां प्रवृत्तिः।

अर्थात् जिसे ग्रहण करके पुरुष अपनेको कृती समझे और अपनी बराबरीवालों द्वारा निन्दित न हो, ऐसी कन्याके साथ व्याह करना चाहिये। किसी किसी आचार्यकी राय थी कि यह सब झंझट है, अतएव—

यस्यां मनश्चक्षुषोर्निबंधस्तस्यामृद्धिः। नेतरामाद्रियेत।

जिसके दर्शनसे मन और नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं, उसी कन्यासे विवाह करना चाहिये। उसे पत्नी रूपमें ग्रहण करनेसे धर्म, अर्थ और कामकी प्राप्ति अवश्य होती है। दूसरी कन्या यदि अन्यान्य गुणावलीसे बिभूषिता हो, तब भी उसका परिहार करना चाहिये।

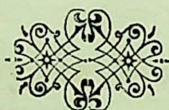
इन आचार्योंके बाद किसी भारतीय पण्डितने इतनी उत्तमताके साथ इस विषय पर विचार नहीं किया है, इसीलिये हमने इनके मतोंका उद्धरण किया है। पाश्चात्य-पण्डितोंकी विचारावली उत्तम, पूर्ण संगत, तर्कपूर्ण और आधुनिक होनेपर भी हमारे समाजको सर्वथा ग्राह्य नहीं है। हमारे समाज और युरोपियन समाजमें बहुत बड़ा अन्तर है। हम प्रत्येक कार्यको धर्मकी दृष्टिसे करनेको बाध्य हैं। अवश्य ही यह भी हमारे हितके ही लिये है। और उनलोगोंमें इस प्रकारकी कोई बाध्य बाधकता नहीं है। अतएव आदर्शमें बहुत अन्तर है। इस लिये हम लोगोंको इन बातोंपर अपने ही ढंगसे विचार करना उचित प्रतीत होता है। विशेषतः वात्सायन, मनु या अन्य आचार्योंने विवाहके सम्बन्धमें जो निर्णय किया है, वह आज भी उसी :प्रकार फलप्रद है, जैसे प्राचीन कालमें था। पाश्चात्य-पण्डितोंका मत भी—बहुत कुछ उपर्युक्त मतोंके ही अनुकूल है।

दुःखकी बात है कि, आजकल हमारे समाजमें नये और पुराने सभी प्रकारके मतोंका तिरस्कार हो रहा है। दहेजके बलपर व्याहका निर्णय होता है—कन्या चाहे रोगिनी हो, कुष्ठी हो अथवा अन्य किन्हीं दुर्गुणोंसे युक्त हो और

श्री वर भी चाहे जैसा हो। यह अवस्था हानिकारक है। इससे विवाहका उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता। अभिभावकों और गुरुजनोंको चाहिये, कि यदि वे "हस्तिनी, शंखिनी, और चित्रिणी" या "शशक, मृग, वृष, एवम् अश्व" इत्यादि भेदोंकी उपेक्षा करें, तो कमसे कम वर और कन्याके अन्यान्य लक्षणोंपर तो ध्यान दें। यदि वे लड़के लड़कियोंकी सम्मति लेना उचित नहीं समझते और अपनी शुभैषणाके बलपर इस अधिकारको अपने हाथोंमें रखना चाहते हैं, तो कमसे कम ऐसी व्यवस्था अवश्य कर दें, जिससे दम्पतिका जीवन सुख-मय हो। जिससे वे देशके प्रति, समाजके प्रति, धर्मके प्रति और स्वयं उनके प्रति अपने कर्त्तव्यका पालन उचित प्रकारसे कर सकें। वयसके तारतम्यसे, गुणोंकी दृष्टिसे विवाह करना चाहिये। रुपयेके लोभसे नहीं। जिससे वैवाहिकोंका जीवन सुखी हो, आनन्दकी सृष्टि हो, सुख और शान्तिकी प्रतिष्ठा हो, वही करना चाहिये। तभी विवाहका सच्चा उद्देश्य सिद्ध होगा, तभी कल्याण की सृष्टि होगी।

विवाह करते समय प्रत्येक मनुष्यको उपर्युक्त बातों पर सुतीक्ष्ण दृष्टि रखना उचित है। अच्छी प्रकार विवेचना किये विना विवाह कभी सुख-पूर्ण नहीं हो

सकता। हम पहले ही कह चुके हैं, कि विवाह संस्कार द्वारा नर-नारियोंका जो मिलन होता है, वह जड़ देहका मिलन नहीं है, आत्माके साथ आत्माका सम्मेलन है। दो देहोंमें एकताका साधन और आत्माके मिलनका ही नाम व्याह है। इसीलिये व्याहके पहले खूब सोच विचार कर, विशद विवेचना करके, अच्छी तरह देख सुन करके तब व्याह करना चाहिये। हम बल-पूर्वक कहते हैं, कि जो इस प्रकार सोच विचार करके विवाह करते हैं और वैवाहिक कर्त्तव्योंका पालन भली भांति करते हैं, उनका विवाह सम्बन्ध कभी दुःखमय नहीं हो सकता। वे लोग इच्छानुकूल स्वस्थ और सबल पुत्र कन्याके जनक जननी होकर संसारमें दीर्घ जीवन लाभ करके, परिपूर्ण सुख और शान्तिका भोग करते हैं। अतएव इस ओर यथेष्ट ध्यान देना प्रत्येक मनुष्यका आवश्यक कर्त्तव्य है।



१३

विवाहका आयोजन

माता पिता या मित्रोंके प्रयत्नसे जो विधिवत् विवाह होता है, उसके सम्बन्धमें अनेक जानने योग्य बातें पिछले अध्यायमें बतलायी जा चुकी हैं। परन्तु संसारमें अनेक मनुष्य—स्त्री और पुरुष—ऐसे भी होते हैं, जिनका विवाह किसी कारणसे सहजमें नहीं होता। अनेक पुरुष ऐसे होते हैं, जिन्हें कोई अपनी लड़की नहीं देता और अनेक स्त्रियाँ—लड़कियाँ ऐसी होती हैं, जिनके साथ विवाह करनेको कोई राजी नहीं होता। ऐसे स्त्री और पुरुषोंको अपने विवाहके लिये स्वयं चेष्टा करनी पड़ती है और विवाहके

लिये किसी पात्र पात्रीको राजी करना पड़ता है। राजी ही क्यों, कभी कभी तो फँसाना पड़ता है। यदि अविवाहित जीवन निन्दनीय है और संसारमें प्रत्येक मनुष्यका विवाहित होना आवश्यक है, तो स्त्री पुरुषोंकी यह चेष्टा बुरी नहीं कही जा सकती। भूतलके प्रायः समस्त देशोंमें इस प्रथाका थोड़ा बहुत प्रचार है। हिन्दू शास्त्रानुसार तो विवाह मानव-जीवनका एक प्रधान संस्कार है। जो मनुष्य विवाह नहीं करता वह पितृऋणसे मुक्त नहीं होता। समाजमें भी अविवाहित मनुष्यको ऊँचा स्थान नहीं मिलता। लोग उसे कुछ हीन दृष्टिसे देखते हैं और कभी कभी उसकी निन्दा भी करते हैं। स्वयं अविवाहित मनुष्यको भी अपना जीवन अपूर्ण और भाररूप मालूम होता है। इन बातोंसे विवाहकी महिमा जानी जा सकती है और उसकी उपयोगिता स्वीकार की जा सकती है। और इसीलिये यह कहा जा सकता है, कि यदि आसानीसे विवाह न हो, तो अपने लिये उपयुक्त पात्र पात्री खोजकर, उसे विवाहके लिये राजी करना कोई पाप नहीं है।

अनेक बार धनहीन व्यक्तियोंका विवाह, गुणशील और अभिजनादिसे युक्त होने पर भी, इसलिये नहीं होता,

कि वे दरिद्र होते हैं। अनेक बार रूप गुण और शील आदि होनेपर भी अभिजन न होनेके कारण लोगोंका विवाह नहीं होता। लोग कहते हैं, कि कोई उसके 'आगे पीछे' नहीं है। अनेकबार धनवान और गुणवान होने पर भी लोगोंका इसलिये विवाह नहीं :होता, कि वे कन्यावालोंके पड़ोसमें अथवा बहुत निकटमें रहते हैं। लोग समझते हैं कि 'माथेपर' विवाह करनेसे रोज लड़ाई लगी रहेगी और आपसमें अनबन होगी। कभी कभी किसीका विवाह इसलिये भी नहीं होता, कि वह अपने मातापिता और भाई बन्धुओंके हाथ नीचे बेतरह दबा होता है। लोग समझते हैं, कि ऐसे मनुष्यके साथ विवाह करने पर हमारी कन्याको सदा परतन्त्र रहना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त किसी दुर्गुण, किसी अभाव, किसी त्रुटि या किसी अन्य कारणसे भी अनेकबार कन्याके माता पिता और बन्धुबान्धव किसी पुरुषके साथ अपनी कन्याका विवाह नहीं करते। ऐसी अवस्थामें, यदि कोई कन्या विवाहके लिये उपयुक्त प्रतीत हो और यह मालूम हो, कि इसके साथ विवाह करनेमें कोई दोष नहीं है एवं इससे विवाह करनेपर जीवन सुखी हो सकेगा, तो उसे हस्तगत करनेको चेष्टा करना अनुचित नहीं है।

यद्यपि हम बाल विवाहके समर्थक नहीं है, न हम यही

मानते हैं, कि बच्चोंमें अपने लिये उपयुक्त पात्र पसन्द करनेकी बुद्धि होती है, तथापि संसारमें यह प्रायः दिखाई देता है, कि बच्चे जिस समय किशोरावस्थामें पदार्पण करते हैं और उनके हृदयमें विवाहकी भावना जाग्रत होती है, उसी समय अनेकका हृदय किसी खास व्यक्ति पर अनुरक्त हो जाता है और वे उसे हस्तगत कर—उसके साथ विवाह कर अपने जीवनको सुखी बनानेका स्वप्न देखने लगते हैं। अनेक बार तो ऐसा होता है, कि नवयुवक ऐसी प्रतिज्ञायें कर बैठते हैं, कि विवाह करेंगे तो इसीके साथ करेंगे, अन्यथा आजन्म अविवाहित रहेंगे। यह भी देखा गया है, कि अपनी चेष्टामें कृतकार्य न होनेके कारण बहुतोंने कष्ट सहते हुए अपना जीवन बिता दिया है और किसीके साथ फिर विवाह नहीं किया। कहनेका तात्पर्य यह है, कि अनेक मनुष्य बचपनसे ही किसीके प्रेम जालमें उलझ जाते है और उसे हस्तगत करनेकी चेष्टा करते हैं। यह भी देखा गया है, कि बचपनमें जो लड़के लड़कियाँ निर्दोष भावसे एक साथ खेलते थे, उनके हृदयमें दाम्पत्य-प्रेमका अंकुर फूट निकला है और वे एक दूसरेके साथ विवाह करनेके लिये व्याकुल हो उठे हैं। सभ्यताकी दृष्टिसे बच्चोंका ऐसे प्रेममें पड़ना या किसीको हस्तगत करनेकी चेष्टा करना निन्दनीय माना

जाता है, परन्तु लीलामयकी लीला, मानव हृदयकी दुर्बलता और स्वाभाविक दोषके कारण, जिस प्रकार संसारमें अनेक अवाञ्छनीय या अवाञ्छनीय माने जानेवाले कार्य होते हैं, उसी प्रकार बच्चोंका दिल भी प्रेम जालमें उलझ जाता है और वे किसी खास व्यक्तिके साथ विवाह करनेकी ठान लेते हैं।

कभी कभी ऐसा भी होता है, कि जो लड़के मातृ पितृ हीन होते हैं और कोई नाते रिश्तेदार या किसी दूसरेके आश्रयमें रहते हैं, वे अपने आश्रयदाता या उसके अड़ोस पड़ोसकी लड़कियोंको अपने प्रेममें उलझा लेते हैं और इस प्रकार मातृपितृ हीन होने पर भी कभी कभी वे पत्नीके अतिरिक्त विपुल धन सम्पत्ति और ऐश्वर्यके भी अधिकारी बन बैठते हैं।

इस प्रकार किसी स्त्रीको हस्तगत करनेके लिये बालक और युवाओंको किन उपायोंका अवलम्बन करना चाहिये यह वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रके कई परिच्छेदोंमें विस्तार पूर्वक अंकित किया है। उन्होंने लिखा हैं, कि बालकों और युवाओंकी यह प्रेम-लीला खेल कूद और नाना प्रकारकी क्रीड़ाओंसे आरम्भ होती है। भारतमें ऐसे अनेक खेल प्रचलित हैं, जो बच्चे बाल्यावस्थामें खेलते हैं।

वात्स्यायन मुनिने लिखा है, कि बालकोंको अपनी प्रेमिका और उसकी सखियोंके साथ ऐसे खेलोंमें सम्मिलित होकर प्रेमिकासे घनिष्टता स्थापित करना चाहिये। युवकोंके लिये उन्होंने लिखा है, कि कन्याके निकट जो स्त्री बहुत ही विश्वस्त हो, उसके साथ पहले उन्हें अविछिन्न प्रीति करना चाहिये। इसके अतिरिक्त यह भी देखते रहना चाहिये, कि किस किससे उसे इस कार्यमें सहायता मिल सकती है। धात्रीकन्या इस कार्यमें बहुत उपयोगी हो पड़ती है अतः जहांतक हो सके, उसे अपने हाथमें कर लेना चाहिये। वह चाहे तो सब कुछ कर सकती है। वह नायिकाको नायकके गुणगान सुनासुना कर उसे उसपर अनुरक्त कर देती है। यदि :कोई नायिका नायक पर अनुरक्त हो गयी, तो फिर उन दोनोंके मिलनमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती।

नायकको चाहिये, कि नायिकाके हृदयमें अनुराग उत्पन्न कर, नायिकाके मनोभावका निरीक्षण करता रहे। नायिकाको अनुरक्त करनेके लिये, उसे उसके शौककी चीजें उपहार देना बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। तरह तरहके खिलौने, चित्र, छोटे छोटे पात्र, बाजे, सुगन्धित द्रव्य आदि मनोहर और उपयोगी पदार्थ उपहारके लिये पसन्द किये जा सकते हैं। यदि नायिकाको यह चीजें देनेकी सुविधा न हो, तो

उसे केवल ऐसी चीजें दिखाकर या उनका जिक्र करके प्रलोभन देना चाहिये। उससे यह भी कहते रहना चाहिये, कि यह चीजें अमुक आदमी या अमुक स्त्री मागती थी, परन्तु उसे हमने नहीं दीं। इसके फल स्वरूप नायिकाके हृदयमें अनुराग उत्पन्न होगा और वह समझेगी, कि नायक मुझे बहुत चाहता है।

कहना व्यर्थ है, कि यह सब कार्य धात्री कन्या या किसी विश्वस्त स्त्रीके द्वारा ही होना चाहिये। परन्तु जब कन्याके हृदयमें अनुराग उत्पन्न हो जाय, तब उससे एकान्त में मिलनेकी चेष्टा करनी चाहिये और यदि मिलाप हो जाय, तो उसके निकट अपनी आन्तरिक इच्छा प्रकट करनी चाहिये। नायिकाके साथ प्रत्यक्ष परिचय या भेट हो जानेके बाद यह आवश्यक है, कि उसका ध्यान विशेष रूपसे अपनी ओर :आकर्षित किया जाय और इसका सरल उपाय यह है, कि नायिकाको जो बातें प्रिय हों या जिन बातोंपर उसकी विशेष रुचि हो, वही बातें उसे कर दिखाई जांय। यदि नायिकाको कौतूहल और विस्मयजनक बातें अच्छी लगती हों, तो उसे इन्द्रजालके प्रयोग दिखाने चाहिये। यदि वह कलाकौशलकी अनुरागिनी हो, तो उसे कलाकौशल दिखाना चाहिये, यदि उसे संगीतका शौक हो, तो उसका

आयोजन करना चाहिये और किसी दूसरी बात पर रुचि हो, तो उसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। खास खास त्योहारों पर नायिकाको वस्त्राभूषण भी भेट दिये जा सकते हैं, परन्तु यदि इससे किसी प्रकारका अनिष्ट होनेकी संभावना हो, तो यह कार्य कदापि न करना चाहिये। इन कार्योंसे नायिकाका ध्यान नायककी ओर विशेष रूपसे आकर्षित होता है और वह नायक पर अनुरक्त हो जाती है।

धात्री कन्या ऐसे अवसरों पर कन्याको चौसठ कलाओंकी शिक्षा देती है और उनके साथ साथ अपने अनुभव की बातें बतला कर यह भी बतलाती है, कि इस संसारमें किस तरह स्त्री और पुरुषके दो भिन्न भिन्न हृदय एक होते हैं और किस प्रकार विवाह सूत्रमें आबद्ध होकर मनुष्य सुख और आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं। धात्रीकन्या या विश्वस्त स्त्रीके मुँहसे यह बातें सुनकर नायिकाका हृदय यह सुख उपभोग करनेके लिये लालायित हो उठता है और वह नायकके प्रति अनुराग दिखाने लगती है।

नायिकाके हृदयका अनुराग—उसकी बातचीत, उसके कार्य और उसके इशारों परसे जाना जा सकता है। वह नायकसे आँख नहीं मिला सकती। यदि नायक सामने

पड़ जाता है, तो उसकी आँखें लज्जासे नीचे झुक जाती हैं। अपने ऊपरी अंगोंको बारंबार ढकनेकी चेष्टा करती है। नायकको अंगोंको सुप्तावस्थामें, एकान्तमें और जब वह दूर होता है तब देखती रहती है। कोई बात पूछनेपर कुछ हँसकर अस्फुष्ट शब्दोंमें उत्तर देती है। नायकके निकट अधिक समय तक रहना उसे अच्छा मालूम होता है। नायक दूर होनेपर अपने परिजनोंसे बातें करते समय उसके मनमें यह भाव रहता है, कि नायक मुझे देखे। जब तक नायक निकट रहता है, तब तक कहीं जानेकी इच्छा नहीं करती। जरा जरासी बातमें खूब हँसती है। नायकको अधिक देरतक रोक रखनेके लिये बातें बढ़ा देती है। गोदीमें किसी बच्चेको लेकर उसे खूब आलिङ्गन और चुम्बन करती है। नायकको देखकर परिचारिकाके तिलक करती है। परिजनोंको आश्रय कर इसी प्रकारकी अन्यान्य लीलायें दिखाती है। नायकके परिचारकके साथ बड़े प्रेमसे बातें करती है। नायकके मित्रोंपर बड़ा प्रेम और विश्वास रखती है। उनकी बात सुनती और मानती है। नायकके परिचारकको नायकही की तरह अपना काम सौंपती है। धात्री कन्याके कहनेसे नायकके घर जाती है और उसे बीचमें रखकर उससे बातचीत भी करती है।

यदि वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित नहीं होती, तो नायककी नजरोंसे अपने आपको बचाती है। नायक यदि कुछ देता है, तो सदैव उसे धारण किये रहती है। किसी दूसरे पुरुषके साथ विवाहकी बात चलने पर दुःखित होती है और उस पक्षके मनुष्योंसे दूर रहनेकी चेष्टा करती है।

यह सब अनुरागिनी नायिकाके अनुराग प्रकट करने वाले चिन्ह हैं। इन्हें इङ्गित और आकार कहते हैं। वात्स्यायन मुनिने लिखा है कि :—

दृष्ट्वैतान् भाव संयुक्ताना कारानिङ्गितानि च।
कन्यायाः सम्प्रयोगार्थं तांस्तान् योगान् विचिन्तयेत् ॥
बालक्रीड़नकैर्बाला कलाभिर्यौवने स्थिता।
वत्सला चापि संग्राह्या विश्वास्यजन संग्रहात् ॥

अर्थात् जिस प्रकारके भाव और इङ्गित दिखायी दें, उसी प्रकारके उपचारोंका आयोजन करना चाहिये। बालाओंको बालक्रीड़ासे, यौवनाओंको कलाकौशलसे और प्रौढ़ाओंको विश्वस्त मनुष्यों द्वारा हस्तगत करना चाहिये।

नायिकाके हृदयमें अनुराग उत्पन्न हो जानेके बाद यदि वह इङ्गित और आकार द्वारा अनुराग प्रकट करने लगे,

तो समझना चाहिये, कि अब इसे अधिकारमें लाना कठिन नहीं है। ऐसी नायिकासे शीघ्रही घनिष्टता बढ़ाकर उसे विवाहके लिये राजी कर लेना चाहिये। नायिकासे बातें करने, उसे अपने हृदयकी अभिलाषा व्यक्त करने, किसी उत्सव आदिमें एकत्र होनेपर उसके अंगोंको स्पर्श करने तथा अनेक प्रकारकी अठखेलियाँ और बातें करते रहनेसे नायिकाकी लज्जा दूर हो जाती है।

नायिका राजी हो जानेपर उसके साथ विवाह कर लेना चाहिये। यदि नायिकाके मातापिता जीवित हों, तो जहाँतक हो सके, उनकी अनुमतिसे ही विवाह करना चाहिये। यदि उन्हें कोई आपत्ति हो, तो उन्हें समझा बुझाकर काम निकालना चाहिये, परन्तु वे यदि न मानें और कन्या विवाहके लिये राजी हो, तो उनकी परवाह न कर, स्वयं उसके साथ विवाह कर लेना चाहिये। कानूनन भी ऐसा विवाह नाजायज नहीं समझा जाता बशर्ते कि वह दोनोंकी रजामन्दीसे हुआ हो। इस प्रकार अपने लिये उपयुक्त स्त्री प्राप्त करना पाप नहीं है। पाश्चात्य देशोंमें तो प्रायः इसी प्रथाका प्रचार है। लोग अपनी प्रेमिकाओंको विवाहके लिये राजी कर, किसी चर्चमें जाकर विवाह कर लिया करते हैं। प्राचीन भारतमें भी गान्धर्व और राक्षस

विवाह आदिकी प्रथा प्रचलित थी। कन्याओंका हरण तक होता था। परन्तु आजकल वह सब सभ्यता विरुद्ध समझा जाता है। कन्याको राजीकर उसके साथ विवाह कर लेना भी पाश्चात्य देशोंकी तरह भारतमें प्रशंसनीय नहीं समझा जाता, क्योंकि यहाँ लड़के लड़कियोंके अभिभावकों द्वाराही विवाहके आयोजनकी प्रथा प्रचलित है। गत अध्यायमें इस सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है अतः यहाँ हम उन बातोंका दोहराना उचित नहीं समझते।

विवाह न होने पर जिस प्रकार पुरुषोंको नायिकाकी खोजकर उसे हस्तगत करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है, उसी प्रकार कभी कभी स्त्रियोंको भी अपने लिये वरकी खोज करनी पड़ती हैं। सम्प्रति हमारे भारतवर्षमें और खास कर हमारे हिन्दू-समाजमें यदि कोई स्त्री अपने लिये स्वयं वरकी खोज करने निकले, तो लोग न जाने उसकी कितनी निन्दा करें और उसे क्या कहें, परन्तु जिस प्रकार समय संयोगके कारण पुरुषोंको अपने लिये स्त्री खोजनी पड़ती है, उसी प्रकार स्त्रियोंको अपने लिये वर खोजना पड़ता हैं। पाश्चात्य देशोंमें इस प्रथाका भी काफी प्रचार है। वहाँ यह निन्दनीय नहीं समझा जाता और हमारी समझमें

समझना भी न चाहिये, क्योंकि जिस प्रकार पुरुषोंके लिये स्त्रियां आवश्यक हैं उसी प्रकार स्त्रियोंके लिये पुरुष आवश्यक हैं। यदि पुरुषोंकी प्रवृत्ति निन्दनीय नहीं समझी जाती, तो स्त्रियोंकी प्रवृत्तिको ही क्यों निन्दनीय समझना चाहिये ?

जब किसी कन्याके कोई स्वजन या आत्मीय नहीं होते या गुणवान होने पर भी किसी कारणसे विवाह नहीं होता, या कुलीन होने पर भी धनाभावके कारण कोई उसका पाणिग्रहण नहीं करता अथवा माता-पिताके मर जाने पर उसके अभिभावक बड़ी उम्र हो जाने पर भी उसका विवाह नहीं करते, तब यौवनावस्था प्राप्त होनेपर कन्याको स्वयं अपना विवाह करनेके लिये बाध्य होना पड़ता है।

वात्स्यायन मुनिने कामसूत्रमें लिखा है, कि ऐसी कन्याको गुणवान्, रूपवान, बलवान और जिस पर बाल्यकालमें अधिक प्रेम रहा हो, ऐसे नायकको हस्तगत करनेकी चेष्टा करनी चाहिये। जो मनुष्य अपने माता पिताके कहनेमें अधिक नहीं रहता और कुछ स्वतन्त्र प्रकृतिका होता है, वह इन्द्रिय लोलुपताके कारण ऐसी कन्यासे विवाह कर लेना शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है।

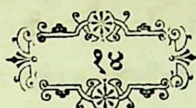
कन्याको भी इस कार्यमें नायककी सखी, धात्री कन्या और उसके माता पिताकी न्यूनाधिक सहायता लेनी पड़ती है। नायकके निकट पुष्प, गन्ध और ताम्बूल आदि लेकर निर्जन प्रदेशमें जाने और उससे बातचीत आदि करनेसे नायकके हृदयमें अनुराग उत्पन्न होता है और वह नायिकाका पाणि-ग्रहण करनेको तैयार होता है। इसके बाद नायिकाको अपनी ओरसे किसी प्रकारकी चेष्टा न करनी चाहिये, न एकाएक नायकसे विवाह करना ही स्वीकार करना चाहिये ; क्योंकि ऐसा करनेसे वह नायककी नजरसे गिर जाती है और फिर कभी सौभाग्य नहीं प्राप्त कर सकती। वह केवल नायकका अनुसरण कर सकती है। नायक जो बातें कहे, उन्हें मञ्जूर कर सकती है, परन्तु अपनी ओरसे कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं कर सकती। आन्तरिक इच्छा होने पर भी नायककी बात उसे इस तरह स्वीकार करनी चाहिये जैसे वह बड़ी अनिच्छा और बड़े मन:कष्टके साथ स्वीकार कर रही हो। उसे अपनी ओरसे कोई बात तभी कहनी चाहिये, जब इस बातका पूरा पूरा विश्वास हो जाय, कि नायक प्रेम जालमें भलीभाँति उलझ चुका है और अब वह अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सकता।

इस प्रकार समुचित उपचारों द्वारा नायकको विवाहके

लिये राजी कर कन्याको उसके साथ विवाह कर लेना चाहिये। विवाह करनेके पहले उसे अच्छी तरह देख लेना चाहिये, कि उससे उसे सुख और आश्रय मिल सकता है, वह अनुकूल है और वशमें रह सकता है। जिस पुरुषने गुण औचित्य और रूपकी परवाह न कर, केवल धन लोभमें पड़कर अनेक विवाह किये हों, उसके साथ कदापि विवाह न करना चाहिये। यदि कोई धनवान और गुणवान होने पर भी उसके घरमें कई स्त्रियाँ हों, तो उसे भी पसन्द न करना चाहिये। जो पुरुष वशमें रहे, वह निर्गुण, दरिद्री अथवा केवल अपने परिवार ही भरका पोषण करने वाला ही हो, तब भी भला है, परन्तु जो वशमें न रहे वह चाहे जितना गुणवान और चाहे जितना धनवान हो, उसे कदापि वरण न करना चाहिये। धनी प्रायः स्वेच्छाचारी होते हैं। उन्हें एक स्त्रीसे सन्तोष भी नहीं होता। यद्यपि उनकी स्त्रियोंको खाने पहरनेका बड़ा सुख होता है, परन्तु दाम्पत्य-जीवन उनका बहुत ही निकृष्ट होता है, अतः ऐसे मनुष्योंसे दूर ही रहना चाहिये। इसी प्रकार नीच जातिका पुरुष, वृद्ध या चिरप्रवासी भी त्याज्य होता है। जो दम्भी, कपटी बहु पत्नीवाला और जुआरी हो, उसे भी पसन्द न करना चाहिये। ऐसे पुरुष वशमें रहनेवाले हों, तब भी इन्हें

त्याज्य ही समझना चाहिये। जिसमें यह दोष न हों, जिसका शील स्वभाव अच्छा हो और जिसमें साधुता दिखायी दे, उस पुरुषके साथ विवाह करनेसे दाम्पत्य जीवन आनन्दसे व्यतीत होता है, क्योंकि उसका अनुराग अचल और अतीव परिस्फुट होता है।





सहवास

विवाह होनेके बाद स्त्री और पुरुष सहवास करते हैं। परन्तु सहवासका समय तथा सहवासके सम्बन्धकी अन्यान्य आवश्यक बातोंका ज्ञान न होनेके कारण वे ऐसे ढंगसे सहवास करते हैं, कि दाम्पत्य-जीवन सुख और शान्तिका आगार होनेके बदले नीरस और निरानन्दमय हो जाता है। प्रत्येक विवाहित स्त्री पुरुषको यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये, कि विवाहके बाद उनके भावी जीवनका सुखदुःख उनके सहवास पर निर्भर करता है। यदि स्त्री पुरुष उचित मात्रामें, उचित समयमें, अपनी शारीरिक शक्ति और बलके अनुसार उचित प्रकारसे सहवास करते हैं, तो उनके दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि होती है, उन्हें निरोग

सुन्दर और मनचाही सन्तानके जनक जननी होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है और वे इस संसारमें ही नन्दनकाननका दृश्य उपस्थित करनेमें समर्थ होते हैं, किन्तु जो लोग सहवासकी मात्रा, उसका समय और उसके औचित्य पर ध्यान नहीं देते, उन्हें अपनी घर गृहस्थी अपना जीवन और अपने बालबच्चे भाररूप हो पड़ते हैं। यह संसार उन्हें रौरव नरकसे भी बढ़कर यातनामय मालूम होता है और वे थोड़ेही समयमें अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर इहलोकसे चल बसते हैं। इस अध्यायमें हम सहवाससे सम्बन्ध रखनेवाली कई ऐसी बातोंपर विचार करेंगे, जिनसे उपर्युक्त कोटिके स्त्री पुरुषोंको सहवासके औचित्य अनौचित्यका ज्ञान होगा और उन्हें अपना कर्तव्य स्थिर करनेमें सहायता मिलेगी।

सहवासका उद्देश्य और अवस्था— सबसे पहले विचारणीय यह है, कि सहवास क्यों करना चाहिये? विद्वानोंने बहुत कुछ विचार करनेके बाद स्थिर किया है, कि सहवासका मुख्य प्रयोजन है—सन्तानोत्पत्ति, आनन्द प्राप्ति नहीं। जैसे भोजन करनेका प्रयोजन पेट भरना और शरीरको बलवान बनाना है, स्वाद लेना नहीं। केवल स्वाद लेनेके लिये कोई भोजन नहीं करता।

भोजनका स्वादिष्ट होना जैसे भोजनमें रुचि दिलाता है, इसी प्रकार विषयानन्द केवल स्त्री प्रसंगमें प्रवृत्ति दिलाने वाला है। मुख्य उद्देश्य नहीं। कितनी अवस्थाके स्त्री पुरुषों का संयोग होना चाहिये, यह हम विवाह प्रकरणमें लिख आये हैं। यहाँ पर इतना स्पष्ट कर देना चाहते हैं, कि पुरुषकी आयु नारीकी आयुसे ड्योढ़ी होनी चाहिये। तुल्य बल वाले स्त्री पुरुषोंका ही संगम होना उचित है। कम जोरोंकी जो सन्तान होती है, वह भी बल-हीन, मन्द बुद्धि और रोगी होती है। अतएव स्त्री-सहवासके समय बलाबलका ख्याल रखना चाहिये। उपयुक्त अवस्था प्राप्त होनेके पहले जो लोग स्त्री-प्रसंग करने लगते हैं, उन्हें बहुत कष्ट भोगना पड़ता है। उनके शरीरकी वृद्धि रुक जाती है, कारण शरीरके पूर्ण होनेके पहले ही उसका क्षय होने लगता है। मुखकी लालिमा, चमक-दमक और कांति फीकी पड़ जाती है। चेहरा रूखा, फीका और बदरंग हो जाता है। गाल बैठ जाते हैं, लावण्य गायब हो जाता है, चेहरा पीला और निस्तेज पड़ जाता है, मानो पाण्डु रोगने दबा लिया हो।

यह मानी हुई बात है, कि जब पूर्णता-प्राप्तिके पहले ही शरीरका नाश प्रारम्भ हो जायगा, तो उसके साथ साथ

आयुका भी नाश होने लगेगा अर्थात् आयु कम पड़ जायगी। शरीर तो जीर्ण हो जायगा, बाल भी जल्दी पक जाँयगे और जवान होनेके पहले ही बुढ़ापा आ जायगा। देह प्रायः राज-यक्ष्मा, और बात व्याधि इत्यादि भयंकर रोगोंसे आक्रान्त हो जाती है। इन रोगोंमें फँसकर क्या कभी मनुष्य अपने प्राणोंकी रक्षा कर सकता है? कारण, उसका शरीर पहलेसे निर्बल हो गया होता है। वह रोगके किसी भारी धक्केको कैसे सम्हाल सकता है? फलतः उसकी मृत्यु अनिवार्य है। जो लोग इन रोगोंसे आक्रान्त होकर जीते रहते हैं, वे और भी कष्ट पाते हैं। उनका शरीर तिल तिल करके दग्ध होता रहता है। वे अपना पराया कोई काम नहीं कर सकते। अभाव और दैन्य उन्हें भीषण पीड़ा देता है। वे जीवन्मृत हो जाते हैं, और यह निश्चित है, कि मर जाना अच्छा है, पर जीवन्मृत होना अच्छा नहीं।

हमारे देशमें बाल्य-विवाहका बहुत अधिक प्रचार है। है। अतः १४ वर्षकी लड़की और १५।१६ वर्षके लड़कोंका सहवास करना प्रायः देखा जाता है। माता-पिताकी इच्छा इसी समयसे "पौत्र" का मुख देखनेके लिये बलवती हो जाती है। १६ वर्षकी अवस्थातक पहुंचते न पहुचते वे

एकाध कन्या या पुत्रके पिता हो जाते है! बतलाइये, ऐसे लोगोंकी सन्तान निरोग और बलवान् कैसे होगी अथवा माता पिताही कैसे स्वस्थ और सबल रहेंगे। ये लोग शीघ्रही उपरोक्त भयंकर रोगोंसे आक्रान्त हो जाते हैं। इनका जीवन दुःखमय हो जाता है। बिना पूर्ण सुख भोग किये शीघ्र ही संसारसे चल बसते हैं। आविष्कारक बुद्धि इनमें कभी नहीं हो सकती। विद्या-प्राप्तिमें ऐसे लोगोंका मन नहीं लगता। दिमाग बेकाम हो जाता है। आँखे ज्योति-हीन हो जाती हैं। कमर झुक जाती है। स्त्रियोंका हाल और भी बुरा हो जाता है। यदि वे असमयमें गर्भधारण कर लेती हैं, तो या तो गर्भपात हो जाता है या प्रसव-कालमें घोर पीड़ा होती है। इससे यदि किसी प्रकार वे बच गईं तो प्रदर, रक्त-स्राव या क्षय आदि रोगोंकी शिकार होती हैं। स्त्रियाँ लज्जाके कारण प्रायः अपने ऐसे रोगोंको छिपाती हैं। इसका परिणाम कितना भयंकर होता है, यह जानकारोंसे छिपा नहीं है।

सहवास किसे करना चाहिये ?—अब हम इस बात पर विचार करेंगे, कि कैसे पुरुष और कैसी स्त्रियोंको सहवासमें प्रवृत्त होना चाहिये और किस अवस्थामें उससे दूर रहना चाहिये। वैद्यक

शास्त्रमें बतलाया गया हैं, कि जो पुरुष युवक हो, बलवान हो, हृष्टपुष्ट हो, वाजीकरण औषधोंका सेवन करता हो और निरोग एवम् प्रसन्नवदन हो, उसीके साथ स्त्रियोंको सहवास करना चाहिये। वैद्यक शास्त्रके इस कथनसे स्पष्ट मालूम होता है, कि बूढ़ों और बालकोंके लिये स्त्री प्रसंग नहीं हैं। एक बात याद रखनी चाहिये, कि जिनके शरीरमें शक्ति नहीं हैं, जिन्हें भर पेट भोजन नहीं मिलता, वे वाजीकरण वा स्तम्भन औषधोंके सहारे स्त्री-प्रसंग करनेकी हिम्मत या हिमाकत न करें अन्यथा उन्हें बहुत शीघ्र अपने कृत-कर्म पर अनुताप करना पड़ेगा।

हम बीसियों ऐसे आदमियोंको जानते हैं, जो अतिरिक्त-भोग करनेके कारण क्षीण हो गये है। शरीरमें बल नहीं रहा। तथापि वाजीकरण औषधोंके सहारे वे स्त्री-प्रसंग करनेको लालायित रहते हैं। वैद्यों और डाक्टरोंसे ये लोग पौष्टिक दवाइयाँ चुपचाप खरीदते हैं। कुछ लोग आजकलके धूर्त विज्ञापन देनेवालोंसे वी० पी० द्वारा दवा-इयां मँगाते हैं। इन लोगोंके मुँहसे यह सुनकर आश्चर्य होता है, कि भाई! अभी मनकी तृप्ति नहीं हुई, शरीर दुर्बल हो गया तो क्या? इन्द्रियोंमें उत्तेजना तो है। ये अभागे नहीं जानते कि:—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन साम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभि वर्द्धते॥

काम, भोग करनेसे शान्त नहीं होता, अर्थात् भोग करनेसे भोग-स्पृहा नहीं घटती, प्रत्युत बढ़ती जाती है। फिर तो यह एक आदत पड़ जाती है। लालसा उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। ठीक उसी प्रकार, जैसे घी निक्षेप करनेसे अग्नि प्रचण्ड पड़ जाती है। जिन लोगोंकी यह धारणा है, कि कुछ दिनोंतक खूब विषय भोग कर लें, फिर देखा जायगा। वे निःसन्देह मूर्ख है, वे भ्रान्त हैं। कारण, फिर कौन देखता है? यह आदत फिर उस समय तक नहीं छूटती, जबतक शरीरके अञ्जर-पञ्जर ढीले नहीं हो जाते। जब ढांचा ढीला हो जाता है, तब लोग सँभलनेका नाम लेते हैं। पछताते हैं। लेकिन सब व्यर्थ! निःसार! तो किन लोगोंको स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये, अथवा स्त्री-प्रसंगके अयोग्य पुरुष कौन हैं? वैद्यक शास्त्र बतलाता है, कि जो भूखा हो,—अर्थात् जिस समय पेट बिल्कुल खाली हो—जो प्यासा हो, थका हुआ हो—सफर करके आया हुआ हो, अथवा अन्य किसी प्रकार शारीरिक अथवा मानसिक परिश्रमसे श्रान्त हो, जो घबड़ाया हुआ हो, जो रोगी हो—बुखार, जूड़ी सुजाक, प्रमेह, गर्मी

या अन्य किसी भी रोगसे आक्रान्त हो, जो कमजोर हो—जिसका शरीर क्षीण हो, दम न बँधता हो, जो मल मूत्रादिके वेगसे युक्त हो, ऐसे मनुष्यको उचित है, कि वह स्त्री प्रसंग न करे। जो लोग इन नियमोंकी उपेक्षा करते हैं, वे कष्ट पाते हैं।

जिस प्रकार पुरुषोंकी शारीरिक और मानसिक अवस्था का विचार स्त्री प्रसंग करते समय किया जाता है, उसी प्रकार स्त्रीकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाका विचार भी किया जाता है, और किया जाना चाहिये। प्रसंगके योग्य वह स्त्री है, जो युवती हो, स्वस्थ शरीर हो, अच्छे स्वभाववाली, प्रियवादिनी, गुणवती, रूपवती, पतिव्रता और कामसे विह्वल हो। ये ऐसी बातें हैं, जिनपर विस्तारसे लिखना व्यर्थ है, कारण, इन गुणोंको प्रायः सभी जानते हैं।

प्रसंगके अयोग्य स्त्री कौन है? जो बालिका हो, जो बूढ़ी हो, जो रोगिणी हो, क्योंकि रोगिणी स्त्रीसे जो भोग करते हैं, वे भी रोगी हो जाते हैं। जो रजस्वला हो, जिसके कामोद्दीपन न हुआ हो—जिस स्त्रीकी संभोग-इच्छा जाग्रत नहीं होती, उससे जो लोग संभोग करते हैं, उन्हे आनन्द नहीं मिलता। जो मलीन हो—मलीन स्त्रीके साथ प्रसंग करने से मनमें ग्लानि उत्पन्न होती है। जो स्वामीसे

प्रेम न करती हो, जो गर्भिणी हो—और जिसका बच्चा दूध पीता हो, ऐसी स्त्रियोंसे प्रसंग न करना चाहिये। इसके अतिरिक्त जो निम्नलिखित रोगोंसे युक्त हों, वे चाहे स्त्री हों और चाहे पुरुष उन्हें संभोग न करना चाहिये :—

यक्ष्मा—तपेदिक, श्वास, बवासीर, कोढ़, मधुमेह, मृगी, उन्माद, चेचक, प्रमेह, गर्मी, सुज़ाक, इत्यादि। ये संक्रामक रोग हैं। अतएव सर्वथा सावधान रहना चाहिये।

जो स्त्री पुरुष सहवास करने लायक हैं, उन्हें उचित है, कि उपर्युक्त नियमों पर अवश्य ध्यान दें, तभी उनका कल्याण हो सकता है। जो लोग युवा अवस्थाके आवेश में किसी प्रकारके नियमोंको नहीं मानते, उन्हें भयंकर हानि उठानी पड़ती है।

सहवासका समय—हिन्दू शास्त्रोंके अनुसार सहवास करनेका उपयुक्त समय है—रात्रि-काल। रात्रिके पहले पहरमें सहवास करना मना है। प्रथम प्रहरमें सहवास करनेसे सन्तान अल्पायु होती है। रात्रिके द्वितीय प्रहरमें स्त्री-गमनके फल-स्वरूप यदि पुत्रकी प्राप्ति होती है, तो वह दरिद्र होता है। और यदि कन्या होती है, तो दुर्भाग्य-वती होती है। तृतीय प्रहरके सहवाससे यदि पुत्र हो, तो वह दास होता हैं और यदि

कन्या हो, तो वह पतिघातिनी होती हैं और लड़कपनमें दासी वृत्ति करके जीवन-यापन करती है। चतुर्थ प्रहर ही सहवासका सर्व श्रेष्ठ समय है। इस समय सहवासके द्वारा जो पुत्र उत्पन्न होता है, वह विचक्षण, बुद्धिमान्, विद्वान् और दीर्घ आयु सम्पन्न होता हैं और यदि कन्या हो, तो वह पतिव्रता और सौभाग्य-शालिनी होती है। X

दिनको सहवास करना मना है। इससे मस्तिष्क और शरीर पर सूर्यकी गरमीका प्रभाव पड़ता है, फलत: नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होकर मनुष्य अल्पायु हो जाता है। इसीलिये भाव मिश्रने भाव प्रकाशमें लिखा है कि:—

आयुः क्षय भयाद्विद्वान नान्हि सेवेत कामिनीम् ॥

अर्थात् आयु क्षयके भयसे विद्वान् पुरुषको मध्यान्हमें स्त्री-सेवन न करना चाहिये।

स्त्री और पुरुषोंका दाम्पत्य-संयोग किस समय होना चाहिये, इस सम्बन्धमें पाश्चात्य शरीरविद् डाक्टर आर० टी० ट्राल एम० डी० ने लिखा है कि "पुरुषकी मानसिक उत्तेजनाके समय, गुरु भोजन करनेके बाद, शोक सन्तप्त हृदयसे, अथवा गुरुतर परिश्रमके बाद कदापि सहवास करना उचित नहीं है। जब मन और देह सम्पूर्ण स्वस्थ हो, हृदयमें किसी प्रकारका उद्वेग न हो, सहवास करनेके

लिये वही समय प्रशस्त है। उसी समय सहवास करना उचित हैं।"

एक और बहुत बड़े डाक्टरकी राय है, कि "जब स्त्री और पुरुषकी शारीरिक एवम् मानसिक अवस्था बिल्कुल ख़राब हो, किंवा गुरुतर परिश्रमके बाद शरीर जब चूर हो रहा हो, किंवा गुरुतर भोजनके बाद जब खाद्य द्रव्योंका परिपाक हो रहा हो, उस समयके स्नायु-विधान और मनुष्य-देहके वैद्युत् प्रवाह समागमके बिल्कुल उपयुक्त नहीं होते। रातके अन्तमें अच्छी तरह सो लेनेके बाद, जब मन और शरीर बिल्कुल स्वस्थ हो, उसी समय स्त्री-पुरुषोंका सहवास होना उचित है।"

रातके प्रथम प्रहरमें ही जो प्रायः सहवास किया करते हैं, उन्हें उचित है, कि सायंकाल होते ही वे रातका भोजन करलें। भोजन करनेके बाद कमसे कम ३।४ घण्टा बाद मनुष्यको सहवास करना चाहिये। जो लोग इन नियमोंकी उपेक्षा करते हैं, उनका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है और इच्छानुसार सन्तान उत्पन्न करनेमें वे असमर्थ हो जाते हैं।

सहवासका स्थान—सहवासका स्थान कैसा होना चाहिये इस सम्बन्धमें नागरकवृत्त नामक अध्यायमें

विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। संक्षेपमें, इतना अवश्य ध्यान रखना चाहिये, कि सहवासके लिये जो स्थान पसन्द किया जाय, वह सुन्दर, सज्जित और एकान्त हो। वहाँ किसीके आनेका खटका न होना चाहिये और उस स्थानमें वायु और प्रकाशके लिये काफी गुञ्जायश होनी चाहिये। जहाँ पासके घरमें बड़े बूढ़े लोग हों, जो स्थान खुला हो, लज्जास्पद हो, घृणायुक्त हो, तङ्ग हो, गरमी या अन्धकारसे युक्त हो, और जहाँ रोने पीटनेका शब्द सुनाई देता हो, वहाँ स्त्री प्रसंग न करना चाहिये। ऐसा स्थान सहवासके लिये सर्वथा निषिद्ध माना गया है।

ऋतुकाल—सहवासका मुख्य प्रयोजन है सन्तानोत्पत्ति, इसलिये धर्म-शास्त्र और वैद्यक शास्त्रमें, स्त्रियोंके ऋतुकालमें ही सहवास करनेकी सलाह दी गयी है, क्योंकि ऋतुकालमें गर्भाधान होनेकी अधिक संभावना रहती है।* रजोदर्शनके प्रथम दिनसे लेकर १६ दिनतकका समय ऋतुकाल माना गया है। इनमें प्रथम चार दिन सहवास

---

* दाम्पत्य-विज्ञान और जनन-विज्ञानमें यह विषय विस्तार पूर्वक समझाया गया है।

करना मना है। इसके बाद किस दिन सहवास करनेसे क्या लाभ हानि होती है, इस पर शास्त्रकारोंने गम्भीरता पूर्वक विचार किया है।

ऋतु-कालमें स्त्रियोंके अन्यान्य समयकी अपेक्षा काम-कुछ अधिक रहता है। इसीलिये ऋतु-स्नानके बाद सन्तान कामी स्त्री और पुरुषके सहवासको व्यवस्था की गई है। ऋतु-स्नानके बाद स्त्रियोंको शुद्ध चित्तसे, हृष्ट मनसे और राग द्वेषका परिहार करके अपने स्वामियोंके साथ सहवास करना चाहिये। इस प्रकारकी मनोवृत्ति-सम्पन्न जनक-जननी द्वारा जो सन्तान उत्पन्न होगी, :वह निश्चय ही धार्मिक, सच्चरित्र, उन्नत मनोवृत्ति विशिष्ट, बलिष्ट और दीर्घायु होगी। ऐसी ही सन्तान माता-पिताका मुखोज्वल करनेवाली होती है। ऐसे ही सुपुत्रोंको धारण करके मातृ-कुक्षि पवित्र होती है। ऐसे ही पुत्रोंको जन्म देकर पितृ-वीर्य धन्य होता है। हमारे देशके और पाश्चात्य देशके सभी महतीय मनीषियोंने एक वाक्यसे—सम स्वरसे—उपर्युक्त मतका प्रतिपादन किया है।

ऋतुकालमें किस दिन सहवास करनेसे कैसी सन्तान उत्पन्न होती है, इसका उल्लेख इस प्रकार किया गया है :—

(१) ऋतुके पहले दिन ऋतुमती स्त्रीके साथ गमन न करना चाहिये। इस दिन यदि गर्भ रह जाय, और उससे सन्तानोत्पत्ति हो, तो उसकी शिशु-कालमें ही मृत्यु होती है। जो व्यक्ति ऋतु-मती स्त्रीसे सहवास करता है, उसकी आयु क्षय होती है।

(२) ऋतुके दूसरे दिनके सहवाससे यदि गर्भ रह जाय, तो वह सन्तान गर्भमें ही विनष्ट हो जाती है।

(३) ऋतुके तृतीय दिवसके सहवाससे जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह आजीवन व्याधि ग्रस्त रहती है।

(४) ऋतुके चौथे दिन भी सहवास करना निषिद्ध है। ऋतुके चौथे दिनकी सन्तान भिक्षा-जीवी होती है।

(५) ऋतुके पाँचवें दिन स्त्री के सहवास करनेसे सुपुत्र-लाभ होता है।

(६) छठे दिन सहवास करनेसे मध्यम गुण-सम्पन्न पुत्र-लाभ होता है।

(७) सातवें दिन स्त्रीके साथ सहवास करनेसे सन्तान उत्पन्न नहीं होती।

(८) आठवें दिन स्त्रीसे सहवास करनेपर उसके परिणाम स्वरूप यदि पुत्र उत्पन्न होता है, तो वह पुत्र धनवान् और यशस्वी होता है।

(९) नवें दिन स्त्री-गमन करने पर, उसके फल स्वरूप जो सन्तान उत्पन्न होती है, वह सन्तान महान् सौभाग्य लाभ करती है।

(१०) दसवें दिन स्त्री-गमन करनेपर बलिष्ठ और स्वस्थ सन्तानकी प्राप्ति होती है।

(११) ग्यारहवें दिन स्त्री-गमन करनेसे, उसके परिणाम-स्वरूप यदि कन्या उत्पन्न होती है, तो वह असत्-चरित्रा होती है।

(१२) बारहवें दिन गमन करनेसे सुपुत्रकी प्राप्ति होती है।

(१३) तेरहवें दिनके सहवाससे यदि कन्या जन्म ग्रहण करे तो वह कन्या पापिष्ठा होती है। संसारमें उसके लिये कोई भी काम असाध्य नहीं होता।

(१४) चौदहवें दिन सहवास करनेसे धार्मिक और सुशील पुत्र जन्म-ग्रहण करता है।

(१५) पन्द्रहवें दिन स्त्री गमन करनेसे कन्याकी उत्पत्ति होती है। और वह कन्या परम-सुन्दरी और पवित्र-हृदय होकर चिर-काल तक स्वामीकी सेवा करती है।

(१६) सोलहवें दिन सहवास करनेसे धार्मिक, सुशील और मेधावी पुत्र जन्म ग्रहण करता है।

इन बातोंके अतिरिक्त सुसन्तान या पुत्रकी इच्छा रखने-वाले स्त्री पुरुषोंको सहवास करते समय निम्नलिखित बातों पर भी ध्यान रखना चाहिये:—

शरीर-विद् महामुनि चरककी सम्मति है कि, यदि स्त्री, अत्यन्त भूखी, प्यासी, डरी हुई, शोकार्त्त, क्रुद्ध अथवा दूसरे पुरुषसे आसक्त हो, तो वह गर्भ धारण नहीं कर सकती। यदि ऐसी अवस्थामें भी दैव योगसे कोई नारी गर्भ-धारण करे तो वह सन्तान विकलाङ्ग होती है।

महर्षि चरक और भी कहते:हैं, कि यदि पुरुष भी उपर्युक्त अवस्थामें हो, तो उसे अत्यन्त उचित है, कि वह स्त्री-संसर्ग न करे। सब तरहसे दोष शून्य होकर ही सहवास करना नर और नारी दोनोंके लिये हितकर है।

परन्तु कामान्ध क्या इन बातोंकी ओर ध्यान देता है? ख़ैर! प्रत्येक बातके अच्छे और बुरे दो पहलू होते हैं, भलाईकी ओर अग्रसर होना और बुराईका परित्याग करना मनुष्यका कर्त्तव्य होना चाहिये। भगवान् मनुकी राय है, कि ऋतुके पहले चार दिन और ग्यारहवीं तथा तेरहवीं रात्रिमें कदापि सह-वास न करना चाहिये। युग्म अर्थात् सम यथा, ६।८।१० आदि रात्रिमें स्त्री-गमन करनेसे पुत्र और

अयुग्म अर्थात् विषम रात्रियोंमें गमन करनेसे कन्या उत्पन्न होती है।

यदि स्त्रीके रजका आधिक्य हो, तो युग्म रात्रियोंमें भी कन्याका जन्म होता है और पुरुष यदि वीर्यवान् हो, तो अयुग्म रात्रियोंमें भी पुत्र उत्पन्न होता है। पुरुष और स्त्रीके वीर्य-रजका परिमाण यदि बराबर हो, तो क्लीब या यमज सन्तानका प्रादुर्भाव होता है और यदि दोनोंका वीर्य अल्प और निस्तेज हो, तो बिलकुल गर्भ ही नहीं रहता। मनुके श्लोक ये हैं :—

तासा माद्य चतस्रास्तु निन्दितैकादशी च या।
त्रयोदशी च शेषास्तु प्रशस्ता दश रात्रयः॥

अर्थात् सोलह रात्रियोंमें प्रथम चार रात, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात स्त्री समागमके लिये निन्दित है, शेष दस रात्रियां प्रशस्त हैं।

युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु।
तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्त वे स्त्रियम्॥

सम रात्रि अर्थात् छठी, आठवीं, दसवीं, बारहवीं, चौदहवीं, तथा सोलहवीं रातको स्त्रीके साथ सहवास करनेसे पुत्र उत्पन्न होता है। विषम रात्रि अर्थात् पाँचवीं, सातवीं आदि रातोंमें स्त्री-गमनसे कन्या जन्म-ग्रहण करती

है। जो पुत्रकी कामना करता हो, वह युग्म रात्रिमें ऋतुमती स्त्रीके साथ वास करे।

पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियः।
समे पुमान् पुंस्त्रियौ वा क्षीणेऽल्पेच विपर्ययः॥

पुरुषका वीर्य अधिक होनेसे विषम रात्रिमें भी पुत्र और स्त्रीका रज अधिक होनेसे सम रात्रिमें भी कन्या उत्पन्न होती है। स्त्री पुरुषका रज-वीर्य तुल्य होनेसे नपुंसकका जन्म होता है। या जोड़ सन्तान उत्पन्न होती है। दूषित या अल्प-वीर्य होनेसे गर्भ नहीं रहता। अमावस्या, पूर्णिमा, एकादशी प्रभृति तिथियाँ परित्याज्य हैं।

पुत्र और कन्याके होनेका एक और भी कारण बड़े बड़े डाक्टर बतलाते हैं। स्त्री चाहे जिस पक्षमें ऋतुमती हो, किन्तु निषिद्ध या निन्दित रात्रियोंको छोड़कर यदि शुक्लपक्षमें पुरुषके साथ सहवास करे, तो पुत्र, और यदि कृष्ण-पक्षमें सहवास करे तो कन्या उत्पन्न होती है।

सहवासकी मात्रा—कुछ लोग पूछते हैं कि, सहवास कितनी बार करना चाहिये ? अथवा किस ऋतुमें कितने दिनोंके अन्तरसे स्त्री-पुरुषका संयोग होना चाहिये ? यह बात ठीक है, कि कुछ ऋतुओंमें जैसे वर्षामें और वसंत प्रभृतिमें कामोद्दीपन विशेष होता है और ग्रीष्म

प्रभृतिमें कम। तथापि जब हम सन्तानोत्पत्तिके लिये ही स्त्री पुरुषोंके सहवासको मानते हैं, तब हमें यह कहनेमें कोई सं कोच नहीं, कि ऋतु कालाभिगामी होना चाहिये। जो लोग आनन्दके लिये—केवल आनन्द-प्राप्तिके लिये सहवास करते हैं, उनके प्रश्नोंका उत्तर देनेमें हम असमर्थ हैं।

सहवास काम-वासनाकी तृप्तिके लिये नहीं है। सहवासका मुख्य और मूल उद्देश्य है, सन्तान-प्राप्ति। इसलिये विकट उत्तेजनाके समयमें भी मनुष्यको धीर और शान्त रहना ही उचित है। इन्द्रियों पर उस समय भी अधिकार वाञ्छनीय है। शिक्षाके अभावसे हमलोग संयमका अभ्यास भूल गये हैं। इसीलिये जब तब सहवास करनेके लिये उत्तेजित हो उठते हैं। उस समय हम ज्ञान-विज्ञान, धर्माधर्म और पाप-पुण्यका विचार छोड़ देते हैं। अवश्य ही इसका प्रतिफल भी हमलोगोंको हाथों हाथ मिल जाता है। किन्तु बड़े दुःखकी बात है, कि हमलोग इतने पर भी संयत होना नहीं सीखते। केवल आनन्द प्राप्तिके लिये वीर्यका नाश करना और शरीरको खोखला तथा जीर्ण शीर्ण बना लेना बहुत बड़ी मूर्खता है। इतनी बड़ी मूर्खता है कि जिसकी उपमा नहीं है। खास करके इस जमानेमें, जब कि लोगोंको पौष्टिक पदार्थ भोजनके

लिये नहीं मिलता है, और न शरीरको बलवान् बनाने योग्य और ही सुख-सामग्री मिलती है, अनेक चिन्ताओं और भांति भांतिके रोगोंसे शरीर घिरा रहता है—शरीरकी रक्षाके ख्यालसे और उत्तम सन्तानके विचारसे मनुष्योंको वीर्य रक्षा करनी चाहिये।

दैनिक और अधिक मैथुनसे शरीरको बहुत हानि पहुंचती है। बल नष्ट होता है। ओज क्षय होता है। पट्ठोंको आघात पहुंचता है। दिमाग कमजोर हो जाता है। जो लोग पहले—नूतनताके आवेशमें अधिक मैथुन करते हैं अथवा करते रहते हैं, उन्हें शीघ्र ही वैद्योंकी शरणमें जाना पड़ता है। यद्यपि पहलेपहल इससे उत्पन्न हानिका ज्ञान नहीं होता है, किन्तु शीघ्र ही निकम्मा बन जाना पड़ता है। एक डाक्टरकी राय है, कि यदि मैथुनके पीछे सच्चा आनन्द आवे, शरीरमें बल, फूर्त्ति और काम करनेमें रुचि बनी रहे, तो समझना चाहिये, कि ठीक ठीक संभोग हुआ है। यदि शरीरमें थकान मालूम हो, शिरमें दर्द हो, दम घुटने लगे, तो समझ लेना चाहिये कि मामला सीमासे पार हो गया है।

जो लोग संयमसे रहते हैं, उनके सम्बन्धमें भाव मिश्रका कथन है कि :—

आयुष्मन्तो मन्द जरा वपुर्वर्ण बलान्विताः ।
स्थिरोपचित मांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयताः ॥

जो स्त्रीमें संयत रहते हैं—अर्थात् ऋतुकालाभिगामी होते हैं, और उस समय भी अपनी शक्तिका ज्ञान रखते हैं—वे दीर्घायु होते हैं। उनको बुढ़ापा जल्दी नहीं आता। वे हृष्टपुष्ट और सुन्दर बने रहते हैं और उनका यौवन काल बहुत दिनों तक स्थिर रहता है। जो लोग देहके सार भूत पदार्थ वीर्यका व्यर्थ ही अपव्यय करते हैं, उनके सम्बन्धमें चरकका कथन है कि :—

आहारस्य परंधाम शुक्रं तद्रक्ष्यमात्मनः ।
क्षये तस्य बहून् रोगान् मरणं वा नियच्छतिः ॥

अर्थात् वीर्य भोजनका सर्वोत्कृष्ट सार है। उसकी रक्षा सावधानीसे करनी चाहिये। वीर्यके क्षीण होनेसे अनेक रोग लग जाते हैं अथवा मृत्यु हो जाती है।

परन्तु हम स्पष्ट शब्दोंमें बतला देना चाहते हैं, कि मनुष्य तभी संयमी हो सकता है, जब स्वयं वह इच्छा करे और उसके लिये यत्न करे। अन्यथा वह किसी प्रकार सुधर नहीं सकता। अतएव मनुष्यको उचित है, कि वह क्षणिक सुखके फेरमें पड़कर अपना सर्वस्व नष्ट न कर दे प्रत्युत दीर्घकालिक सुखके लिये आयोजन करे।

सहवासकी अवस्था और समयकी उपेक्षा करनेका परिणाम भयंकर होता है। नियम भंग करनेवालोंको हाथों हाथ उसका फल भी मिल जाता है। अतएव इस विषयमें सर्वदा सतर्कताका अवलम्बन करना उचित है। मनीषियों, डाक्टरों या पण्डितोंने दीर्घकाल तक अनुभव या सूक्ष्म निरीक्षण करनेके पश्चात् जिन नियमोंका निर्माण किया है, जो सत्परामर्श प्रदान किये हैं, वे नियम अवश्य पालनीय है। वे सत्परामर्श अवश्य ग्राह्य है।

इस सम्बन्धमें विद्वान प्रायः कहा करते हैं, "तपस्याके बिना सुपुत्र लाभ करना किसी प्रकार सम्भव नहीं।" इस बातकी यथार्थतामें सन्देह करनेका अवकाश नहीं है। हमलोग पशुओंकी तरह काम-प्रवृत्तिके परिचालनमें अभ्यस्त हो गये हैं। हमलोग एकबार भी नहीं सोचते, कि इस काम-प्रवृत्तिके परिचालन पर ही हमलोगोंका सुख दुःख निर्भर है। न केवल हमलोगोंका सुख-दुःख प्रत्युत एक विशाल देश और समाजकी क्षति वृद्धि भी।

जिस दिन हम लोग इस प्रकृत तथ्य-वादको जाननेके लिये उत्सुक होंगे और संयमके अभ्याससे सुसन्तान लाभ करनेकी चेष्टा करेंगे, उसीदिन हमारे देशमें शान्ति लौट आयेगी। ज़रासी चेष्टा करनेसे ही जब मनुष्य

इच्छानुरूप सन्तान प्राप्त कर सकता है, अपार सुखसे सुखी हो सकता है, तो फिर क्यों इतनी दुर्दशा, इतना दुःख सहन किया जाय ? मनुष्य अनन्त ज्ञान प्राप्त करके सभ्य हो उठा है, उसे इस तरह पशु-वृत्तिका दास होना एकदम उचित नहीं है। हमारी भावी सन्तान जिससे योग्य-तम हो, वही करना सबको उचित है।

सहवासका समय और सहवासकी अवस्थाका विवेचन संक्षेपमें हो चुका। आज कल हमलोगोंमें उपयुक्त नियम पालनके अभावसे अथवा शिक्षाके अभावसे, या औदासीन्यसे भयंकर बीमारियोंका प्रादुर्भाव हो चला है। उनके और भी अनेक कारण होंगे। किन्तु उन सबमें सहवास मुख्यतम है। परम पवित्र भावको भूलकर हम लोग केवल आत्म-तृप्ति और आनन्द-प्राप्तिके फेरमें पड़े रहते हैं और यही आनन्द हमारे सर्वनाशका कारण होता है। जो लोग अपना सर्वनाश कर चुके हैं, अपना सर्वस्व नष्ट कर चुके हैं, उनको किसी प्रकारकी सलाह देना व्यर्थ है। जो लोग संसारमें अभी अभी प्रविष्ट हुए हैं, अथवा जो प्रविष्ट होनेके अभिलाषी हैं, उन्हें अत्यन्त उचित है, कि उपयुक्त बातोंपर ध्यान देकर अपनेको, अपने कुटुम्बको और अपने देश तथा जातिको सुखी बनावें।

१५

प्रकृति-निर्णय

प्राचीन पण्डितोंने स्त्रियोंके शील स्वभाव और प्रकृति आदि बातों पर भी विचार किया है। उन्होंने बतलाया है, कि वात, पित्त और कफ आदि भिन्न भिन्न प्रकृतिकी स्त्रियोंमें क्या क्या विशेषता होती हैं। इन बातोंके ज्ञानसे दो लाभ होते हैं। एक तो यह, कि स्त्रीकी प्रकृति जानकर तदनुसार आचरण किया जा सकता है और इससे दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि हो सकती है। दूसरा लाभ यह है, कि यदि वर कन्याकी प्रकृति मिला कर उनके विवाह किये जायँ, तो उनकी सन्तान सर्वगुण सम्पन्न और निरोग हो सकती है। विवाहके समय पौराणिक पण्डित अब भी वर कन्याकी नाड़ी, योनि और गण आदिका विचार करते हैं, किन्तु

अब वे केवल लकीरके फकीर रह गये हैं। विचार करनेपर मालूम होता है, कि वह वर कन्याके शारीरिक स्वाथ्यकी परीक्षा थी, जो शायद अब इस रूपमें परिणत हो गयी है। कामसूत्र आदि काम विज्ञानके ग्रन्थोंमें स्त्री पुरुषोंके गुह्यांगकी बड़ाई छोटाई और उनके गुणोंपर पर्याप्त विचार किया गया है। इसी प्रकार कौन गुणोंवाली स्त्री देव, मनुष्य या राक्षस प्रकृतिकी है आदि बातोंका भी उल्लेख किया गया है। इससे हमारी उपरोक्त धारणाकी पुष्टि होती है, क्योंकि विवाहके समय इन बातोंपर विचार कर लेनेसे विवाहके बाद दाम्पत्य-प्रेममें व्याघात पड़नेकी सम्भावना नहीं रहती। आज यह सब बातें स्मृतिगत हो जानेपर भी उनकी उपयोगिता कम नहीं हुई। इसीलिये हम इन बातोंको यहाँ अंकित कर रहे हैं। बात, पित्त और कफके न्यूनाधिक्यसे स्त्रियोंकी प्रकृति कितने तरहकी :होती है यह बतलाते हुए रति रहस्यमें कोका पण्डितने लिखा है कि :—

गूढ़ास्थि ग्रंथि गुल्फा मृदु मधुर वचाः श्लेष्मला पद्ममृद्वी,
व्यक्तास्थिग्रंथि गुल्फा, युवतिरशिशिरैरंगकैःपित्तला स्यात्।
रूक्षा शीतोष्ण गात्री, वदति बहुतरं वातलाश्लेष्मलापि,
स्यादुष्णा नव्यसूता शिशिरतर तनुर्गर्भिणी पित्तलापि॥

जिसकी हड्डियोंकी ग्रन्थियाँ या गांठे और गुल्फ

(पैरकी गांठें) गूढ़ हैं, अर्थात् छिपी हुई हैं, जिसकी वाणी :कोमल और रसीली है, जिसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग कमल जैसे कोमल है, इस प्रकारको रमणी श्लेष्म-प्रकृतिकी होती है। (साधारणतः तीनों प्रकृति साथ साथ रहती हैं, परन्तु २ गौण और १ मुख्य होती है, इसलिये मुख्य नामसे मशहूर होती है) जिसकी हड्डियोंकी गाठें और गुल्फ प्रकट हैं, जिसकी देह गर्म रहती है, वह पित्त-प्रकृति या पित्त-प्रधान-प्रकृति हैं। जिसका रंग काला होता है, देह गर्म और ठंडी रहती है, और जो बहुभाषिणी होती है, वह बात-प्रकृति होती है। परन्तु श्लेष्म प्रकृतिवाली का शरीर भी गर्म रहता है, यदि नव-प्रसू हो, अर्थात् जिसने कुछ ही दिन पहले बच्चा जना हो और पित-प्रकृतिवालीकी देह भी ठंडी हो जाती है, यदि वह गर्भिणी हो। इसे प्रकृतिका व्यभिचार या व्यत्यय कहना चाहिये।

साधारणत: शीत, गर्म और शीतोष्ण—श्लेष्म, बात और कफ-प्रकृतिके लक्षण यथाक्रम माने गये हैं, परन्तु विशेष अवस्थामें उपर्युक्त प्रकारसे परिवर्त्तन भी हो जाता है। यह बात पाठकोंको स्मरण रखनी चाहिये। किन्तु ये लक्षण सर्व-सम्मत नहीं हैं। "गुणपताका" नामक पुस्तकमें अन्य प्रकारसे विचार किया गया है।

स्निग्ध नख नयन दशना निरनुशया मानिनी स्थिर स्नेहा।
सुस्पर्श शिशिर मांसल वराङ्ग विवराङ्गना श्यामा॥

अर्थात्, जिसके नाखून, नयन और दांत स्निग्ध हों, जिसे कृत-कर्म्मोंपर अनुताप न हो, जो मानिनी हो, जिसका सख्यभाव स्थायी हो, रंग श्याम हो, वह श्लेष्म प्रकृतिकी है। यह प्रकृति अन्य प्रकृतियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ होती हैं। पित्त प्रकृतिकी नायिकाके लक्षण उसमें इस प्रकार बतलाये गये हैं—

भवति विलास प्रकृतिः पित्त प्रकृतिस्तु मध्यमा ज्ञेया।
सा भवति गौरवर्णा पीन कुचा रक्त नख नयना॥
कटु गन्धि प्रस्वेदा क्षणंच कुपिता क्षणं प्रसन्ना च।
शिशिर रताऽऽतप विमुखी, श्लेष्म प्रशिथिल वराङ्गी च॥

अर्थात् जिसकी प्रकृति विलासिनी होती हैं, रंग गोरा होता हैं, कुच मोटे होते हैं, नाख़ून और हथेलियाँ सुर्ख रंगकी होती है, जिसके पसीनेसे कड़वी गन्ध आती है, जो क्षण ही भरमें रुष्ट और क्षण हीमें सन्तुष्ट हो जाती है, जो शीतसे प्रीति रखती है, गर्मीसे विमुख रहती उसे पित्त-प्रकृतिकी नारी समझना चाहिये। बात प्रकृतिकी नारीके लक्षण यह हैं :—

मेधाविनी सुकुशला वहति रते निश्चितं मृदुताम्।
पवन-प्रकृतिः परुषा भ्रमणरतास्याब्दहु प्रलापा च॥

जो बुद्धिमती और चतुर होती है, जिसे सम्भोगसे कम प्रेम होता है, जो कठोर और बहुत बोलनेवाली होती है, जो घूमना घामना बहुत पसन्द करती है, इस लक्ष-णोंसे विशिष्ट रमणी बात-प्रकृतिकी होती है।"

इस प्रकार तीनों प्रकृतियोंका अलग अलग वर्णन किया जा चुका। अब एक ही प्रकृति अवशिष्ट रह जाती है। अर्थात्—जिसमें तीनों प्रकृतियाँ बराबर हैं, न कोई अधिक और न कोई कम। उसका लक्षण यह है। यथा—

दर दग्ध द्रुम धूसरवर्णा बहु भोजना च कठिनाङ्गी।
स्फुटिताग्र रूक्षकेशी कठिन तरा श्याम नख नयना॥

कुछ जले हुए वृक्षके समान जिसका धूसर रंग हो, जो बहुत भोजन करनेवाली हो, जिसके अङ्ग प्रत्यङ्ग कठोर हों, जिसके केश फटे हुए और रूखे हों, जो सुरतमें देरसे तृप्त होती हो, जिसके नाखून और नयन श्याम रंगके हों, इस प्रकारकी स्त्रीको क्या समझना चाहिये यह बतलाते हुए कोकाजीने लिखा हैं कि :—

संकीर्ण लक्षणेन च संकीर्ण प्रकृति रेव विज्ञेया।

अर्थात् मिले हुए लक्षणोंसे मिश्रित प्रकृतिकी समझनी चाहिये। इसको उन्होंने "अधमा नारी" कहकर सम्बोधन किया है।

यद्यपि कामेच्छा मनुष्य मात्रके हृदयमें क्षुधाकी भांति सदा ही विद्यमान रहती है, तथापि प्रकृति भेदसे भिन्न भिन्न स्त्रियोंमें यह इच्छा भिन्न भिन्न समयमें जोर पकड़ती है। रति रहस्यकारने बतलाया है, कि श्लेष्म प्रकृतिकी स्त्रियोंको शिशिर वसन्तमें, पितप्रकृतिकी स्त्रियोंको वर्षा और शरदमें तथा वात-प्रकृतिकी स्त्रियोंको वसन्त और ग्रीष्ममें विशेष रूपसे कामेच्छा उत्पन्न होती है। दाम्पत्य प्रेमकी अभिवृद्धि करनेके लिये नायकको स्त्रियोंकी प्रकृति समझकर आचरण करना चाहिये।

वैद्यक शास्त्रमें यह भी बतलाया गया है, कि दाम्पत्य-संयोगके समय वीर्य, रज, स्त्रीका भोजन, स्त्रीकी चेष्टा और गर्भाशय—इन पांचोंमें जो दोष अर्थात् जिस प्रकृतिके लक्षण अधिक होते हैं, उसीके अनुसार गर्भस्थ बच्चोंकी प्रकृति निर्मित होती है। इसलिये व्याहके समय स्त्री और पुरुषकी प्रकृति पर अवश्य ध्यान रखना चाहिये। यदि दुर्भाग्यवश दोनोंकी प्रकृति बुरी होगी, तो उनके संयोगसे जो सन्तान उत्पन्न होगी, वह और भी बुरी होगी। यह विषय उपयोगी होनेके कारण वैद्यक शास्त्रसे प्रत्येक प्रकृतिके लक्षण हम विस्तार पूर्वक अंकित करते है :—

वात प्रकृतिके लक्षण।

जो मनुष्य थोड़ा सोता और बहुत जागता है, जिसके बाल छोटे और थोड़े होते हैं, जिसका शरीर दुबला पतला होता है, जो जल्दी जल्दी बोलता है, जिसका शरीर सूखा होता है, जिसका चित्त एक जगहमें नहीं ठहरता और सोता हुआ स्वप्नमें जो आकाश मार्गमें चलता है, यह मनुष्य वात प्रकृति कहलाता है।

वाग्भट्टमें लिखा है, कि वात प्रकृतिवाले मनुष्यका स्वभाव प्रायः दुष्ट होता है। उसे ठण्डी चीजोंसे द्वेष होता है। उसकी धृति, स्मृति, बुद्धि, चेष्टा, मैत्री, दृष्टि और चाल चञ्चल होती है। वह बहुत बकवादी, कम सोनेवाला, कम जीनेवाला तथा निर्बल होता है। वह टूटी फूटी बातें बका करता है, भोजन अधिक करता है, भोग विलास, गाने, हँसने, शिकार और लड़ाई झगड़ेमें अधिक रुचि रखता है। मीठे, खट्टे, गर्म और चरपरे पदार्थ उसके अनुकूल होते हैं। पानी पीते समय उसके गलेसे आवाज निकलती है। वह दृढ़, जितेन्द्रिय, स्त्रियोंका प्यारा और कम सन्तानवाला होता है। वह स्वप्नमें पर्वत, आकाश और वृक्षादि पर चलता है। वात प्रकृति-वाला मनुष्य भाग्यहीन, दूसरेको देखकर जलनेवाला और

चोर होता है। उसके बाल और शरीर फटा हुआ सा तथा धूमिल रंगका होता है। आंखें गोल, सुन्दरता रहित, धूमिल और रूखी होती हैं तथा सोते वक्त मुर्देके समान खुली रहती हैं। शरीर दुबला और लम्बा होता है तथा पांवकी पिंडलियां गांठ-गँठीली होती हैं। उसकी प्रकृति, आवाज और रूप आदि कुत्ते, गीदड़, ऊँट, चूहे, कौवे और उल्लूके समान होते हैं।

कफ प्रकृतिके लक्षण।

जो मनुष्य क्षमावान, वीर्यवान, महाबली, मोटा, बँधे हुए शरीरवाला, समडौल और स्थिरचित्त होता है, एवम् स्वप्नमें नदी, तालाब आदि जलाशयोंको देखा करता है, वह कफ प्रकृतिवाला होता है।

वाग्भट्टमें लिखा है, कि कफका स्वरूप चन्द्रके समान होता है, इसलिये कफ प्रकृतिवाला मनुष्य सौम्य होता है। इसकी सन्धियां, हड्डियां और मांस आपसमें मिले हुए, चिकने और गूढ़ होते हैं। इसके शरीरका रंग दूब, मूंज, कुशा, गोलोचन, कमल या सुवर्णके समान होता है, तथा भुजाएँ लम्बी, छाती पुष्ट और चौड़ी होती है। इसका कपाल बड़ा, अंग कोमल, शरीर सम और सुन्दर तथा बाल

घने और काले होते हैं। आंखोंके कोये लाल और चिकने होते हैं।

इस प्रकृतिवाला मनुष्य भूख, प्यास, दुःख और क्लेशसे दुःखित नहीं होता। यह मनुष्य बुद्धिमान, सतोगुणी, वचन पालनेवाला, शृंगार रस-प्रिय, धर्म्मात्मा, कठोर वचन न बोलनेवाला और गुप्त रीतिसे दुश्मनके साथ बहुत दिनों तक दुश्मनी रखनेवाला होता है। इसकी आवाज बादल, समुद्र, मृदंग या शंखके समान होती है। इसके नौकर और पुत्र बहुत होते हैं। यह मनुष्य उद्योगी और नम्र होता है तथा कड़ुवे, कसैले तीक्ष्ण, गर्म और रूखे पदार्थोंको पसन्द करता है एवं भोजन थोड़ा करता है, क्योंकि इसे भूख कम लगती है। यह बुद्धिमान और कम क्रोधी होता है। लेकिन काम करनेमें देर करता है। विचार ही विचारमें बहुत समय खो देता है। यह मनोहर बात बोलनेवाला, गम्भीर हृदय, क्षमावान, अधिक सोनेवाला सरल स्वभाव, विद्वान, लज्जालु, गुरु भक्त तथा प्रेमको स्थिर रखनेवाला होता है। स्वप्नमें यह कमल या चकवा चकवियोंकी पंक्तिसे युक्त जलाशय देखा करता है। इस प्रकृतिवाला मनुष्य विष्णु, रूद्र, इन्द्र, वरुण, अग्नि, हाथी, घोड़ा, सिंह, गाय और बैलके स्वभाववाला होता है।

पित्त प्रकृतिके लक्षण ।

जिस मनुष्यके बाल थोड़ी अवस्थामें ही सफेद हो जाते हैं, जिसको बहुत पसीना आता है, जो क्रोधी, विद्वान, बहुत खानेवाला, लाल आंखोंवाला तथा स्वप्नमें अग्नि, तारे, सूर्य, चन्द्र, बिजली आदि चमकीले पदार्थोंको देखनेवाला होता है, उसे पित्त प्रकृति समझना चाहिये ।

वाग्भट्टमें लिखा है, कि पित्त अग्निरूप होता है, इसीलिये पित्त प्रकृतिवाले मनुष्यको भूख और प्यास बहुत लगती है । इस प्रकृतिवाला मनुष्य शूरवीर, अत्यन्त मानी, फूल चन्दनादिके लेपनको चाहनेवाला, सुचरित्र, पवित्र, अपने आश्रयमें रहनेवालों पर दया दृष्टि रखनेवाला, साहसी, बुद्धिमान, भयभीत शत्रुओंकी भी रक्षा करनेवाला और स्त्रियोंसे कम प्रीति रखनेवाला होता है । इस प्रकृतिवाला मनुष्य धर्मका द्वेषी होता है । इसके शरीरमें पसीना बहुत कम आता है और यह मीठे, कड़ुवे, कसैले तथा शीतल पदार्थों पर रुचि रखता हैं । इसके शरीरमें बदबू सी आया करती हैं । इसे क्रोध बहुत आता है और यह ईर्षा द्वेष अधिक रखता है ।

इस प्रकृतिवालेका शरीर गोरा और गर्म होता है तथा हाथ पांव और मुँह लाल होता है । बाल पीले और रोएँ

थोड़े होते हैं। इसकी सन्धियोंके बन्धन और मांस ढीला होता है। इसमें वीर्य कम और कामेच्छा भी कम होती है। इसकी आंखोंकी पुतलियां पीली होती हैं। इसकी आंखें क्रोध करने, शराब पीने या सूर्यकी चमकसे तत्काल लाल हो जाती हैं। इस प्रकृतिवाला मनुष्य मध्यम आयु भोगता है, क्लेशसे डरता है और बलवान होता है। इसकी प्रकृति बाघ, रीछ, भेड़िये या बन्दरसे मिलती है। जब यह सोता है, तब इसे स्वप्नमें कनेर या ढाक आदिके फूल जलती हुई दिशायें, तारोंका टूटना, विजली, सूर्य और अग्नि आदि चीजें दिखाई देती हैं।

इसके अतिरिक्त रति रहस्यकारने स्त्रियोंके स्वभावको कई भागोंमें विभक्त किया है। संसारमें लोग प्रायः कहा करते हैं, कि अमुक मनुष्य, देवता है अथवा अमुक मनुष्य राक्षस है। मनुष्यका स्वभाव और उसके आचार विचारही एक ऐसी वस्तु हैं, जो मनुष्यको देवता और राक्षसकी कोटिको पहुंचा देते है। अतएव संसारमें यह जाननेकी आवश्यकता पड़ती है कि, हम जिससे व्यवहार कर रहे हैं, वह किस प्रकृतिका है। स्त्री और पुरुषका व्यवहार हमारे धर्म-शास्त्रके अनुसार इसी जीवनमें समाप्त नहीं हो जाता। वह युगों पर्यन्त चलता रहता है। न जानें, उसका अवसान

कब होता है। अतएव पति और पत्नी, दोनोंके लिये आवश्यक है, कि वे परस्परकी प्रकृतिसे परिचित हो जायँ। तभी उनका व्यवहार ठीक ठीक चल सकता है, और तभी उनमें दाम्पत्य-प्रेमकी वृद्धि हो सकती है। रति रहस्यमें स्व-भावानुसार स्त्रियोंका वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है:—

सुरभि शुचि-शरीरा सुप्रसन्नानना च।
प्रचुर धन जनाढ्यां भामिनी देव सत्वा॥

अर्थात् सुगंधित और पवित्र शरीरवाली, प्रसन्न वदना विशेष धन और जनसे विभूषित रमणीको देव-सत्वा—देव स्वभाववाली समझना चाहिये।

व्यपगत गुरुलज्जोद्यान पानार्णवाद्रौ।
स्पृहयति रति सिद्ध्यै रोषणा यक्षसत्वा॥

अर्थात् जो गुरुओंसे लज्जा न करती हो, उपवन, पान-स्थान, समुद्र और पर्वत इत्यादि पर संभोगकी इच्छुक हो, क्रोधी हो, उसे यक्ष-सत्वा या यक्ष-प्रकृतिकी स्त्री समझना चाहिये।

भवति सरल चित्ता दक्षिणातिथ्य रक्ता।
स्फुटमिह नरसत्वा खिद्यते नोपवासैः॥

कोमल चित्तवाली, आतिथेयी—अभ्यागतोंका उचित और उपयुक्त आदर सत्कार करनेवाली, चतुर और

उपवासोंसे खिन्न न होनेवाली स्त्रीको नर-सत्वा या मानुषी समझना चाहिये।

श्वसिति बहुतरं या जृम्भते भ्रान्ति शीला।
स्वपिति सतत मेव व्याकुलानाग-सत्वा॥

जो बहुत अधिक निःश्वास लेती है, जो जँभाई लिया करती है, जिसे घूमना बहुत पसन्द होता है, जो सोनेकी विशेष इच्छा करती है, और सतत व्याकुल रहती है, वह स्त्री नाग-सत्वा या सर्प स्वभावकी होती है।

अपेत रोषोज्वल दीप्तवेषां स्रग्गंध धूपादिषु बद्ध रागाम्।
संगीतलीला कुशलां कलाज्ञां गन्धर्वसत्वां युवतीं वदन्ति॥

अर्थात्, जिसके क्रोध न हो, जिसका वेश उज्वल और दिव्य हो, माला, गन्ध और धूप दीपादिके प्रति जिसका अत्यधिक प्रेम हो, जो संगीत और नृत्य आदि कलाओंमें कुशल हो, इस प्रकारकी स्त्री गन्धर्व स्वभाववाली है।

मानोज्झिताऽति बहुभुक् प्रकटोष्णगात्री।
भुङ्क्ते च मद्य पललादि पिशाच सत्वा॥

मान-हीना—जिसे आत्म-गौरवका बोध न हो, जो बहुत भोजन करती हो और तामस-भोजन पसन्द करती हो, उसे पिशाच-सत्वा या पिशाच-प्रकृतिकी स्त्री समझना चाहिये।

दृष्टिं मुहुर्भ्रमयति प्रबलाशनार्त्ति ।
रुद्वेगमेति विपुलं किल काक-सत्वा ॥

जिसकी दृष्टि चपल हो अर्थात् स्थिर न रहती हो —इधर उधर घूमा करती हो, जो बराबर भूखी बनी रहे या जिसे हमेशा भोजन करनेकी इच्छा बनी रहे, उसे काक प्रकृतिकी स्त्री समझना चाहिये ।

उद्भ्रान्त दृक्करज दन्त रण प्रसक्ता ।
स्याद्वानर प्रकृतिरस्थिर चित्त-वृत्तिः ॥

जिसकी दृष्टि उद्भ्रान्त हो, नाखून व दाँत तेज हों, और चित्त चञ्चल हो, उसे वानर प्रकृतिकी स्त्री समझना चाहिये ।

या दुष्ट विप्रिय वचो रचना च नारी ।
रक्ता विट प्रहरणे खर सात्विका सा ॥

जिसकी बातें बेजड़ हों और जो विशेष कामुकी हो, उसे खर-सात्विक या गर्दभ स्वभावकी स्त्री समझना चाहिये ।

रति-रहस्यकारने न जाने क्यों, स्त्रियोंकी भाँति पुरुषोंकी प्रकृतिका निराकरण नहीं किया। वे केवल यही बतला कर रह गये हैं, कि स्त्रियोंकी प्रकृति समझ कर पुरुषोंको उनके साथ समुचित व्यवहार करना चाहिये ।

इसमें कोई सन्देह नहीं, कि ऐसा करनेसे बहुत कुछ आनन्द और सुख मिल सकता है, परन्तु मान लीजिये कि देव प्रकृतिका पुरुष किसी पिशाच या गर्दभ स्वभावकी स्त्रीके पाले पड़ गया, तो उसकी क्या अवस्था होगी? वैसी अवस्थामें पुरुषको स्त्री पर अधिकार रखना और अपने घरमें सुख शान्ति बनाये रखना बहुत ही कठिन हो जायगा। इसलिये यह अधिक पसन्द करने योग्य है कि प्रत्येक स्त्री पुरुषका विवाह उपयुक्त प्रकृतिके स्त्री पुरुषसे हो। ऐसा होनेसे पुरुषको स्त्रीसे या स्त्रीको पुरुषसे दब कर रहना न होगा। दोनों समान होंगे और एक दूसरेके प्रति समान व्यवहार कर सकेंगे। जहाँ तक हो सके, ऐसा ही करना चाहिये। यदि न हो सके तो उस अवस्थामें रति-रहस्यकारकी सलाह मान्य करने योग्य है। स्त्रियोंकी प्रकृत्ति समझ कर उनके साथ वैसा ही व्यवहार करनेसे भी दाम्पत्य-जीवन बहुत कुछ सुखमय बनाया जा सकता है।





प्रीति—विधान



काम विज्ञानके प्राचीन ग्रन्थोंमें इस विषय पर भी विचार किया गया है, कि पद्मिनी आदि नारियां किस प्रकारकी शय्या पसन्द करती हैं और किन उपायोंके अनुष्ठानसे उनकी मनस्तुष्टि होती है। पाठकोंकी जानकारीके लिये रति-शास्त्रसे हम इस विषयको उद्धृत करते हैं। आशा है कि इससे वे समुचित लाभ उठावेंगे।

पद्मिनीकी शय्या—इस जातिकी नारी यावतीय नारी जातिसे श्रेष्ठ होती है। युवती पद्मिनीकी तरह कोमलांगी रमणी पृथ्वीमें दूसरी नहीं। अतएव यह कहना अनुचित न होगा, कि उसके अनुरूप कोमल शय्यायें साधारणतः नहीं देखी जातीं। वह जिस तरहकी शय्यामें शयन करेगी, उसीमें उसे वेदना अनुभूत होगी। अतः यदि

निर्जन पुष्पवनमें फूलोंकी सेज बिछायी जाय और उसपर पद्मिनी शयन करे तो उसके हृदयको यत् किञ्चित् शान्ति मिल सकती है—उसके हृदयको थोड़ा सुख मिल सकता है। यदि मालती, मल्लिका, यूथिका, नील-कमल, रक्त-कमल चन्दन और कुसुम प्रभृति अत्युत्तम फूलों द्वारा शय्या निर्मित की जाय, फिर गन्ध द्वारा सुवासित की जाय, और उसपर पद्मिनी जातिकी नारी शयन करे तो उसे परम सुख प्राप्त होता है।

चित्रिणीकी शय्या—चित्रिणी जातिकी नारी मनोरञ्जन या मनस्तुष्टिके लिये कपास—रूईकी शय्या हो और उत्कृष्ठ सुगन्धित वस्तुओं द्वारा सुवासित की गयी हो, तो वह परम प्रसन्न होती है।

शङ्खिनीकी शय्या—शङ्खिनी जातीय नारीकी प्रसन्नताके लिये कपासकी दूधके समान सफेद, समुन्नत और सुकोमल शय्या होनी चाहिये।

हस्तिनीकी शय्या—पुष्प शय्या या कपासकी बनी हुई सेज हस्तिनी जातिकी रमणीकों प्रसन्न नहीं कर सकती। वह केवल ऐसी शय्याओंसे अपना चित्त विनोदन नहीं कर सकती। उसके चित्त-रञ्जनके लिये यदि ये शय्यायें हों, तो अच्छा ही है, यदि न हों तो

भी कोई हानि नहीं, परन्तु उसे अपने पतिके साथ शयन करनेको अवश्य मिलना चाहिये। यदि उसे अपने पतिके साथ निरन्तर शयन करनेको मिले, तो खाली जमीनकी सेजसे ही वह सन्तुष्ट हो जायगी। उसके लिये शय्याके आडम्बरोंकी जरूरत नहीं है, वह पतिके साथ शयन करना ही पसन्द करती है। पुष्प शय्या और कार्पास शय्याका उसके निकट कोई मूल्य नहीं है। अतएव स्वामि-विरहिणी होने पर वह अमूल्य शय्याओंको भी पदाघात कर सकती है।

संक्षेपमें शय्या वर्णन अंकित कर चुके। अब स्त्रियोंकी मनस्तुष्टिके उपायों पर हम विचार करेंगे। आचार्य सिद्ध नागार्जुनने अपने रति-शास्त्रमें यह विषय इस प्रकार अंकित किया है :—

पद्मिनी नारीका प्रीति-विधान—अत्युत्तम विभूषण और मधुर वाणी, पद्मिनीके चित्तरञ्जनको यथेष्ट है। स्वामीको उचित है कि पद्मिनी जातीय नारीको अपने बाम-भागमें सुखासन पर बैठा कर उससे अनेक प्रकारकी धर्म सम्बन्धी बातोंकी आलोचना करे। इससे भी उसका यथेष्ट मनोरञ्जन होगा। यह भी ध्यान रखने योग्य हैं, कि पद्मिनी नारी बहुत आत्माभिमानिनी होती है, अतएव उसके सम्मुख नारी जातिकी निन्दा भूल कर भी न करना चाहिये।

इस प्रकारके अनुष्ठानोंसे पद्मिनीको अवश्य प्रसन्नता प्राप्त होती है।

चित्रिणीका प्रीति-विधान—चित्रिणी जातीय नारीको अपने पास आदर पूर्वक बैठा कर प्रेमपूर्ण वाक्योंका प्रयोग करना चाहिये और स्नेह पूर्वक अनेक प्रकारके उपाख्यान सुनाना चाहिये। चित्रिणी नारीके मनोरञ्जनार्थ अनेक प्रकारके भोग द्रव्य, भाँति भाँतिके उत्तम उत्तम अलंकार सुन्दर वस्त्र आदि देना चाहिये और ताम्बूल प्रभृतिसे सत्कार करना चाहिये। इस प्रकारके अनुष्ठानोंसे चित्रिणी प्रसन्न और परितृप्त होती है।

शङ्खिनीका प्रीति-विधान।—शङ्खिनीको प्रसन्न करना उतना आसान नहीं है, जितना पद्मिनी या चित्रिणीको आचार्य सिद्ध नागार्जुनका कथन है, कि इसको सन्तुष्ट करना बहुत कठिन है। बड़ा दुरूह है। यह सहजमें सन्तुष्ट होना जानती ही नहीं। यदि उसे सब जातिकी स्त्रियोंकी अपेक्षा उत्तम रत्न और विविध उत्कृष्ट और अमूल्य विभूषणादि प्राप्त हों, तो उसका मनोरञ्जन हो सकता है। अर्थात् गांव भरमें जितनी स्त्रियां रहती हों, उनके शरीरमें जितने प्रकारके अलंकार और आभूषण देखे जाते हों, यदि

उनकी अपेक्षा अधिक मूल्यवान् अलंकार इत्यादि शङ्खिनीको प्रदान किये जायं, तो वह सन्तुष्ट होती है। इस जातिकी नारीको निरन्तर अपने निकट बैठा करके प्रणय-सम्भाषण-द्वारा सन्तुष्ट करना चाहिये।

हस्तिनी नारीका प्रीति विधान—इसको सन्तुष्ठ करना कठिन और सरल दोनों ही है। दोनों बातें पुरुषकी शक्ति पर निर्भर हैं। इसके सन्तुष्ट करनेके लिये न दिव्य अलंकारोंकी जरूरत है, न प्रेम-सम्भाषण की। इसका स्वभाव विचित्र होता है। यह अधिक भोजन करना—विशेषतः तामस पदार्थों का अधिक भोजन—बहुत पसन्द करती है। अतएव इसके लिये मत्स्य और मांस प्रभृति तामस आहार्य वस्तुओंकी व्यवस्था होनी चाहिये। इस जातिकी रमणी सर्वदा पुरुष-संगकी कामना करती है। यदि निरन्तर पतिका संग उसे प्राप्त होता रहे, तो वह परम परितुष्ट होती है।

जाति भेदसे इस प्रकार नारियोंको सन्तुष्ट किया जा सकता है। परन्तु अवस्थाके अनुसार इनकी रुचि बदलती भी रहती है। किस अवस्थामें स्त्रियाँ किस संज्ञासे सम्बोधित की जाती है और किन वस्तुओंपर उस समय

उनकी अधिक अभिरुचि होती है यह बतलाते हुए रति-रहस्यकारने लिखा हैं कि:—

बालास्यात षोडशाब्दास्त दुपरितरुणी त्रिंशतियवि दूर्ध्वम् ।
प्रौढास्यात् पञ्चपञ्चाशदवधि .परतो वृद्धतामेतिनारी ॥

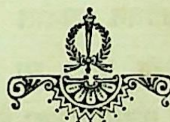
अर्थात् सोलह वर्षकी उम्र तककी स्त्रियोंकी संज्ञा "बाला" होती है। इसके बाद १६ से ३० वर्षतक "तरुणी" संज्ञा रहती है। और ३० से ५५ वर्षतक "प्रौढ़ा" संज्ञा होती है। इसके बाद "वृद्धा" संज्ञा होती है। अर्थात् अवस्थानुसार स्त्रियाँ वाला, तरुणी, प्रौढ़ा और वृद्धा इन चार संज्ञाओंसे सम्बोधित होती हैं। कौन किस प्रकार और किस वस्तुसे प्रसन्न होती है, यह रतिरहस्यके निम्नलिखित श्लोकमें बतलाया गया हैं :—

बाला ताम्बूल माला फल रस सुरसाहार सम्मान हार्या ।
मुग्धाऽलंकार हार प्रमुख वितरणैः रज्यते यौवनस्था ॥
सद्भावा रब्ध गाढोद्भटरत सुखिता, :मध्यमा रागलुब्धा ।
वृद्धालापैः प्रहृष्टा भवति गतवया गौरवेणाति दूरम् ॥

अर्थात् बालाको ताम्बूल, माला, फल, रस, सरस आहार और सम्मान, तथा अलंकार आदि वस्तुओंसे प्रसन्न करना चाहिये। क्योंकि इन वस्तुओं पर उसका विशेष प्रेम होता है। (श्लोककी दूसरी पंक्तिमें मुग्धा लिखा

हुआ है, वह "बाला" का नामान्तर ही समझना चाहिये, उसका शब्दार्थ है, अप्रगल्भा, भोली भाली, या सरला अथवा चातुर्य जैसे कपट आदिसे रहित) तरुणीकी सन्तुष्टिके लिये सद्भावसे आरम्भ की हुई, गाढ़ सुरति और आलिङ्गन प्रभृति पर्याप्त है। प्रौढा प्रेमोत्सुक होती है, अतएव उसकी उसी उपायसे तृप्ति करनी चाहिये और वृद्धा केवल मृदु-वचनोंसे ही सन्तुष्ट हो जाती है।

दाम्पत्य-प्रेमकी अभिवृद्धिके लिये इन बातोंका ज्ञान परमावश्यक है और इसलिये हमने इनका वर्णन किया हैं। जाति और अवस्थाके अनुसार स्त्रियोंकी अभिरुचि समझ कर, उन्हें प्रसन्न रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये। ऐसा करनेसे दाम्पत्य-प्रेममें बृद्धि होती है और विवाहित जीवन भार रूप न होकर आनन्दमय व्यतीत होता है।





सम्बन्ध-निर्णय



स्त्री और पुरुषोंके भिन्न भिन्न भेद हम पहले ही अंकित कर चुके हैं। यह भेद निरर्थक नहीं हैं। काम विज्ञानके प्राचीन ग्रन्थोंमें इस बात पर भी विचार किया गया है, कि किस जातिकी स्त्रीके साथ किस जातिके पुरुषका विवाह सम्बन्ध होना उचित है और उस सम्बन्धसे क्या लाभ होता है। उन ग्रन्थोंमें यह बतलाया गया है, कि अमुक जातिकी स्त्री और अमुक जातिके पुरुषोंकी जननेन्द्रियोंमें साम्य होता है, अतः उनका विवाह सम्बन्ध होनेसे वे आनन्दमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं। न स्त्रियोंको किसी प्रकारका कष्ट या असन्तोष होता है, न पुरुषोंको ही विडम्बनामें पड़ना पड़ता है।

प्राचीन पण्डितोंने निःसंकोच भावसे स्वच्छन्दता पूर्वक इस विषयपर लेखनी चलायी है। उन्होंने स्त्री और

पुरुषोंकी जननेन्द्रियोंके सम्बन्धमें जो कुछ लिखा है, वह बहुत सुन्दर और लाभप्रद है। परन्तु आजकल हमारी समाज और आधुनिक सभ्यता आज्ञा नहीं देती, कि हम उसपर कुछ अधिक प्रकाश डाल सकें अथवा आचार्यों ने जो कुछ लिखा है, उसीको पाठकोंके सामने रख सकें। फिर भी हम इतना अवश्य कहेंगे, कि नारी और पुरुष जातिके परस्पर साम्य पर विचार अवश्य होना चाहिये। बिना इसके दाम्पत्य-जीवन सुखमय नहीं हो सकता। यदि स्त्री पुरुषोंके शील स्वभावमें, उनकी शारीरिक गठनमें वैषम्य या वैचित्र्य हुआ तो बतलाइये, कि वह मिलन किस प्रकार सुखकर एवम् मंगलमय हो सकेगा? दम्पति किस तरह वैवाहिक जीवनके महान् उद्देश्यको सिद्ध कर सकेंगे? कैसे इस संसारको नन्दनकाननके रूपमें परिणत कर सकेंगे?

आजकल कुछ लोग इन बातोंका विचार करना अनावश्यक अतएव व्यर्थ समझते हैं, परन्तु हमारी दृढ़ धारणा है, कि पुराने कालमें जिस प्रकार नर-नारियोंके जोड़ोंका मिलान किया जाता था, आवश्यकता इस बात की है, कि अब भी उसी प्रकार मिलान किया जाय। पद्मिनी, चित्रिणी या मृगी, वड़वा अथवा शश, और बृष इत्यादिका मिलन यदि

समयानुकूल न प्रतीत होता हो, तो कुछ और ही लक्षण स्थिर कर लेने चाहिये, परन्तु बिना कुछ देखे सुने, बिना कुच विचार किये लड़के लड़कियोंका व्याह कर देना, उनका गला घोटनेके समान है।

हम इस बातको मानते हैं, कि समयके परिवर्त्तनके साथ मानुषी शक्तियोंमें ह्रास या वृद्धि हुआ करती है, स्वभावोंमें भी कुछ न कुछ वैषम्य आ जाता है, ऐसी दशामें प्राचीन लक्षण सब समय ठीक नहीं भी घटित हो सकते हैं। परन्तु इससे यह नहीं कहा जा सकता, कि मानवी स्वभावकी जो शाश्वत विशेषता है, वह लुप्त हो जाती है। मनुष्य स्वभावमें, आकार प्रकारमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन होता ही रहता है, लेकिन पहले स्वभाव और आकार प्रकार-में बहुत कुछ साम्य रहता है, अतएव लक्षण भी कुछ कम ज्यादा ठीक ही ठीक घटित होंगे। अतएव प्राचीन लक्षणोंमें ही थोड़ा बहुत परिवर्त्तन कर लेना ठीक है। यदि प्राचीन लक्षण सर्वथा विरुद्ध हो गये हों, तो जरूर उनको आमूल बदल देना चाहिये, अथवा नये लक्षणोंका निर्माण करना चाहिये। परन्तु उन्हीं लक्षणोंसे काम चल जाता हो, तो उनका बदलना या उनके स्थान पर नये नियमों-का निर्माण करना व्यर्थ है।

यदि वेदके अनुशासनके सम्मुख हजारों वर्षों के बाद आज भी निःसन्देह और निःसंकोच हमलोग सिर झुका सकते हैं, मनु प्रभृति स्मृति, न्याय, वैशेषिक, और वेदान्त प्रभृति दर्शन शास्त्र तथा पुराण, एवम् चरक, सुश्रुत और बाग्भट्ट प्रभृति ग्रन्थ समान भावसे उपकारक हैं, तो काम सूत्र या रति-रहस्य आदि ग्रन्थोंमें कहे हुए लक्षण कैसे अनुपकारक या अनुपयुक्त हो गये, यह हमारी समझमें नहीं आता। यदि देश, काल और पात्रके हिसाबसे धर्म वाक्यों और वैद्यक ग्रन्थोंसे निदानोंकी व्याख्या की जा सकती हैं, तो "पद्मिनी" प्रभृतिके लक्षणोंमें क्यों न उसी नियमका अनुसरण किया जाय ?

भारतमें बेमेल विवाहोंकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है और उसके फल स्वरूप न जाने कितने घर उजड़ते जा रहे है। बेमेल विवाहोंके कारण हजारों स्त्रियां वेश्यावृत्ति स्वीकार कर लेती हैं और हजारों पुरुष दुराचारी हो जाते हैं। निःसन्देह यह बड़ी भीषण अवस्था है। चारों ओर इससे हाहाकार मचा हुआ है। देश पतनकी ओर अग्रसर हो रहा है और सन्तान दिन प्रतिदिन दीन हीन होती जा रही है। ऐसी अवस्थामें क्या यह संभव हैं, कि लोग इसी तरह लड़के लड़कियोंके बेमेल

बिवाह करते रहें और ऋषिमुनियोंकी बातोंपर ध्यान न दें ? हम समझते हैं, कि अब अधिक समय तक इन बातोंकी उपेक्षा न की जा सकेगी। समाजको इन बातोंपर ध्यान देना ही होगा। दाम्पत्य जीवन कैसे सुखमय बनाया जा सकता है और भावी सन्तान कैसे सुधारी जा सकती है, इसपर उसे बिचार करना ही होगा। इस समय भारत-वासियोंकी यह एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है। उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

काम-सूत्र और रति-रहस्य प्रभृति ग्रन्थोंमें यह बतलाया गया है, कि किस जातिके पुरुष और किस जातिकी स्त्रीका सम्बन्ध सुखकर हो सकता है। पहले पद्मिनी जातिकी नारी और शश जातिके पुरुषका कीर्तन किया गया है। स्त्रियोंमें पद्मिनी और पुरुषोंमें शश अच्छा माना गया है, अतः उन्हीं दोनोंका संयोग सुखकर और कल्याण प्रसू होता है:—

पद्मिनी प्रथमा नारी या प्रोक्ता पद्म गंधिनी।
सातु शशक पत्नी स्यात् जानी हि मुनि पुङ्गव॥

अर्थात् सिद्ध नागार्जुन कहते हैं, कि हे मुनि श्रेष्ठ, पद्म गन्धा पद्मिनी—जिसका पहले कीर्तन कर चुके हैं—उसका सम्बन्ध शश पुरुषके साथ होना चाहिये। इस विवाहका महत्व इस प्रकार बतलाया गया है :—

बहुना किमि होक्तेन मिलनं स्यात्तयोर्यदि ।
राजेते तौ महा भाग, लक्ष्मी नारायणाविव ॥

अर्थात् हे महाभाग, अधिक कहना व्यर्थ है, उन दोनों-का सम्बन्ध यदि हो जाय, तो वे साक्षात् लक्ष्मी नारायणकी भाँति शोभित होते हैं। इसी प्रकार चित्रिणी तथा मृगका सम्बन्ध उत्तम, सुखकर और मंगलमय बतलाया गया है। रति शास्त्रमें लिखा है कि :—

द्वितीया चित्रिणी नारी या प्रोक्ता चित्र सुन्दरी ।
साहि मृगस्य पत्नी स्यात् जानी हि नरपुंगव ॥

अर्थात् हे नर श्रेष्ठ, चित्र सुन्दरी चित्रिणी नारी जातिमें दूसरे नम्बरकी कही गई है। उसका सम्बन्ध मृग-जातीय पुरुषके साथ होना चाहिये, तभी युक्ति-संगत हो सकता है। इन दोनोंके विवाहका महत्व बतलाते हुए कहा गया है, कि इन दोनोंका सम्बन्ध ही लोकाकल्याणका हेतु हो सकता है। इसी तरह शंखिनी और वृषभका सम्बन्ध सुखमय होता है। कहा गया है कि :—

तृतीया शंखिनी नारी या प्रोक्ता क्षार गंधिनी ।
साहि वृषभ पत्नो स्यात् जानीहि नरसत्तम ॥

अर्थात् शंखिनी नारी जो क्षार गंधिनी बतलाई गई है, उससे बृषभका विवाह सम्बन्ध होना चाहिये।

जिस प्रकार पद्मिनीका शशकके साथ, चित्रिणीका मृग-के साथ और शङ्खिनीका वृषके साथ मिलन सुखकर होता है, उसी प्रकार हस्तिनी जातिकी नारीका संगम यदि अश्व-जातिके पुरुषके साथ हो, तो वह मिलन परम आनन्द दायक सिद्ध होगा। रति शास्त्रमें लिखा है कि :—

श्रृणु ब्रह्मन् प्रवक्ष्यामि चतुर्थी वारणाङ्गना।
साहि तुरग पत्नी स्यात् जानीहि ऋषिसत्तम॥
बहुना किमि होक्तेन मिलनं स्यात्तयोर्यदि।
सुखदं प्रीतिदश्चापि सत्य सत्यं न संशयः॥

अर्थात् सिद्ध नागार्जुन कहते हैं, कि हस्तिनी जातिकी स्त्री अश्वजातिके पुरुषकी स्त्री हो। अर्थात् अश्वके साथ हस्तिनीका मिलन ही युक्ति-सङ्गत है। इस विषयमें और अधिक क्या कहा जाय, यदि इन दोनोंका मिलन अर्थात् अश्व जातीय पुरुषके साथ हस्तिनी जातिकी रमणीका विवाह हो, तो वह मिलन सुखकर और प्रीति-प्रद होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

नारी और पुरुष भेद बतलाते समय हम पहले ही कह चुके हैं, कि वात्स्यायन मुनिने स्त्रियोंको मृगी, बड़वा और हस्तिनी तथा पुरुषोंको शश, वृषम तथा अश्व—इन तीन ही तीन भागोंमें विभक्त किया है। जिन आचार्यों ने चार

चार भेद माने हैं, उनके मतानुसार स्त्री पुरुषोंका विवाह सम्बन्ध ऊपर बतलाया जा चुका है। वात्स्यायन मुनिके मतानुसार तीन तीन वर्गों में बँटे हुए स्त्री पुरुषोंका सम्बन्ध इस प्रकार होना चाहिये :—

"शशस्य मृग्या, वृषस्य बड़वया, अश्वस्य हस्तिन्या सह सदृशः सम्प्रयोगोः रन्ध्रेन्द्रिय समाप्ति लक्षणः ॥" जय मङ्गला टीका।

शशका मृगीके साथ, वृषका वड़वाके साथ और अश्वका हस्तिनीके साथ मिलन या सम्प्रयोग सदृश अर्थात् उपयुक्त होता हैं। क्योंकि :—

रन्ध्र साधनयोराश्रयाश्रयिभावेन यंत्र साम्यात्।

अर्थात्, इन्हीं जातियोंकी जननेन्द्रियां बराबर होती हैं अतः दाम्पत्य संयोगके समय परस्पर तृप्ति प्राप्त होती है।

योग्य नारीके साथ योग्य पुरुषके मिलनके फलसे सन्तानकी जो अवस्था होती है, उसे हम रति शास्त्रसे उद्धृत करते हैं। योग्यायोग्य मिलनके सम्बन्धमें हम इसी परिच्छेदके पिछले पन्नोंमें लिख आये हैं। अर्थात् शशके साथ पद्मिनी, मृगके साथ चित्रिणी, वृषके साथ शङ्खिनी और अश्वके साथ हस्तिनीका सम्मिलन यदि हो, तो कहा जायगा कि, यह सम्मिलन योग्य है। किन्तु यदि वृषके

साथ पद्मिनीका और मृगके साथ हस्तिनीका—इसी प्रकार और भी समझ लीजिये—सम्मिलन हो तो वह अयोग्य कहा जायगा। हम यहाँपर योग्य और अयोग्य दोनों सम्मिलनोंका सन्तति पर जो प्रभाव पड़ता है, अथवा दोनोंके सम्मिलनसे सन्ततिकी जो अवस्था होती है, उसका वर्णन करते हैं :—

यदि शश जातिके पुरुषके मिलनसे पद्मिनी जातिकी नारी गर्भ-धारण करे, तो उस गर्भसे जो पुत्र पैदा होगा, वह परम धार्मिक और महा मना होगा।

यदि कन्याका जन्म हो, तो वह पतिव्रता, सुशीला और धर्मिष्ठा होती है।

मृग जातिके पुरुषके सहवाससे चित्रिणी जातीय नारी यदि पुत्र प्रसव करे तो वह पुत्र रूपवान् और बलवान् होता है।

यदि मृग जातिके वीर्यसे चित्रिणीके गर्भसे कन्या समुत्पन्न हो तो वह कन्या विद्याधरीकी तरह रूपवती होती है।

यदि बृष जातिके पुरुषके औरससे शंखिनी जातीय स्त्री गर्भ धारण करे और पुत्र प्रसव करे तो वह पुत्र महाबल, महाबाहु और महा बुद्धि सम्पन्न होता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह डाकिनी

स्वरूप होती है और विवाहके बाद वह कन्या अपने पतिको परित्याग कर पर पुरुषकी अंकशायिनी होती है।

यदि अश्व जातीय पुरुषके औरससे हस्तिनी नारी गर्भ धारण करे, तो उसके गर्भसे जो पुत्र उत्पन्न होगा, वह महा-योद्धा और महा बलिष्ट होगा। वह निर्भीक हृदय होता है। वन, दुर्गम प्रान्तर, जल और अग्नि आदि किसीसे नहीं डरता।

यदि इस गर्भसे कन्याका जन्म हो, तो वह चरित्र-हीन होती है और निरन्तर मदन-तापसे तप्त रहकर पर पुरुष-की कामना करती है।

यह तो हुई योग्य-सम्मिलनकी व्यवस्था। यदि अयोग्य सम्मिलन हुआ तो सन्ततिकी अवस्था इस प्रकार होती है :—

शश जातीय पुरुषके वीर्यसे यदि हस्तिनी जातिकी नारी गर्भवती हो और इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह पुत्र दुर्बल और अल्पायु होता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह कन्या रूप-वती होगी, लेकिन अल्पायु।

यदि शश जातीय पुरुषके सहवाससे शंखिनी जातिकी स्त्री गर्भवती हो और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह धर्म-शील होता है।

यदि इस सम्मिलनके फलसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह दीर्घजीवी और क्रोध शीला होती है।

यदि शश जातिके पुरुषके सहवाससे चित्रिणी गर्भ-धारण पूर्वक पुत्र प्रसव करे, तो वह पुत्र सुशील किन्तु अल्पायु होगा।

यदि इस सम्मिलनके फलसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह सुन्दरी किन्तु दुःखिनी होती है। उसे वृद्ध-पति प्राप्त होता है।

यदि मृग जातीय पुरुषके वीर्यसे पद्मिनी नारी गर्भ धारण करे और इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह महा-बलवान् होता है और दुःख सुख दोनों उसे भोग करने पड़ते हैं।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह धनधान्य सम्पन्न और सुखी होती है, किन्तु दीर्घजीवो नहीं होती।

यदि सुन्दरी हस्तिनी नारी मृग जातीय पुरुषके सह-वाससे गर्भ धारण करे और इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह पुत्र पशुओंकी तरह क्रूराचारी होता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह कुलटा और पति-घातिनी होती है।

यदि मृग जातिके पुरुषके सहवाससे शंखिनी जातीय

नारी गर्भ धारण करे और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह दया-दाक्षिण्य आदि गुणोंसे युक्त होगा।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह सुन्दरी मनोहारिणी, बुद्धिमती, गुणवती और पौत्रादि युक्ता होती है।

वृषभ जातिके पुरुषके सहवाससे यदि पद्मिनी जातिकी नारी गर्भ धारण करे और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह पुत्र वृषकी तरह दुराचार परायण होता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह कन्या दुराचारिणी और कुल कलंकिनी होती है।

यदि वृषभ जातीय पुरुषके संयोगसे हस्तिनी नारी गर्भ धारण करे और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह महाबली महा योद्धा और प्रथम श्रेणीका क्रूर होता है।

यदि इस वीर्यसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह कन्या सैकड़ों पुरुषोंसे सम्बन्ध रखनेवाली होती है। अर्थात् अपने पतिको छोड़कर अन्य अनेक पुरुषोंसे अनुराग करती फिरती है।

यदि वृषभ जातीय पुरुषके संयोगसे चित्रिणी जातिकी नारी गर्भ धारण करे और इस गर्भसे पुत्र उत्पन्न हो, तो उसकी अकाल-मृत्यु हो जाती है।

यदि इस संयोगसे चित्रिणी नारीको गर्भ रहता है और वह कन्या होती है तो वह गर्भ हीमें मर जाती है।

यदि अश्व जातिके पुरुषके संयोगसे पद्मिनी जातीय नारी गर्भवती हो, तो उस गर्भसे प्रायः नपुंषकका ही जन्म होता है।

यदि पद्मिनी नारी सौभाग्यवश इस संयोगसे पुत्र लाभ करे, अर्थात् यदि नपुंसक उत्पन्न हो, तो जो पुत्र उत्पन्न होता है तो वह यक्ष्मा रोगसे पीड़ित और चिरदुःखी रहता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह धर्म-परायण साध्वी और शुद्ध-मति होती हैं।

यदि अश्व जातीय पुरुषके संयोगसे चित्रिणी नारी-पुत्र प्रसव करे तो वह शीघ्र ही मर जाता है।

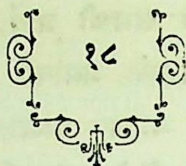
यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह एक नेत्रा और श्वेत वर्णा होती है।

यदि अश्व जातीय पुरुषके संयोगसे शङ्खिनी नारी गर्भ धारण करे और उससे पुत्र उत्पन्न हो, तो वह जन्मान्ध और दुर्बल होता है।

यदि इस गर्भसे कन्या उत्पन्न हो, तो वह कुलटा और पति घातिनी अथवा गुंगी होती है।

रति शास्त्र प्रभृति ग्रन्थोंमें इन सब बातोंका उल्लेख है। सम्भव है कि आधुनिक सभ्यताकी नई रोशनीमें यह बातें विश्वासपात्र न समझी जायें, क्योंकि हमलोगोंका मस्तिष्क पाश्चात्य शिक्षाके प्रभावसे ऐसा विकृत हो गया है, कि जबतक किसी बातपर पाश्चात्य वैज्ञानिकोंकी मुहर नहीं लगती, तबतक हमें वे झूठी :और कपोल कल्पित ही प्रतीत होती हैं। फिर भी, यह सब जानते हुए भी, हम ये बातें इसलिये अंकित कर रहे हैं, कि हमें इन बातोंके लिखनेवाले मनीषियों पर बहुत कुछ श्रद्धा और विश्वास है। यह भारतीय सभ्यताके युगकी बातें हैं। इनके लेखक वही भारतीय महापुरुष हैं, जिनकी बातोंका समस्त संसार-में आदर होता था। इसीलिये हमने इन बातोंका उल्लेख किया है। आधुनिक वैज्ञानिकोंकी भांति इन लेखकोंने प्रमाण नहीं दिये, कि इतने मनुष्योंने यह काम किया था और उसका यह फल हुआ था, फिर भी हमें इनकी सत्यता पर बहुत विश्वास है। पाठकोंके अनुभवसे निःसन्देह हमारे कथनको पुष्टि मिलेगी।

———



प्रथम संयोग

विवाहके बाद स्त्री पुरुषोंको दाम्पत्य-संयोगका अवसर मिलता है। परन्तु विवाह होनेके बाद पहले ही दिन दाम्पत्य-संयोगमें प्रवृत्त होना कदापि उचित नहीं कहा जा सकता, क्योंकि स्त्रियां इसके लिये तैयार नहीं होतीं। उन्हें इस कार्यमें न जाने कितनी लज्जा, न जाने कितना भय और न जाने कितनी व्याकुलता मालूम होती है। ऐसा होना सर्वथा स्वाभाविक है और इसीलिये प्रथम संयोगके समय स्वामीको बड़ी सतर्कतासे काम लेना चाहिये। इसी एक दिन पर भावी जीवनके सुखका बहुत अंश निहित है। स्वामी, यदि इस समय सतर्क रहता

है, तो भावी जीवनका बहुत सुन्दर प्रासाद निर्माण कर सकता है और यदि असतर्क होकर अयत्न पूर्वक दाम्पत्य संयोग करता है, तो सदाके लिये अशान्ति खरीद लेता है।

प्रथम संभोग स्त्रियोंके लिये एक भीषण व्यापार होता है। प्रथम संयोगकी भीति नारीको कितना चकित और संत्रस्त कर देती है यह बतलाना बहुत कठिन है। हां, पुरुष अनायास ही समझ सकता है, यदि उसके हृदय हो, यदि उसने मनुष्यत्वको खो न दिया हो। सहसा किसी युवकको नारी देहके ऊपर आसन विस्तार करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये। स्वामीको हठात् ऐसी चेष्टा करते देख स्त्रियां सिहर उठती हैं। पुरुषोंको चाहिये, कि हँसी विनोदमें अपनी अभिलाषाको सतर्कतापूर्वक, सुन्दर ढंगसे स्त्रियोंके निकट व्यक्त करें। बातचीत और प्रेमालापसे उनकी लज्जा और भयको दूर कर दें। उन्हें इस बातका विश्वास दिला दें, कि वे उन्हें कष्ट न देंगे, न उनका कोई अनिष्ट ही करेंगे। उन्हें समझा दें कि इसमें अकेले उन्हीं-का स्वार्थ नहीं है। इससे दोनोंको अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होगी और दोनों माता पिताके प्रतिष्ठित पदको प्राप्त कर गौरवान्वित होंगे। जबतक इस तरह स्त्रियोंका भय दूर नहीं किया जाता और उन्हें विश्वास नहीं दिलाया जाता

तबतक वे पतिकी बात माननेको तैयार नहीं होतीं। ऐसी अवस्थामें यदि पति बलपूर्वक संयोग करता है, तो स्त्रियां उसे सदाके लिये अत्याचारी या नर-पशु समझ लेती हैं। उनकी धारणा हो जाती है, कि यह पुरुष बड़ी क्रूर प्रकृतिका है और यह विचार सदा दाम्पत्य-प्रेममें बाधा दिया करता है।

वात्स्यायन मुनिने ऐसी नवविवाहिता बधुओंको विश्वास दिलाने और उनकी लज्जा तथा भय दूर करनेकी विधि कन्या विश्रंभण नामक अध्यायमें अंकित की हैं। उनका कथन हैं, कि विवाहके बाद पहले दस दिन मङ्गलाचारमें व्यतीत करना चाहिये। एक साथ खाना पीना, खेल तमाशे देखना, गाना बजाना, सम्बन्धियोंसे मिलना जुलना तथा नाना प्रकारसे आनन्द मनानेको मङ्गलाचार कहते हैं। दसवें दिन रात्रिके समय एकान्तमें कन्या (नव वधू) को विश्वास दिलाने या उसकी लज्जा और भय छुड़ानेके लिये धीरे धीरे मृदु उपचारों द्वारा उपक्रम करना चाहिये।

परन्तु बाभ्रव्यके मतावम्बियोंका कथन है, कि यदि स्वामी स्त्रीसे इतने समय तक न बोलेगा, तो स्त्री शायद यह समझ लेगी, कि न जाने कैसे जड़ पुरुषसे मेरा विवाह हुआ

हैं। इससे वह खिन्न होगी और पतिके प्रति उसके हृदयमें तिरस्कार उत्पन्न होगा, इसलिये बिलकुल मौनावलम्बन ठीक नहीं—विवाहके बाद पहले ही दिनसे उपक्रम आरम्भ कर देना चाहिये।

वात्स्यायन मुनि इस बातको स्वीकार करते हैं और लिखते हैं "उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च ; न तु ब्रह्मचर्यमतिवर्तेत। इति वात्स्यायनः" अर्थात् वात्स्यायनकी राय यह है, कि उपक्रमों द्वारा विश्वासोत्पादन किया जाय, किन्तु ब्रह्मचर्य भङ्ग न हो। तात्पर्य यह कि उपक्रम करना अनुचित नहीं है, परन्तु संयोग न होना चाहिये।

इसके बाद वात्स्यायन मुनि सलाह देते हैं, कि "उपक्रमाणश्च न प्रसह्य किञ्चिदाचरेत्" अर्थात् जो कुछ किया जाय वह मृदुल उपचारोंसे किया जाय—बलात्कारसे नहीं। बलपूर्वक स्पर्श भी न करना चाहिये, क्योंकि स्त्रियां इसे सहन नहीं कर सकतीं। परन्तु कहते लज्जा बोध होती है कि आजकल हमारे यहां बलपूर्वक ही "बहुत कुछ" होता है। स्त्रीकी सम्मति ग्रहण करनेकी आवश्यकता ही नहीं समझी जाती। क्योंकि हमलोग विवाहिता पत्नीको क्रीतदासीसे भी गई बीती समझते हैं। हम समझते हैं, कि उसकी सम्मति और

असम्मतिका कोई मूल्य नहीं है। परन्तु वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि :—

कुसुम सधर्माणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमः। तास्त्व-नधिगत विश्वासैः प्रसभमुपक्रम्यमाणाः सम्प्रयोग द्वेषिण्यो भवन्ति। तस्मात् साम्नैवोपचरेत।

अर्थात् कामिनी-कुल कुसुम सुकुमार है—स्त्रियाँ फूलों-की तरह सुकुमार होती हैं, इसलिये उनपर जो उपक्रम किया जाय उसका भी सुकुमार होना आवश्यक है। यदि उनका विश्वास न उत्पादन करके बलात्कारसे उपक्रम किया जाता है, तो वे सम्प्रयोग द्वेषिणी हो जाती हैं। अत-एव साम्य नीतिके अनुसार ही उपचार करना चाहिये। कहनेका तात्पर्य यह है, कि इच्छाके उत्पन्न हुए बिना यदि कोई बलपूर्वक स्त्रियों पर उपक्रम करता है, तो वे असन्तुष्ट हो जाती हैं। ऐसी अवस्थामें पुरुष अपना पुरुषत्व जतानेके लिये उनपर अत्याचार भले ही कर लें, परन्तु इसके लिये वे सम्मति नहीं दे सकतीं। स्त्रियोंकी सम्मति तो तभी मिलती है, जब उनकी इच्छानुसार मृदु-सुकुमार उपायों द्वारा उनके हृदयमें विश्वास उत्पन्न कर दिया जाता है और उनकी लज्जा तथा भीति छुड़ा दी जाती है।

स्त्रियोंको इस प्रकार विश्वस्त करनेके लिये मृदुल उप-

चारोंसे काम लेनेको यशोधर महाराज पहली विधि बतलाते हैं, परन्तु हमलोग अपने जीवनमें इस नियमकी नित्य ही अवहेलना और उपेक्षा करते हैं। जान नहीं, पहचान नहीं, अभी अभी उस दिन पाणिपीड़न मात्र हुआ है, इसी अधिकार और इतने ही परिचयके बलपर स्त्रीको सम्मति ग्रहण किये बिना सहसा अपनी पशु-वृत्तिको चरितार्थ करने बैठना कितना अनुचित हैं! हितकारी नियमोंकी उपेक्षा घातक होती है। यदि इस समय कुछ धीरज और संयमसे काम लिया जाय, तो आदर और स्नेहके बाद चुम्बनके बदले चुम्बन और बाहु-बन्धनके बदले बाहु-बन्धन आपसे आप उद्यत हो जाता है। आदर, प्रेम और स्नेह इन्हीं तीनके द्वारा दाम्पत्य-संयोगकी चेष्टा करने पर पुरुष स्वयं भी सुखी हो सकते हैं और स्त्रियोंको भी सुखी कर सकते हैं।

नववधूके हृदयमें विश्वास उत्पन्न कर उसे अपनी ओर आकृष्ट करनेके लिये ताम्बूल-दान, मधुरालाप, हास्य विनोद और चुम्बन आलिङ्गन प्रभृति कार्य करने पड़ते हैं। कौन कार्य किंवा उपक्रम किस प्रकार होना चाहिये इस पर वात्स्यायन मुनिने भली भाँति विचार किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिये यह विषय हम उन्हींके मतानुसार अंकित करते हैं।

वात्स्यायन मुनि लिखते हैं, कि यदि नायिका पतिके निकट उपस्थित होती है, तो क्रमशः एकके बाद एक उपक्रम किये जा सकते हैं, किन्तु यदि नायिका दूर होती है, तो क्रम या कोई अन्य बातें काम नहीं आतीं। उस समय नायकको चाहिये, कि वह मौका देख कर, जिस उपक्रमके लिये सुविधा हो, वही उपक्रमसे काम ले।

यदि नायिका पतिके निकट हो, तो उसका उपक्रम आलिङ्गनसे आरम्भ होना चाहिये। परन्तु यह आलिङ्गन क्षणिक होना चाहिये, क्योंकि अधिक देर तकका आलिङ्गन उस समय नायिकाको अप्रिय मालूम होता है। है। यह आलिङ्गन ऊर्ध्व किंवा ऊपरी (कमरसे ऊपरके) अंगों द्वारा होना चाहिये। क्योंकि पहले पहल स्त्रियां इससे अधिक सहन नहीं कर सकतीं। यदि नायिका पूर्ण युवती हो या उससे पहलेका परिचय हो, तो दीपकके उजालेमें भी आलिङ्गन किया जा सकता है, किन्तु यदि नायिका पहले कभी आलिंगन कार्यमें नियुक्त न हुई हो अथवा बाला हो, तो उसे अन्धकारमें आलिङ्गन करना चाहिये।

आलिङ्गनके बाद ताम्बूल-दानकी विधि है। नायिकाको पान खिलाना ताम्बूल-दान है। यदि नायिका पान लेना अस्वीकार करे, तो सान्त्वनापूर्ण वचनों द्वारा, शपथ

द्वारा, या प्रति याचित द्वारा इसके लिये राजी करना चाहिये। "यदि तुम नहीं खाती हो, तो न सही, हमींको खिलाओ" इस प्रकार प्रत्यियाचना करनेको प्रतियाचित कहते हैं। वात्स्यायन मुनिकी राय है, कि यदि इतने पर भी नायिका पान न ले तो "पादपतनैश्च ग्राहयेत्" अर्थात् पैर पड़कर भी ग्रहण कराना चाहिये। यही अन्तिम उपाय है, क्योंकि स्त्रियां चाहे क्रोधके कारण, चाहे जिस कारणसे प्रतिकूलता दिखा रही हों, वे पतिका पैरों पड़ना सहन नहीं कर सकतीं। ज्योंही पति पैरों पड़ने लगता हैं, त्योंही वे उसकी बात माननेको तैयार हो जाती हैं। केवल इसी समय नहीं, चाहे जब, चाहे जिस बातके लिये इस शस्त्रका प्रयोग किया जा सकता है। स्त्रियोंके सम्बन्धमें ही क्यों, संसारमें कहीं भी सहृदय मनुष्यके सम्मुख पाद-पतन निष्फल नहीं जाता।

नायिका जब पान लेनेको राज़ी हो जाय, तब नायकको पान खिलाते समय, उसके अधरों पर मृदु (हलका) विशद (सुख स्पर्श कर) और अकाहल (बिना शब्दका) चुम्बन करना चाहिये। यदि नायिका चुम्बन भी सहन कर ले, तो उसे बातचीतमें लगानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

नव विवाहिता वधू पतिसे बात भी सहजमें नहीं

करती। इसका एक मात्र कारण लज्जा होती है। इसलिये पतिको धीरे धीरे उसे बातमें लगानेकी चेष्टा करनी पड़ती है। पतिको चाहिये, कि ऐसे समयमें वह नायिकासे ऐसे छोटे छोटे प्रश्न पूछे, जिनका उत्तर वह आसानीसे दे सके। जिस बातके सम्बन्धमें नायिकासे प्रश्न पूछे जांय, वह बात नायिकाको भली भांति विदित होनी चाहिये। विदित होनेपर भी नायिका लज्जाके कारण उत्तर नहीं दे सकती। वह उत्तर देनेकी इच्छा करती है, परन्तु उसके मुँहसे बात नहीं निकलती। ऐसी अवस्थामें यह कैसे सम्भव हो सकता है, कि नायिका किसी अनजानी बातका उत्तर दे। नायकको चाहिये, कि वह बड़ी सतर्कताके साथ नायिकासे छोटे छोटे प्रश्न पूछे। प्रश्न पूछते समय यह ध्यान रखना चाहिये, कि नायिका प्रश्नोंसे उद्विग्न न हो उठे। यदि एक प्रश्नका उत्तर न मिले, तो दूसरा और दूसरेका उत्तर न मिले तो तीसरा प्रश्न पूछना चाहिये। यदि प्रश्न करनेका एक तरीका सफल न हो तो दूसरा काममें लाना चाहिये, परन्तु अनेक प्रकारसे प्रश्न करने पर भी जब उत्तर न मिले, तब निर्बन्ध (हठ या जिद्द) दिखानी चाहिये।

नववधू पहले पहल पतिकी बातोंका उत्तर शिर हिला

सिर

कर दिया करती है। शिर हिलानेसे केवल दो ही बातें मालूम होती हैं—"हाँ" या "नहीं"। यदि पति हठ कर बैठता है या उत्तर न पानेके कारण नायिकासे रुष्ट हो जाता है या नायक नायिकामें कलह हो जाता है, तो शिर हिलानेसे काम नहीं चलता। नायिकाको मुँहसे बोलना ही पड़ता है, परन्तु साधारण अवस्थामें वह शिर हिला कर ही पतिको उत्तर देती है।

यदि नायिकासे कलह न हुआ हो, तो उसे स्नेहपूर्वक किस प्रकार बातचीतमें लगाना चाहिये यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि :—

"इच्छसि मां नेच्छसि वा, किं तेऽहं रुचितो न रुचितो-वेति पृष्टा चिरंस्थित्वा निर्व्वध्यमाना तदानुकूल्येन शिरः कम्पयेत्। प्रपञ्च्यमाना तु विवदेत।"

(अर्थात् जब नायिकासे यह पूछा जाता है, कि तुम हमें चाहती हो कि नहीं, हमारे साथ विवाह करनेकी इच्छा थी कि नहीं, तब वह कुछ देर तक चुप रहनेके बाद जब पतिकी हठसे विवश हो जाती है, तब प्रश्नकी अनुकूलतानुसार शिर हिला देती है। यदि नायक प्रपञ्च करता है, तो वह सब प्रश्नोंका उत्तर नकार हीमें देने लगती है और इसके फल स्वरूप विवाद बढ़ जाता है।)

यदि नायिकाके साथ पहलेका परिचय हो, तो किसी ऐसी सखीको, जो दोनों जनकी विश्वस्त हो, बीचमें रखकर बातचीत करना चाहिये। नायकके प्रश्नोंका वह सखी जब उत्तर देती है, तब नायिका मन ही मन मुस्कुराती है। जब सखी कोई बेजा बात कह बैठती है, तब नायिका उसका तिरस्कार करती है और उससे कलह करती है। सखी उसे चिढ़ानेके लिये अपनी ओरसे भी नयी नयी बातें बढ़ाकर नायकसे कहती है। नायक उन बातोंकी सत्यता जाननेके लिये जब सखीको छोड़ कर नायिकासे प्रश्न करता है, तब वह साधु भाव धारण कर लेती है। यदि नायक उसे उत्तर देनेके लिये विवश करता है, तो वह अस्पष्ट भाषामें कुछ बोल जाती है। कभी कभी बीच बीचमें नायकको कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे देख भी लेती है।

नायिकाको बातचीतमें लगानेका यही तरीका है। इतना परिचय हो जाने पर, नायक यदि पान या कोई दूसरी चीज मांगता है, तो नायिका उसे देने लगती है। इसके बाद जब मौका मिले, तब तब उसे आलिङ्गन और चुम्बन करते रहना चाहिये और धीरे धीरे उपक्रम बढ़ाते बढ़ाते नख दशन क्षतादिका प्रयोग करने लगना चाहिये। यदि नायिका इसमें बाधा दे, तो उसे भय दिखाना चाहिये।

भय दिखलानेका तरीका वात्स्यायन मुनिने यह बतलाया है, कि नायिकासे नायकको कहना चाहिये, कि तुम मेरी बात न मानोगी, तो मैं अपने कपोल और हृदय आदि स्थानों पर अपने हाथसे नख-क्षत आदि चिन्ह कर लूँगा और दिनको तुम्हारी सखियोंको दिखा कर कहूंगा, कि देखो तुम्हारी सखी (नायिका) ने यह नखक्षत किये हैं। नायककी यह बात सुनकर नायिका सखियोंकी तानेजनी और दिल्लगीके डरसे नायककी बात माननेको तैयार हो जाती है। नायकको इसके बाद चाहिये, कि वह अधिकाधिक आलिङ्गन, चुम्बन और हस्तयोजन (अङ्ग स्पर्श) द्वारा नायिकाकी लज्जा छुड़ा कर उसे विश्वस्त बना लें। यह सब होनेके बाद ही—कमसे कम विवाहके चौथे दिन दाम्पत्य-संयोग करना चाहिये। उपरोक्त प्रकारके अनुक्रम करते समय ब्रह्मचर्य पूर्ण रूपसे अखण्डित रहना चाहिये। इस सम्बन्धमें वात्स्यायन मुनि लिखते हैं कि:—

"न त्वकाले व्रतखण्डनम्, अनुशिष्याच्च। आत्मानुरागं दर्शयेत। मनोरथांश्च पूर्वकालिकाननुवर्णयेत्। आयत्यांश्च तदानुकूल्येन प्रवृत्तिं प्रति जानीयात्। सपत्नीभ्यश्च साध्वसमवच्छिन्द्यात्। कालेन च क्रमेण विमुक्त कन्या भावामनुद्वेजयन्नुपक्रमेत्।"

अर्थात् असमयमें ही व्रत खण्डन न करना चाहिये। उसे चौसठ कलाओंकी शिक्षा देनी चाहिये। उसके निकट अपना अनुराग प्रकट करना चाहिये। पहलेसे मनमें क्या क्या सोच रक्खा था—मनमें कौन कौन मनोरथ थे—आदि बातें करनी चाहिये। भावी जीवनके सम्बन्धमें बात निकलने पर अनुकूल आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। सौतोंका भय दूर कर देना चाहिये और जब कन्या भाव (लज्जा और संकोच आदि) दूर हो जाय, तब नायिका उद्विग्न न हो, इस प्रकार उपक्रम करना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिका यह सूत्र पुरुषोंके लिये स्वर्णाक्षरोंसे लिख रखने योग्य है। उन्होंने पुरुषोंको इसमें जो सलाह दी है, उसे हम दाम्पत्य-प्रेमका मूल मन्त्र कह सकते हैं। वे कहते हैं, कि असमयमें ही व्रत खण्डन न करना चाहिये। यहां "असमय" शब्द ध्यान देने योग्य हैं। वात्स्यायन मुनिने यद्यपि तीन ही दिन तक उपक्रम कर चौथे दिन संयोग करनेकी आज्ञा दी है, फिर भी वे लिखते हैं, कि असमयमें व्रत खण्डन न करना चाहिये। इसका तात्पर्य यह है, कि जबतक स्त्रीके हृदयमें विश्वास उत्पन्न न हो जाय, जबतक उसकी लज्जा न छूट जाय और जबतक वह अनुरागवती न हो जाय, तबतक इसमें चाहे जितना समय

लग जाय, तब भी—संयोग न करना चाहिये। वात्स्यायन मुनि ऐसा क्यों कहते हैं, यह पहले ही बतलाया जा चुका हैं। जो लोग विवाह होनेके साथ ही संयोगके लिये व्याकुल हो उठते हैं और स्त्रीको इच्छा अनिच्छाका खयाल न कर अपनी पशु-वृत्ति चरितार्थ करते हैं, उन्हें इस बातपर विचार करना चाहिये। जो लोग इस बात पर ध्यान नहीं देते, वे सदाके लिये अपनी स्त्रीके हृदय पर अविश्वास और द्वेषका ऐसा धब्बा लगा देते हैं, जो आजीवन दूर नहीं होता। स्त्री जब जब उस धब्बेको देखती हैं, तब तब उसे पिछली बातें याद आ जाती हैं और पतिकी निष्ठुरताका भयंकर चित्र उसकी नजरके सामने नाचने लगता है। इससे उसके हृदयमें एक ऐसा भाव उत्पन्न हो जाता है, जो दाम्पत्य-प्रेममें सदा बाधा दिया करता है। इसीलिये वात्स्यायन मुनिने अकालमें व्रत खण्डन न करनेकी आज्ञा दी है।

वात्स्यायन मुनिका दूसरा वचन यह है, कि उसे काम-विज्ञानकी शिक्षा देनी चाहिये। निःसन्देह यह भी बहुत उपयोगी बात है। नवविवाहिता वधूको, जो अब तक कन्याके रूपमें थी, चौसठ कलाओंकी शिक्षा देनेसे बड़ा लाभ हो सकता है। एक तो उसे इस बातका ज्ञान होता

है, कि दाम्पत्य-जीवन क्या है और उसे किस प्रकार सुख-मय बनाना चाहिये, दूसरे इन नयी नयी बातोंको जान कर उसके हृदयमें उन्हें अनुभव करनेकी इच्छा उत्पन्न होती है और वह शीघ्र हो कन्या-भाव परित्याग कर गृहिणी-भाव धारण करती है। इसीलिये यह शिक्षा देनेकी आवश्यकता रहती है। यह तो मानी हुई बात है, कि चौंसठ कलाओंका ज्ञान प्राप्त करनेके बाद स्त्री जितना सुख दे सकेगी, जिस प्रकार पतिका मनोरञ्जन कर सकेगी, उस प्रकार साधारण अवस्थामें नहीं कर सकती।

वात्स्यायन मुनि उसी सूत्रमें कहते हैं, कि अपना अनु-राग प्रकट करना चाहिये और अपने मनोरथोंका वर्णन करना चाहिये। अनुराग अनेक प्रकारके इङ्गित और आकारों द्वारा प्रकट किया जा सकता है और मनोरथोंका खाका भी वचनों द्वारा बहुत अच्छा खींचा जा सकता है। अनु-राग प्रकट करनेसे स्त्रीके हृदयमें अनुराग उत्पन्न होता है और मनोरथोंका खाका खींचनेसे उसकी प्रत्याकृति उसके हृदय पर अंकित हो सकती है। जब वह देखती है, कि पति मुझसे प्रेम कर रहा है, तब वह भी उसका प्रतिदान करनेको तैयार हो जाती है और पतिके मनोरथोंको सुनकर उसके हृदयमें यह भाव उत्पन्न होता है, कि जो मुझे इस

तरह चाहता है और जो मेरा जीवन सर्वस्व है, उसके यह मनोरथ मैं क्यों न पूर्ण करूँ ? स्त्रीका यही भाव संसारको स्वर्ग बना देता है। जो अपनी स्त्रीके हृदयमें यह भाव उत्पन्न कर सके वह पुरुष धन्य है।

इसके बाद वात्स्यायन मुनि सलाह देते हैं, कि भावी जीवनमें अनुकूल आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। अनुकूल आचरणमें पतिके समस्त कर्त्तव्योंका समावेश हो जाता है। स्त्रियोंको क्या पसन्द होता है या वे क्या चाहती हैं यह सभी समझ सकते हैं। स्त्रियोंसे वैसा ही आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये। यदि हम छोटी मोटी बातोंको छोड़ दें, तो साधारण शब्दोंमें यह कह सकते हैं, कि स्त्रियोंकी सबसे प्रबल आकांक्षा यह रहती है, कि जैसे हम पतिकी होकर रहती हैं, उसी प्रकार पति हमारा होकर रहे। हमारी समझमें स्त्रियोंकी यह आकांक्षा सबसे अधिक प्रबल होती है। पुरुषोंको चाहिये, कि वे इसके लिये प्रतिज्ञा करें। वे अपनी स्त्रियोंसे कहें, कि हम मन, वचन और कर्मसे तुम्हारे होकर रहेंगे। जो पुरुष ऐसा करेगा, वह संसारमें सुखी होगा। जो ऐसी प्रतिज्ञा करनेमें हिचके, उसके लिये समझ लो, कि वह परमस्वार्थी है। केवल विषय वासनाका दास है। ऐसे पुरुषको

स्त्रियां भी अपना हृदय नहीं देतीं। उनका शरीर भले ही उसके अधिकारमें रहे, परन्तु हृदय तो वे उसीको देती हैं, जो उनका होकर रहता है—जो उन्हें हृदयके बदले हृदय देता है। जो पुरुष स्त्रीके होकर नहीं रह सकते, वे स्त्रियोंसे यह कैसे कह सकते हैं, कि तुम हमारी होकर रहो। हृदयके बदले हृदय मिलता है। यदि कोई अपनी स्त्रीको सीता बनाना चाहे, यह आशा रक्खे कि वह हमारी होकर रहे, तो उसे राम बनना ही होगा, उसे उसका होकर रहना ही होगा। यदि पुरुष स्त्रियोंमें पातिव्रत देखना चाहते हैं, तो उन्हें पत्नीव्रत दिखाना ही होगा। वात्स्यायन मुनिकी उपरोक्त आज्ञा इसी तात्पर्यकी द्योतक है। जो इसके अनुसार आचरण करेंगे वे निःसन्देह सुखी होंगे।

इसके बाद वात्स्यायन मुनिने सौतोंका भय दूर करनेकी जो बात कही है, वह भी उपरोक्त बातसे ही सम्बन्ध रखती है। पुरुषोंको यह बात खूब अच्छी तरह समझ रखनी चाहिये, कि जो पुरुष एक पत्नीव्रत पालन नहीं करते, उनकी स्त्रियां उन्हें हृदयसे कदापि प्रेम नहीं करतीं। हमारी तो धारणा है, कि वे इच्छा करने पर भी ऐसा नहीं कर सकतीं। क्योंकि समय समय पर जब उनके हृदयमें यह भाव उत्पन्न होगा, कि पतिदेव अन्यान्य स्त्रियोंसे

सम्बन्ध रखते हैं, तब उनका हृदय वास्तविक प्रेमसे कोसों दूर जा गिरेगा। उनके हृदयमें वह भाव सदा विद्वेष उत्पन्न करता रहेगा। इससे उन दोनोंमें कभी भी वास्तविक दाम्पत्य-प्रेम न हो सकेगा। इसीलिये वात्स्यायन मुनि स्त्रियोंके निकट अनुकूल आचरण करनेको प्रतिज्ञा करने तथा सौतोंका भय दूर करनेकी सलाह देते हैं।

अन्तमें वात्स्यायन मुनि कहते हैं, कि कन्या भाव दूर हो जानेके बाद इस प्रकार उपक्रम करना चाहिये, जिससे नवविवाहिता वधू उद्विग्न न हो उठे। इस सम्बन्धमें हम पहले ही कह चुके हैं, कि सहसा उपक्रम करनेसे नवविवाहिता वधू सिहर उठती है और यदि उपक्रम मृदुल नहीं होते, तो उसके मनमें उद्वेग उत्पन्न हो जाता है और इससे दाम्पत्य-प्रेममें बाधा पड़ती है।

इस प्रकार वात्स्यायन मुनिका यह सूत्र दाम्पत्य जीवनके मूलमन्त्र रूप है। इसमें वे सभी बातें संक्षेपमें बतला दी गयी हैं, जिन पर स्त्री पुरुषोंका भावी जीवन— उनका सुख दुःख निर्भर करता है। विवाह होनेके बाद यदि आरम्भ हीमें स्त्रियोंके हृदय पर पुरुष अपने इन कार्यों द्वारा अच्छा प्रभाव डाल सकें, तो उन्हें दाम्पत्य जीवनके मीठे फल अनायास चखनेको मिल सकते हैं। प्रथम

मिलन ही स्त्रियोंके हृदयमें सद्भाव उत्पन्न करनेका सबसे अच्छा अवसर होता है। उसी दिन दाम्पत्य-प्रेमका बीजारोपण होता है। जो उस दिन चूका, वह सदाके लिये गया। जिस मकानकी नींव टेढ़ी हो जाती है, उसका सुधरना फिर कठिन हो जाता है। क्या यह कभी संभव है, कि वात्स्यायन मुनिको इन बातोंके विरुद्ध आचरण करनेवाला कभी सुखी हो ?

वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रमें कन्या विस्रंभण नामक अध्यायके उपसंहारमें कितने ही श्लोक अंकित किये हैं। हम भी उन्हें यहां उद्धृत कर इस अध्यायकी परि-समाप्ति करेंगे। वे श्लोक यह हैं :—

एवं चित्तानुगो बालामुपायेन प्रसाधयेत्।
तथाह्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते॥
नात्यन्तमानुलोम्येन न चाति प्रातिलोम्यतः।
सिद्धिं गच्छति कन्यासु तस्मान्मध्येन साधयेत॥
आत्मनः प्रीतिजननं योषितां मान वर्द्धनम्।
कन्यविस्रम्भणं वेत्ति यः स तासां प्रियो भवेत्॥
अति लज्जान्विते त्येयं यस्तु कन्यामुपेक्षते।
सोऽनभिप्राय वेदीति पशुवत् परिभूयते॥
सहसा वाप्युपक्रान्ता कन्या चित्तमविन्दता।

भयं वित्रा समुद्वेगं सद्यो द्वेषञ्च गच्छति ॥
सा प्रीति योगमप्राप्ता तेनोद्वेगेन दूषिता।
पुरुष द्वेषिणी वा स्याद्विद्विष्टा वा ततोऽन्यगा ॥

अर्थात् बालिका (नवविवाहिता) के अभिप्रायानुसार उपरोक्त प्रकारसे उसके हृदयमें विश्वासोत्पादन करना चाहिये। विश्वास उत्पन्न हो जाने पर नायिका अनुरक्त हो जाती है। परन्तु अत्यन्त अनुकूलता या प्रतिकूलता दिखानेसे नववधूको अनुरक्त करनेमें सफलता नहीं मिलती, इसलिये उनके साथ सदा मध्यम रीतिसे काम लेना चाहिये। यह कन्या विस्रंभण (परिचय और विश्वास उत्पन्न कर कन्याको प्रणयाभिमुखी बनाना) पुरुषोंके लिये प्रीतिकर और स्त्रियोंके लिये मानवर्द्धक होता है। जो पुरुष इसकी विधि जानता है, वह स्त्रियोंका प्रिय हो पड़ता है। जो अत्यन्त लज्जावती समझ कर स्त्रियोंकी उपेक्षा करता है—बलपूर्वक उपक्रम करता है—उसके सम्बन्धमें यह कहा जाता है, कि वह स्त्रियोंका अभिप्राय—उनका मनोभाव समझनेकी क्षमता नहीं रखता। ऐसा पुरुष स्त्रियोंके निकट पशुवत् तिरस्कृत और निन्दित होता है। जो व्यक्ति कन्याका अभिप्राय न समझ कर सहसा उपक्रम करता है, उससे कन्या भय, उद्वेग और द्वेषको प्राप्त होती हैं।

वह प्रीतियोगको न पाकर—उस प्रकारके उद्वेगसे दूषित होकर—उस पुरुषसे द्वेष करने लगती हैं अथवा उससे विरक्त होकर भिन्न पुरुषगामिनी हो जाती है।

प्रथम संयोगके समय जो लोग असंयम और जल्दी-बाजीसे काम लेते हैं, उन्हें इस अध्यायकी बातें अच्छी तरह स्मरण कर लेनी चाहिये। जो इन बातों पर ध्यान देंगे और इनके अनुसार कार्य करेंगे, उन्हें सदा प्रेम और शान्ति-की सुशीतल छाया विश्राम करनेको मिलेगी। इससे उनके जीवनमें कभी विरक्ति न उत्पन्न होगी और वे अनन्त सुखके अधिकारी होंगे।





स्तम्भन और बाह्य-रति

संसारमें अनेक मनुष्य ऐसे होते है, जिनमें स्तम्भन शक्तिका नितान्त अभाव होता है। ऐसे मनुष्योंको दाम्पत्य संयोग एक विडम्बना रूप प्रतीत होता है, क्योंकि संयोगके समय उनका वीर्य इतनी जल्दी पतित हो जाता है, कि न तो उन्हींको सन्तोष होता है, न उनकी स्त्रीकी ही मनस्तुष्टि होती है। इससे कभी कभी पुरुषोंको स्त्रियोंके निकट लज्जित भी होना पड़ता है। वस्तुतः युवक युवतियोंके लिये इससे बढ़कर विषादका विषय और नहीं हैं।

यों तो प्रकृतिका आयोजन कुछ ऐसा है, कि संयोगके समय प्रतिक्षण दम्पतियोंको अनिर्वचनीय सुखकी प्राप्ति होती है, परन्तु इस सुख और आनन्दकी चरम सीमा उस समय उपस्थित होती है, जब वीर्यपात होता है। उस समय

दम्पतियोंका मन आनन्दसे विभोर हो जाता है। वे कुछ क्षणके लिये अपने आपको भूल जाते हैं। उन्हें ऐसा मालूम होता है, मानो वे किसी दूसरे ही लोकमें विचरण कर रहे हैं। परन्तु जब पुरुषोंको शीघ्रपतनकी व्याधि होती है, तब यह आनन्द एकाङ्गी हो जाता है अथवा स्त्री और पुरुष दोनोंको उससे वञ्चित रहना पड़ता है। संसारमें एक गृहस्थके लिये यह अवस्था बहुत ही शोचनीय होती है।

संयोगके समय स्त्री और पुरुषका वीर्य एक साथ पतित होनेसे उन्हें जितना आनन्द मिलता है, उतना दूसरी अवस्थामें नहीं मिलता। संयोगके समय स्त्रीकी सब इन्द्रियां एक नूतन आवेशमें विभोर हो जाती हैं। हर्षके कारण देहकी रोमावली खड़ी हो जाती है। वह एक अलौकिक और अभूतपूर्व लालसामें उन्मत्त हो जाती है। ऐसे समय यदि पुरुष पहले ही निरस्त हो जाता है, तो दोनोंके हृदयमें एक गम्भीर निराशा और हृदय भेदी दुःख भर जाता है। यद्यपि पुरुषको स्त्रीके समान वास्तविक दुःख नहीं होता, क्योंकि उसकी इन्द्रियां स्त्रीके समान अतृप्त नहीं रह जातीं, फिर भी उसे बहुत दुःख और विषाद होता है। उसे इस बातके लिये खेद होता है, कि उसकी सुख दुःखकी भागिनी अर्द्धाङ्गना अतृप्त रह गयी—वह उसे तृप्त

न कर सका और उसकी वासनाकी बुरी तरह हत्या हो गयी। वह इसमें लज्जा अनुभव करता है और यह चाहता है, कि उसे दाम्पत्य-संयोगके समय यह अवस्था न देखनी पड़े—इस प्रकार ज़िल्लत न उठानी पड़े।

बहुत लोग इस अवस्थासे परित्राण पानेके लिये मादक द्रव्योंका सेवन करते हैं। भङ्ग, अफीम, शराब और गांजा प्रभृति नाशकारी पदार्थोंका प्रचार नवयुवकोंमें इसीलिये पाया जाता है। अफीम खानेवाले प्रतिशत शायद ८० मनुष्य युवावस्थामें इसीलिये अफीम खाने लगते हैं, ताकि उनकी स्तम्भन शक्ति बढ़े और स्त्रीके निकट उन्हें लज्जित न होना पड़े। गांजा शराब और भांगका प्रचार भी इसीलिये होता है। अखबारोंमें विज्ञापन दाता नाना प्रकारके नामोंसे स्तम्भन वटिकाओंका जो विज्ञापन देते हैं, उन्हें भी ऐसे ही नवयुवकोंकी ओरसे सहारा मिलता है। यहां तक कि विलायतवाले भी नाना प्रकारकी दवाइयां बनाकर भेजते हैं और नवयुवक उन्हें खुशीके साथ खरीदते हैं।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि पुरुष शीघ्र पतनकी अवस्था पसन्द नहीं करते और उसे दूर करनेके लिये वे या तो मादक द्रव्योंका सेवन करने लगते हैं या अन्यान्य दवाओंके पीछे अपना धन नष्ट करते हैं। परन्तु उनके यह दोनों कार्य

अवाञ्छनीय हैं। लोग स्तम्भनके लिये जब मादक द्रव्यों-का सेवन करते हैं, तब आरम्भमें उन्हें आनन्द तो अवश्य आता है, परन्तु कुछ दिनोंके बाद जब वे दुर्व्यसनके आदी हो जाते हैं और दुर्व्यसन उनपर अपना अधिकार जमा लेता है, तब उन्हें पश्चाताप करना पड़ता है। इसी तरह उन्हें भी पश्चाताप करना पड़ता है, जो विज्ञापन दाताओंके फेरमें पड़ कर व्यर्थ ही धन नष्ट करते हैं। मादक द्रव्य उसी समय तक लाभ पहुंचाते है, जबतक उनका उपयोग बतौर औषधिके किया जाता है, परन्तु जब वे तीसो दिन सेवन किये जाने लगते हैं, तब उनका प्रभाव घट जाता हैं। ऐसी अवस्थामें लोग उनके सेवनकी मात्रा बढ़ा देते है, परन्तु इसके वाद कुछ ही दिनोंमें वे उसके वशीभूत हो जाते हैं और वह दुर्व्यसन भूतकी भांति बेतरह उनके शिर पर सवार हो जाता है।

इन सब कारणोंसे हम अपने पाठकोंको सलाह देंगे, कि वे स्तम्भन शक्ति प्राप्त करनेके लिये भूल कर भी मादक द्रव्योंके फेरमें न पड़ें। इससे वे अपनी रही सही शक्ति भी खो बैठेंगे। हां, यदि उन्हें स्तम्भनके कुछ प्राकृतिक उपाय ज्ञात हों, तो वे उन्हें काममें ला सकते हैं। यदि किसीको दवा ही खानी हो, तो किसी अच्छे डाक्टर या

वद्यकी शरण लेनी चाहिये और इस प्रकार चिकित्सा करानी चाहिये जिससे चिरस्थायी शक्ति प्राप्त हो। केवल स्तम्भनके लिये भूल कर भी चिकित्सा न करानी चाहिये। क्योंकि स्तम्भनकी शायद ही कोई देशी या विलायती दवा ऐसी होती है जो मादक द्रव्योंसे रहित हो।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि दाम्पत्य-संयोगमें समान आनन्द प्राप्त करनेके लिये स्त्री पुरुषका वीर्य एक साथ या पहले स्त्री और बादको पुरुषका वीर्य स्खलित होना चाहिये, परन्तु साधारणतया यही बात दिखाई देती है, कि पुरुष स्त्रियोंसे पहले स्खलित हो जाते हैं। वैज्ञानिकोंने इस अवस्थाका प्रतिकार करनेके लिये कुछ प्राकृतिक उपाय खोज निकाले हैं और वे इस सम्बन्धमें बहुत उपयोगी प्रमाणित हुए हैं। हम अपने पाठकोंकी जानकारीके लिये इस अध्यायमें उन्हीं नियमोंका उल्लेख करेंगे।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि बहुधा पुरुष पहले और स्त्रियां बादको स्खलित होती हैं। इसका प्रतिकार करनेके लिये सबसे अच्छा तरीका यह है, कि कुछ ऐसे उपाय काममें लाये जायें, जिससे पुरुषोंका वीर्यपात होनेमें कुछ देर लगे और स्त्रियां शीघ्र ही स्खलित हो जायें। ऐसा करनेसे दोनों प्रायः एक साथ स्खलित होंगे और किसीको

शिकायत करनेका कारण न रहेगा। स्त्रियोंको शीघ्र स्खलित करनेके लिये कुछ लोग औषधियोंका प्रयोग करते हैं, परन्तु हमारी समझमें यह भी उसी तरह निन्दनीय है, जिस तरह स्तम्भनमें लिये पुरुषोंका :औषधि-सेवन। कामकलाके प्राचीन पण्डितोंने इसके जो प्राकृतिक उपाय बतलाये हैं, वे इन औषधियोंसे हजार दरज्जे अच्छे हैं। अतएव उन्हींसे काम लेनेकी चेष्टा करनी चाहिये। न इसमें कुछ खर्च ही करना पड़ता है, न दुर्व्यसनोंका ही शिकार बनना पड़ता है।

प्राचीन पण्डितोंने दम्पतियोंकी इस विडम्बनाको दूर करनेका जो उपाय बतलाया है, वह बहुत ही सुगम है। उन्होंने पुरुषोंको स्तम्भनके लिये अन्य मनस्कता और स्त्रियों-को शीघ्र द्रवित करनेके लिये बाह्य-रतिसे काम लेनेकी सलाह दी है। इससे पुरुषोंके वीर्यपातमें विलम्ब और स्त्रियोंके वीर्यपातमें शीघ्रता होगी। फलतः दोनोंको समान आनन्द-की प्राप्ति होगी और किसीको असन्तोष न होगा। हम इन दोनों उपायोंको अब विस्तार पूर्वक अंकित करेंगे।

कोई काम करते समय, मन उस काममें न लगाकर किसी दूसरे काममें लगा रखनेको "अन्य मनस्कता" कहते हैं। यदि कोई भोजन कर रहा हो, परन्तु उसका ध्यान कुछ

और सोचने विचारनेमें लगा हो, तो यह कहा जायगा, कि वह अन्यमनस्क हो रहा है। अन्यमनस्क होकर जो काम किया जाता है, उसके सम्बन्धमें कोई अन्दाज नहीं रहता। संयोगके समय अन्यमनस्क रहनेसे स्तम्भन बढ़ता है। आलिङ्गन और चुम्बन आदिको बाह्य-रति कहते हैं। बाह्यरतिसे स्त्रियोंको शीघ्र द्रवित करनेमें सहायता मिलती है। रति-रहस्यमें इन सब बातों पर प्रकाश डालते हुए कोकोक पण्डितने लिखा है कि :—

प्रायोऽङ्गनानां पुर एव तृप्तेर्भावावसानं पुरुषा लभन्ते।
इदं तु विज्ञाय यथोपचार्या तथा द्रवन्त्यग्रत एव नार्यः॥

अर्थात् बहुधा यह देखा जाता है, कि स्त्रियोंके तृप्त होनेके पहले ही पुरुष तृप्त हो जाते हैं, इसलिये ऐसे उपायों-का अनुष्ठान करना चाहिये, जिनसे स्त्रियां, पुरुषोंकी अपेक्षा पहले ही द्रवित हो जांय। इसके लिये किन उपायोंका अनुष्ठान करना चाहिये यह बतलाते हुए उन्होंने लिखा है कि:—

अभ्यर्थिता बाह्य रतेन भूयो या देशकाल प्रकृतीः प्रतीक्ष्य।
श्लथास्तरूण्यः प्रबलानुरागा द्रवन्ति तृप्यन्ति च शीघ्रमेव॥

अर्थात् देश, काल और प्रकृतिके अनुसार बाह्य-रति अर्थात् आलिङ्गन चुम्बन प्रभृतिसे बारंबार उनकी अभ्यर्थना

करनी चाहिये। इससे वे शिथिल हो जाती हैं। उनका अनुराग बढ़ जाता है, इसलिये वे शीघ्र ही द्रवित और तृप्त हो जाती हैं। अतएव उपरोक्त रोगसे पीड़ित पुरुषोंको चाहिये, कि वे पहले बाह्य-रति द्वारा स्त्रियोंका कामोद्दीपन करें और कामोद्दीपन होनेके बाद निम्नलिखित प्रकारसे दाम्पत्य संयोगमें प्रवृत्त हों :—

कल्लोलिनी कानन कन्दराद्रौ, दुःखाश्रये वार्पित चित्तवृत्तिः।
मृदुक्रमारम्भमभिन्न धैर्यः श्लथोपि दीर्घं रमते रतेषु॥

अर्थात् पुरुषको धैर्य धारण कर संयम पूर्वक धीरे धीरे संयोग करना चाहिये और कल्लोलिनी अर्थात् नदी, कानन—जंगल, कन्दरा—गुफा, अद्रि—पहाड़ या अन्य किसी विचित्र और कष्टकर स्थानमें अपनी चित्त वृत्तिको लगा देना चाहिये। इस प्रकार अन्यमनस्क होकर रति करनेसे श्लथ अर्थात् शीघ्र पंतनके रोगी भी दीर्घकाल पर्यन्त संयोग कर सकते हैं। अन्यमनस्क होनेका एक दूसरा उपाय उन्होंने यह बतलाया है :—

शाखा मृग मतिचपलं क्षित रुह शाखा गतिं विचिन्तयतः।
ध्वजमुखपर्यन्तगतं फल बीजं पुरुषस्य जातुनो गलति॥

अर्थात् संयोगमें रत मनुष्यको एक ऐसे अतिचपल बन्दरकी कल्पना करनी चाहिये, जो वृक्षकी इस शाखासे

उस शाखापर कूद फांद रहा हो और जो शान्त होकर बैठना जानता ही न हो। ऐसे बानरकी उछल कूद पर संयोग रत मनुष्यको अपना ध्यान लगा देना चाहिये। ऐसा करनेसे पतित होनेके करीब आया हुआ वीर्य भी पतित नहीं होता।

यह प्रायः देखा जाता है, कि मनुष्य जब अन्यमनस्क हो जाता है अथवा जब उसका ध्यान दूसरी ओर लग जाता है, तब उसे पहला काम—यद्यपि वह अनवरत रूपसे होता रहता है—मालूम ही नहीं पड़ता। एक रास्ता रोज अकेले चलने पर जितना बड़ा और कष्टकर मालूम होता है, उतना किसी दूसरेके साथ बातें करते हुए चलनेसे मालूम नहीं होता। रास्ता वही, चलनेवाला भी वही, किन्तु फिर भी दोनों यात्राओंमें जमीन आसमानका फर्क पड़ जाता है। क्योंकि मनुष्य जब दूसरेसे बातें करते हुए चलता है, तब अन्यमनस्क होनेके कारण उसे न तो थकावट ही आती है, न चलना ही अखरता है और बढ़े मजेमें मंजिल तय हो जाती है।

इसी तरह जब एक आदमी बीमार पड़ जाता है और पीड़ाकी अधिकताके कारण व्याकुल होकर चिल्लाता रहता है, तब उसके आत्मीय स्वजन उसे अनेक प्रकारकी मनोहर कहानियाँ, मनोरंजक आख्यान और दिलखुश

किस्से सुनाकर उसका ध्यान उसकी पीड़ाकी ओरसे खींचकर दूसरी ओर लगा देते हैं। रोगीका मन कहानियोंका ब्रह्मानन्द अनुभव कर, अपनी पीड़ाको—चाहे वह क्षण भरके लिये ही क्यों न हो, भूल जाता है। उस समय उसे कठिन पीड़ाका स्मरण नहीं रहता। वह दूसरे ही रसमें विभोर हो जाता है—उसका ध्यान बँट जाता है—वह अन्यमनस्क हो जाता है और अपनी कठिन पीड़ाको भूलकर स्वजनोंके मुखसे किस्से कहानियोंको सुन-कर प्रसन्न होता है, हँसता है और पुलकित होता है। क्योंकि उसका ध्यान बँट जाता है और वह अपनी पहली पीड़ाको भूल जाता है।

मन कभी दो बातोंका चिन्तन एक साथ नहीं कर सकता। वह सब इन्द्रियोंका राजा है। एक बात सोच कर वह सब इन्द्रियोंको काममें लगा देता है और आप कुछ और सोचने लगता है। इन्द्रियां इस समय अपने स्वामी-की आज्ञानुसार अपने अपने काममें लगी रहती हैं। दाम्पत्य-संयोगके सम्बन्धमें भी यही नियम घटित होता है। यदि मन उपरोक्त प्रकारसे अन्यान्य बातोंमें लगा दिया जायगा, तो इससे आनन्द प्राप्तिमें किसी प्रकारकी बाधा न पड़ेगी अथच वीर्यपात भी शीघ्र न होगा।

परन्तु स्तम्भनके लिये एक ओर जहां अन्यमनस्कताका अवलम्बन करना चाहिये, वहां दूसरी ओर स्त्रीको शीघ्र द्रवित करनेके लिये बाह्य-रतिका भी प्रयोग करना चाहिये। चुम्बन, आलिङ्गन आदिको बाह्य-रति कहते हैं और इसके अनेक अङ्ग हैं। हम आगे चलकर उन अङ्गोंपर विशेष रूपसे प्रकाश डालनेकी चेष्टा करेंगे।

शीघ्र पतनके रोगियोंको मादक द्रव्य और औषधियोंके बदले इस रामवाण तरीकेसे काम लेना चाहिये। बाह्य रति द्वारा स्त्रीकी काम वृत्तिको उत्तेजित कर, उपरोक्त प्रकारसे अन्य मनस्क हो, संयोग करनेसे अवश्य लाभ होगा। उन्हें ऐसा मालूम होगा, कि मानो उन्होंने स्त्रीके एक बहुत बड़े अभावकी पूर्त्ति कर दी है। इससे स्त्रीको असीम सुख होता है। स्वामीको भी स्त्रीके सुखसे यत्परोनास्ति सुख मिलता है। हम साहस पूर्वक कह सकते हैं, कि यह औषध आशातीत फलप्रद सिद्ध होगी। हताश पुरुषोंको आश्चर्य होगा, कि इस मामूली उपायसे वे कितने सुखके अधिकारी हुए हैं।

प्रत्येक स्वामीकी इच्छा होती है, कि सम्भोगके समय स्त्री प्राणहीन निश्चलकी भांति चुपचाप पड़ी न रह कर, स्वामीके सुखमें अपने सुखको मिश्रित कर, अपनी तृप्ति

प्रकट करे। इस प्रकारकी इच्छाका होना बुरा नहीं कहा जा सकता। कारण स्वामी स्त्रीका सहवास केवल इन्द्रिय परितृप्तिके लिये ही नहीं होता। सहवासमें पति-पत्नीके दैहिक-मिलनके साथ साथ मानसिक मिलन भी होता है। अतएव पतिकी यह इच्छा—स्त्री उसके सुखमें अपना सुख मिश्रित करके अपनी तृप्ति प्रकट करे, अनुचित नहीं कही जा सकती।

जो प्रेम करता है, वह प्रतिदान चाहता है, यह जगत्‌का शाश्वत् नियम है। यद्यपि कहीं कहीं इस नियमका अपवाद भी पाया जाता है। प्रतिदान-विहीन प्रेम उच्च कोटिका हो सकता है, लेकिन उस उच्च कोटि तक साधारण कोटि या निम्न कोटिके मनुष्योंकी पहुंच नहीं हो सकती। अतएव हमारी रायमें प्रतिदानकी आशा स्वाभाविक है। इसे हम औचित्य-हीन नहीं कह सकते।

किन्तु स्वाभाविक होते हुए भी इसकी पूर्त्ति होना सहज नहीं है। स्त्रीका मन यदि सुखी न हो, उसका स्नायु-मण्डल यदि सुखानुभव न कर सका हो, तो वह किस प्रकार स्वामीके सुखमें अपना सुख मिश्रित कर सकती है ? सुखका स्वाद पानेके पहले वह सुख कहाँसे और कैसे दे सकती है ? अतएव पहले उसकी देह और मनमें सुख

अवस्थामें पहले जाँच लेना चाहिये और यदि उचित प्रतीत हो, तो पहलेके दैशिक उपचारोंको परित्याग कर बादके स्थायी उपचारोंसे ही काम लेना चाहिये। यह बात भी एक उदाहरणसे अधिक स्पष्ट हो सकती है। मान लीजिये, कि एक फ्रेञ्च रमणीने किसी बंगाली युवकके साथ विवाह किया है और वह बंगालमें आ बसी है। आरम्भमें वह भारतीय उपचारोंसे घृणा करती थी और उसे स्वदेशी (फ्रेञ्च) उपचार ही पसन्द थे। कुछ दिनोंके बाद भारतके जलवायु और भारतीय लोगोंके संसर्गके कारण वह भारतीय उपचारोंको भी पसन्द करने लगी। ऐसी अवस्थामें, नायकको भारतीय उपचारोंसे ही काम लेना चाहिये, क्योंकि नायिका देश और काल परिवर्तनके कारण अपने पुराने दैशिक स्वभावको दिन प्रतिदिन भूलती जाती है और नये स्वभावको अपनाने लगती है।

इति प्रमाणं समयं च वेगं स्वभाव देशोद्भव सात्म्यभेदाद्।
स्वस्थामवस्थां प्रकृतिं प्रत्तीत्य प्रयुञ्जते बाह्यरतं रतं च॥

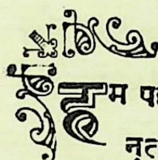
इस पुस्तकके पिछले अध्यायोंमें किस पुरुषको किस स्त्रीके साथ संयोग करना चाहिये, संयोगके लिये कौन समय अधिक उपयुक्त होता है, किस अवस्थाकी स्त्री ग्राह्य होती है, किस स्त्रीकी कैसी प्रकृति होती है—प्रभृात

बातें बतलायी जा चुकी हैं। रति-रहस्यके उपरोक्त श्लोकमें बतलाया गया है, कि इन सब बातों पर विचार करनेके बाद ही बाह्य-रति और रतिमें प्रवृत्त होना चाहिये। बाह्यरतिके सम्बन्धमें कुछ बातें हम एक अध्यायमें लिख आये हैं। अब हम उसके अंगों पर विशेष रूपसे विचार करेंगे।





कामकी ६४ कलायें



हम पहले ही अपने पाठकोंको बतला चुके हैं, कि नृत्य गीतादि कलाओंकी भाँति कामकी भी ६४ कलायें हैं, जो पाञ्चालकी कलाओंके नामसे विख्यात थीं और दाम्पत्य-संयोगके समय उनका प्रयोग होता था। यही कलायें यहाँ कामकलाके नामसे प्रसिद्ध थीं। वाभ्रव्यने इन कलाओंको आठ भागोंमें विभक्त किया था और प्रत्येक भागमें आठ :कलायें रक्खी थीं, परन्तु वात्स्यायन मुनि इन्हें १० भागोंमें विभक्त करते हैं और किसी भागमें ८ से कम तथा किसीमें ८ से अधिक कलायें रखते हैं। उनके मतानुसार इन कलाओंके १० भाग यह हैं (१) आलिङ्गन (२) चुम्बन (३) नख-विलेखन (४) दशन-छेद्य (५) प्रहणन (६) सीत्कृत (७) सम्वेशन (८) उपसृत (९) पुरुषायित और (१०) उपरिष्टक।

कामकलाके इन दस विभागोंको हम दाम्पत्य-संयोगके विभाग कह सकते हैं, क्योंकि इन्हींके द्वारा दाम्पत्य-संयोग निष्पादित होता है। यह पहले ही बतलाया जा चुका है कि दाम्पत्य-संयोग किंवा रति दो प्रकारकी होती हैं—(१) बाह्य-रति और (२) आभ्यन्तरिक-रति। कामकलाके उपरोक्त १० अङ्गोंमेंसे प्रथम चार अङ्ग बाह्य-रतिमें और शेष ६ अङ्ग आभ्यन्तरिक रतिमें परिगणित किये जाते हैं। हम पहले भी कई अध्यायोंमें इस बातका उल्लेख कर चुके हैं।

यद्यपि काम-विज्ञानकी पुस्तकोंका अध्ययन या कामकलाकी शिक्षा प्राप्त किये बिना ही संसारके अधिकांश मनुष्य दाम्पत्य-संयोगमें प्रवृत्त होते हैं और कुछ ही दिनोंमें कई बच्चोंके बाप भी बन जाते हैं; परन्तु हमें बड़ी खुशी होती, यदि हमें इस बातका विश्वास होता, कि सबलोग विधिवत् दाम्पत्य-संयोग करते हैं और उनके द्वारा किसी प्रकारका अनर्थ घटित नहीं होता। हमें इस बात पर किञ्चित् भी विश्वास नहीं हैं, कि वे यथानियम काम सेवामें प्रवृत्त होते हैं। हमारी यह दृढ़ धारणा है, कि कामकला न जाननेके कारण वे अपनी इन्द्रियोंका दुरुपयोग करते हैं और कभी कभी इस अज्ञानताके कारण उनके सम्मुख जीवन मरण

तकका प्रश्न उपस्थित हो जाता है। यद्यपि बाहरसे देखने-वालोंको ऐसा मालूम होता है, कि इन दम्पतियोंमें बड़ा प्रेम है और यह आनन्दमय जीवन बिता रहे हैं, परन्तु यदि कोई उनकी आन्तरिक अवस्थाका पता लगाये, तो हमारा विश्वास है, कि उन्हें प्रायः यही सुननेको मिलेगा, कि पति पत्नीमें अनबन रहती है—दोनों एक दूसरेसे सन्तुष्ट नहीं रहते या शारीरिक अत्याचारके कारण किसी दूसरे प्रकारका दुःख भोग रहे हैं।

हम इस बातको ज़ोर देकर कह सकते हैं, कि लोग स्त्रियोंको व्यवहार करना नहीं जानते—उन्हें बरतना या काममें लाना नहीं जानते। दाम्पत्य-संयोगके बहाने वे उन पर पाशविक अत्याचार करते हैं और अपने घरमें अशान्तिका बीज बोते हैं। उनके इस अत्याचारके कारण उनके घरमें ऐसी होली धधक उठती है, जिसमें उनका स्वास्थ्य और अन्तमें जीवन तक स्वाहा हो जाता है। हम नहीं समझते, कि किसीको इन बातोंकी सत्यता स्वीकार करनेमें यत्किञ्चित् भी संकोच होगा। जो बातें हमलोग नित्य ही देखते, सुनते और अनुभव करते हैं, उन्हें अस्वीकार कैसे कर सकते हैं?

तब विचारणीय यह है, कि यह भीषण अवस्था कैसे

दूर की जा सकती है? किन उपायोंसे दम्पतियोंको वास्तविक सुख प्राप्त हो सकता है और किस प्रकार उनके घरसे अशान्तिका बीज निर्वापित हो सकता है? इसका उत्तर हम तो यही देंगे, कि कामकलाकी—इन्द्रियोंके उचित उपयोगकी—शिक्षासे ही यह शिकायत दूर हो सकती है। इस ग्रन्थमें हमने इस सम्बन्धकी बहुत सी बातें अपने पाठकोंको बतलायीं हैं। बाल्यावस्थासे लेकर विवाह तक और विवाह होनेके बाद शयनगृहमें पदार्पण कर नवबधूसे वार्तालाप और परिचय प्राप्त करने तककी विधि हम अंकित कर चुके है। इसके बाद ही राग बृद्धि होने पर दम्पति दाम्पत्य-संयोगमें प्रवृत्त होते हैं। राग वृद्धिके लिये बाह्यरतिके प्रयोगोंका विधान है। उनका भी हम वर्णन करते हैं। काम-सूत्र प्रभृति ग्रन्थोंमें बाह्य-रतिके बाद आसन विस्तार और दाम्पत्य-संयोगकी विधि बतलायी गयी है। परन्तु आधुनिक सभ्यताके कुसंस्कार या सुसंस्कारके कारण एक निश्चित सीमा तक पहुंचनेके बाद हमारी लेखनी रुक जाती है। यद्यपि हम यह हृदयसे मानते हैं, कि स्त्री पुरुषोंको कामकलाकी प्रत्येक बात बतलानेकी आवश्यकता है, पद पद पर उन्हें सावधान करनेकी आवश्यकता है, ताकि वे किसी प्रकारका अनर्थ न कर बैठें

और अपने ही हाथसे अपने पैर पर कुल्हाड़ी न मार लें, तथापि आधुनिक सभ्यताका भाव हमें आगे नहीं बढ़ने देता। हम इस भावकी अवहेलना करना :उचित नहीं समझते। देशकाल और समय संयोग एक कार्यके लिये जितनी सुविधा देते हों, उतने ही तक वह कार्य करना उचित होता है। इसलिये आन्तरिक इच्छा होने पर भी हम कामकलाके समस्त अङ्गों पर प्रकाश डालनेमें असमर्थ हैं।

कामकलाके जो दस अङ्ग ऊपर गिनाये गये हैं, उनमें बारह प्रकारके आलिङ्गन, आठ प्रकारके चुम्बन, आठ प्रकारके नख विलेखन और आठ प्रकारके दन्तच्छेद बाह्य-रतिके अन्तर्गत हैं। यह सब प्रेमोपचार या अनुराग वृद्धिके साधन हैं, इसलिये तीन पृथक अध्यायोंमें हमने इनका वर्णन किया है। शेष ६ अङ्ग—प्रहणन, सीत्कृत, सम्वेशन, उपसृत, पुरुषायित और उपरिष्टक, जो अभ्यन्तर रतिके अन्तर्गत हैं—उनका वर्णन करना हम उचित नहीं समझते। परिचयके लिये केवल निम्नलिखित पंक्तियोंको ही हम पर्याप्त समझते हैं।

प्रहणन—दाम्पत्य-संयोगके समय अनुराग बृद्धि होने पर हस्त प्रहार करनेको प्रहणन कहते हैं। इसके

आठ प्रकार हैं। यथा—हस्तपृष्ठ, प्रस्तृतक, मुष्टि, समतलक, कील, कर्तरी, विद्धा और सन्देशिका। वात्स्यायन मुनिने लिखा है, कि इनका प्रयोग बहुत सम्हल कर करना होता है, क्योंकि लोग जब अनुरागसे अन्धे हो जाते हैं, तब उन्हें कुछ सूझ नहीं पड़ता। प्रहणनका प्रयोग करते समय एक राजाने एक नायिकाका प्राण ले लिया था और एक जनने एक स्त्रीकी आँख फोड़ डाली थी। वात्स्यायन मुनिने उनका उल्लेख कर लोगोंको इस सम्बन्धमें सावधान किया है।

सीत्कृत—दाम्पत्य-संयोगके समय मुखसे भिन्न भिन्न प्रकारकी आवाज निकालनेको सीत्कृत कहते हैं। इसके सात भेद हैं। हिंकार, स्तनित, कूजित, रुदित, सुत्कृत, दुत्कृत और फुत्कृत। यह प्रयोग बिना अभ्यासके नहीं किये जा सकते।

सम्वेशन—इस अध्यायमें वात्स्यायन मुनिने आसन विस्तारकी शिक्षा दी है। इनकी संख्या इस समय ८४ मानी जाती हैं, परन्तु वास्तवमें वह इतनी नहीं है। आसनोंके सम्बन्धमें आवश्यक और कल्याण कर बातोंका उल्लेख हमने एक प्रथक अध्यायमें किया है।

उपसृत—दाम्पत्य-संयोगकी भिन्न भिन्न विधियोंको उपसृत कहते हैं। इनकी संख्या १० है। हम इनके नाम गिनाना भी उचित नहीं समझते।

पुरुषायित—विपरीत रतिको पुरुषायित कहते हैं। हमने अन्यत्र इसका घोर विरोध किया है, क्योंकि सन्तान पर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। वात्स्यायन मुनिने कई कारण बतला कर इसका समर्थन किया है, जिसमें एक यह भी है, कि विपरीत रतिमें पुरुषको स्त्रीके मनोभाव और रुचि जाननेका अवसर मिलता है, परन्तु इतने हीके लिये सन्तानका विचार भाग्य भरोसे छोड़ कर हम इसके आयोजनकी सलाह नहीं दे सकते। वात्स्यायन मुनिने भी ऋतुमती, प्रसूता, मृगी और अति दीर्घा नारीको पुरुषायितमें न नियोजित करनेकी सलाह दी है। हमारी समझमें बुद्धिमान् स्त्री पुरुषोंको सदैव ही इससे दूर रहना चाहिये।

उपरिष्टक—मुखमें जघन कार्य करनेको उपरिष्टक कहते हैं। इसके नाम हीसे घृणा होती है, परन्तु कहीं कहीं इसका प्रचार है, इसलिये काम-सूत्रमें इसका वर्णन किया गया है।

पाठकोंको यदि इन बातोंके सम्बन्धमें अधिक जाननेकी

इच्छा हो, तो उन्हें वात्स्यायन मुनिका संस्कृत कामसूत्र देखना चाहिये। हमने इनका उल्लेख केवल इसीलिये किया है, कि यह बातें कामकलाके अन्तर्गत हैं और वात्स्यायन जैसे महर्षियोंने इस पर लेखनी चलायी है। ऐसी अवस्थामें इनका नामोल्लेख तक न करना और अपने पाठकोंको उनका परिचय भी न देना, एक महत्वपूर्ण विषयकी उपेक्षा करना है। और कुछ नहीं तो इसलिये भी यह बातें उल्लेखनीय हैं, कि यह हमारी भारतीय कामकलाकी बातें हैं। आरम्भसे अन्ततक, छोटीसे लेकर बड़ी तक समस्त बातें हमारे प्राचीन साहित्यमें विद्यमान हैं। हम यह बात जान कर गौरव पूर्वक अपना सिर ऊँचा उठा सकते हैं। इसी-लिये इस विषयकी उपेक्षा न कर, हमने संक्षेपमें इसका उल्लेख कर दिया है। अधिक जाननेके लिये कामसूत्रका साम्प्रयोगिक अधिकरण देखना चाहिये।



२३

आलिङ्गन

आलिङ्गन बाह्य-रतिका प्रधान अङ्ग है। पिछले कई अध्यायोंमें इसका नामोल्लेख हुआ है। स्त्री और पुरुषोंका प्रेम-मिलन आलिङ्गन हीसे आरम्भ होता है। यद्यपि संसारके सभी मनुष्य, जिन्हें ईश्वर-कृपासे दाम्पत्य-सुख उपभोग करनेका अवसर मिलता है, अपनी प्रियतमाको गले लगाते हैं, परन्तु उनका आलिङ्गन विधिवत् नहीं होता। जैसे प्रत्येक बातमें कुछ न कुछ कलाका अंश रहता है, वैसे ही आलिङ्गनमें भी कला रहती है। जो इस कलाको जानते हैं, वे विधिवत् आलिङ्गन कर प्रकृत आनन्द प्राप्त करते हैं। जो इस कलाको नहीं जानते उन्हें प्रकृत आनन्द नहीं मिल सकता। इसलिये इन कलाओंका जानना आवश्यक है। पाठकोंके हितार्थ हम यह विषय कामसूत्र और रति-रहस्यके मतानुसार अंकित करते हैं।

आलिङ्गन आठ प्रकारके होते हैं। यथा—(१) स्पृष्टक, (२) विद्धक (३) उद्घृष्टक (४) पीड़ितक (५) लतावेष्टितक (६) वृक्षाधिरूढ़क (७) तिलतंडूलक और (८) क्षीर नीरक। इनमेंसे पहले चार आलिङ्गन केवल उन्हीं स्त्रियोंके लिये हैं, जो कभी पहले सहवास कार्यमें नियुक्त न हुई हों। शेष चार आलिङ्गन उन स्त्रियोंके लिये हैं, जिनसे पहले समागम हो चुका हो। इनके लक्षण और इनकी व्यवहार विधि इस प्रकार है :—

स्पृष्टक—यदि नायिका सामनेसे आ रही हो और साधारण भावसे उसका आलिङ्गन न किया जा सके अथच उसे अनुराग बतलाना आवश्यक हो, तो अन्य कार्य करनेके बहाने उसके पाससे जाते समय उसके शरीरको शरीरसे स्पर्श करनेको स्पृष्टक आलिङ्गन कहते हैं। इसकी विशेषता यह होनी चाहिये, कि किसीको यह न मालूम हो सके, कि नायकने जान बूझ कर नायिकाका शरीर स्पर्श किया है।

विद्धक—एकान्तमें बैठे हुए पुरुषको, कुछ लेनेके बहाने झुक कर नायिका जब स्पर्श करती है और नायक उसे बाहु-पाशमें आबद्ध कर लेता है, तब उसे विद्धक कहते हैं। यह दो आलिङ्गन केवल उन्हीं स्त्रियोंके लिये हैं,

जिनसे कुछ बातचीत हो चुकी हो। जिनसे बहुत सम्पर्क हो या जिनसे बिलकुल परिचय या बातचीत न हो, वहां इन आलिङ्गनोंसे कोई लाभ नहीं होता। अतः इनका प्रयोग न करना चाहिये।

उद्घृष्टक—अन्धकारमें, किसी मेले ठेलेमें जहां खूब भीड़ हो या किसी उत्सवके उपलक्ष्यमें मन्दिर आदिमें एकान्तमें बड़ी देरतक नायक और नायिकाके शरीरका जो परस्पर घर्षण होता है, उसे उद्घर्षण या उद्घृष्टक कहते हैं।

अवपीडितक—उद्घर्षण भावसे ही, किसी दीवार या स्तम्भको अथवा किसी दूसरे मनुष्यको दोनों हाथोंसे पकड़कर पीड़ित करनेको अवपीड़ितक कहते हैं। उद्घृष्टक और अवपीड़ितक आलिंगनोंका प्रयोग केवल उसी अवस्थामें होना चाहिये, जब नायक और नायिका दोनों एक दूसरेसे परिचित हों और उनके हृदयमें अनुराग उत्पन्न हो चुका हो। यह चारों आलिंगन केवल अनुराग प्रदर्शनके लिये काममें लाये जाते हैं।

लतावेष्ठितक—लता जिस प्रकार वृक्षको आवेष्ठित करती है, उसी प्रकार सरला रमणी जब अपने

पतिको बाहुपाशमें आवेष्ठित करती है और अधिक सीत्कार न कर चुम्बनके लिये मुख उठाकर पतिके मुखको झुकाती है अथवा पतिको आवेष्ठित कर अपने अंगको किञ्चित उठाती है और किसी रमणीय वस्तुका दर्शन करती है, तब उसे लतावेष्ठितक कहते हैं।

वृत्ताधिरूढ़क—जब नायिका पतिके एक पैरको अपने पैरसे दाब लेती है और अपना दूसरा पैर पतिके उरुदेश पर रख देती है अथवा एक हाथ नायककी पीठपर रख, दूसरे हाथसे उसके बाहुमूलको अपनी ओर खींचती है और उसे चुम्बन करनेकी चेष्टा करती है, तब उसे वृक्षाधिरूढ़क कहते हैं। लतावेष्ठितक और वृक्षादिरूढ़क आलिंगनोंका प्रयोग उस समय होना चाहिये, जब नायक और नायिका दोनों बैठे हों—लेटे हुए न हों।

तिलतंडूलक—नायक और नायिका लेटी हुई अवस्थामें एक दूसरेको हाथ और पैरोंद्वारा जब गाढ़ालिंगन करते हैं, तब उसे तिलतंडूलक कहते हैं।

नीरक्षीरक—गोदीमें बैठी हुई या लेटी हुई नायिकाके शरीरको वेष्ठित कर, भावोद्रेककी अधिकतासे नायक जब गाढ़ालिंगन करता है, तब उसे नीरक्षीरक कहते

हैं। उस समय ऐसा मालूम होता है, मानो नायक नायिका दोनों एक दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट होना चाहते हैं— दूध और पानीकी तरह मिल जाना चाहते हैं। जिस समय स्त्री और पुरुष दोनोंके हृदयमें सहवासकी इच्छा जागरित हो उठती है उस समयको रागकाल कहते हैं। तिलतंडूलक और नीरक्षीरक आलिंगनोंका प्रयोग उसी समय करनेकी सलाह दी गयी है।

इन आठ प्रकारके आलिंगनोंके अतिरिक्ति उपगूहन नामक आलिंगनोंका एक और भेद है। इन आलिंगनोंमें किसी एक अङ्ग द्वारा अवपोड़न किया जाता है, इसलिये इनका दूसरा नाम एकांगोपगूहन भी है। सुवर्णनाभने इनका प्रतिपादन किया है। उनके मतानुसार इसके चार प्रकार हैं (१) उरूपगूहन (२) जघनोपगूहन (३) स्तनालिंगन और (४) ललाटिका। इनके लक्षण इस प्रकार बतलाये गये हैं :—

उरूपगूहन—"तत्रोरुसन्दंशेनैकमूरुद्वयं वा सर्वप्राणं पीड़येदित्युरूपगूहनम्" अर्थात् पार्श्वस्थ स्त्री या पुरुषके एक या दोनों उरुओंको स्त्री या पुरुष अपने उरुद्वारा वेष्टित कर सम्पूर्ण शक्ति लगाकर जब अवपीड़ित करते हैं, तब उसे उरूपगूहन कहते हैं। मांसल स्थानोंमें इस प्रकारका अवपीड़न सुखकारी प्रतीत होता है।

जघनोपगूहन—"जघनेन जघनमवपीड्य प्रकीर्यमाण केशहस्ता नखदशन चुम्बन प्रयोजनाय तदुपरिलङ्घयेत्तज्जघनोपगूहनम्" अर्थात् जंघासे जंघाका पीड़न करना, बालोंको बिखरा देना और नखदशन, चुम्बन तथा ग्रहणनके लिये स्त्रीका पुरुषके ऊपर अवस्थान करना जघनोपगूहन कहलाता है।

स्तनालिंगन—"स्तनाभ्यामुरा प्रविश्य तत्रैव भावमारोपयेदिति स्तनालिंगनम्" अर्थात् स्तनोंके भारको नायकके उरस्थलपर रखनेको स्तनालिंगन कहते हैं।

ललाटिका—"मुखे मुख मासज्याक्षिणी अक्ष्णोर्ललाटेन ललाटमाहन्यात् सा ललाटिका" अर्थात् मुख पर मुख रखकर आंखोंसे आंखें मिलाकर ललाटद्वारा ललाटको ताड़न करना ललाटिका कहलाता है।

आलिंगनके यह १२ भेद सुप्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त और भेद भी हो सकते हैं। यदि किसीको वे मालूम हों तो उनका प्रयोग करनेमें कोई आपत्ति न होनी चाहिये। ध्यान केवल इस बातका रहे, कि वे सब अनुराग वर्द्धक हों, क्योंकि आलिंगनका प्रधान उद्देश्य अनुराग वृद्धि ही है। कामसूत्रमें कहा भी गया है कि :—

ये ऽपिह्यशास्त्रिताः केचित् संयोगाद् रागवर्द्धनाः ।
आदरेणैव तेऽप्यत्र प्रयोज्याः साम्प्रयोगिकाः ॥

अर्थात् अनुराग वर्द्धक जो बातें इस शास्त्रमें नहीं बतलायी गयीं, अथच लोग उनका प्रयोग करते हैं या कर सकते हैं, तो उन्हें भी काममें लानेमें किसी प्रकारका संकोच न करना चाहिये, क्योंकि उनका उद्देश्य भी अनुराग वृद्धि ही होता है।

कुछ लोग सम्वाहन या अंगमर्द्दनको भी आलिंगनका एक भेद मानते हैं, परन्तु वात्सायन मुनि सम्वाहनको आलिंगनसे सर्वथा पृथक मानते हैं। उनका कथन है कि आलिंगन और संवाहनका प्रयोग जब भिन्न भिन्न समयमें होता है और उनका कार्य भी भिन्न दिखायी देता है, तब उन दोनोंको एक न समझना चाहिये। उपगूहन संयोगके समय काममें लाया जाता है और संवाहन दूसरे समयमें। उपगूहनका प्रभाव स्त्री और पुरुष दोनोंपर पड़ता है, परन्तु संवाहनका प्रभाव स्त्री द्वारा प्रयुक्त होनेपर केवल पुरुष ही पर और पुरुष द्वारा प्रयुक्त होनेपर केवल स्त्री ही पर पड़ता है। इसलिये इन दोनोंको एक दूसरेसे सर्वथा भिन्न समझना चाहिये।

——



चुम्बन

प्राचीन पण्डितोंने आलिंगनके बाद चुम्बन और नख तथा दन्तच्छेद्य आदि उपचारोंकी आवश्यकता बतलायी है। चुम्बनकी महिमा अपरंपार है। इसकी महिमा, इसका मूल्य, इसका प्रभाव और इसके प्रचारके सम्बन्धमें कुछ जानना हो, तो अंग्रेजी साहित्य देखिये। अंग्रेजी भाषामें इस विषयपर न जाने कितनी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। वहाँ यह एक घृणित कार्य नहीं समझा जाता। वहांके लोग इसे आर्ट या कलाकी श्रेणीमें परिगणित करते हैं। प्राचीन भारतमें भी ऐसा ही समझा जाता था। तभी तो पाञ्चालकी कलाओंमें इसकी गणना की गयी है।

हमारे देशमें चुम्बनका प्रयोग केवल दो ही अवस्थामें होता है.—या तो मा बाप वात्सल्यभावसे नन्हे नन्हे

बच्चोंको चुम्बन करते हैं, या पति पत्नी दाम्पत्य प्रेमके आवेशमें इसका प्रयोग करते हैं। परन्तु पाश्चात्य देशोंमें इसका क्षेत्र बहुत बड़ा और विस्तृत है। वहाँ एक ४० वर्षका लड़का अपनी ६० वर्षकी माताको चुम्बन कर सकता है। भाई बहिन एक दूसरेको चुम्बन कर सकते हैं और इसी तरह प्रायः सभी इसको काममें ला सकते हैं। भारतमें यह अवस्था नहीं आ सकती और इसका आना वाञ्छनीय भी नहीं है। हम यहां केवल दोनों देशकी तुलना भर किया चाहते हैं। बिलायत बालोंने इसे व्यवहारिक या संसारोपयोगी कलाओंमें स्थान दिया है और हमारे यहां कामकलाओंमें इसकी गणना की गयी है। यही भारतीय और पाश्चात्य देशके चुम्बनमें प्रधान अन्तर है।

कामसूत्र और रति रहस्य प्रभृति प्राचीन पुस्तकोंमें चुम्बनके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा गया है। वात्सायन मुनिने सर्वप्रथम इस बात पर विचार किया है, कि आलिंगनके बाद जब चुम्बन और नख तथा दंत—तीनों उपचार परमाश्यक हैं, तब इन तीनमें किसका प्रयोग पहले करना चाहिये। इस सम्बन्धमें बहुत कुछ विचार करनेके बाद उन्होंने बतलाया है, कि इन तीनोंका उद्देश्य अनुराग वृद्धि

होता है, अतः मौका देखकर जिसकी आवश्यकता प्रथम प्रतीत हो, उसीका पहले प्रयोग करना चाहिये।

चुम्बन करनेके प्रधान स्थान आठ हैं। यथा—(१) ललाट (२) अलक (३) कपोल (४) नयन (५) वक्षस्थल (६) स्तन (७) होंठ और (८) ओष्टान्तमुख। कुछलोग उरु सन्धि, बाहुमूल और नाभि मूलको भी चुम्बनका स्थान मानते हैं, परन्तु अधिकांश विद्वानोंके मतानुसार उपरोक्त आठ ही स्थान उपयुक्त हैं।

चुम्बन आठ प्रकारके होते हैं। यथा—(१) निमित्तक (२) स्फुरितक (३) घट्टितक (४) सम (५) वक्र (६) उद्भ्रान्त (७) अवपीड़ितक और (८) पञ्चम अवपीड़ितक। इनमेंसे पहले तीन चुम्बन कन्या या नवविवाहिता वधूके लिये हैं और शेष विश्रब्ध नायिकाओंके लिये। पहले तीन चुम्बनका प्रयोग नायिका नायक पर करती है और शेष पांच प्रकारके चुम्बनोंका प्रयोग नायक द्वारा होता है। इन चुम्बनोंकी व्याख्या कामसूत्रमें इस प्रकार की गयी है :—

(१) नवोढ़ा स्त्री सखी आदि द्वारा जब बलात् चुम्बनमें नियुक्त की जाती है, तब वह नायकके मुँहतक मुँह ले जाती है, परन्तु चुम्बन नहीं करती। इसे निमित्तक या परिमित चुम्बन कहते हैं।

(२) नायिका जब अपने मुखमें रक्खे हुए प्रियतमके अधरको ग्रहण करनेकी इच्छा रखती हुई भी मुग्धापन या लज्जासे ग्रहण नहीं करती है, तब अधर स्फुरणके कारण उसे स्फुरितक चुम्बन कहते हैं।

(३) अपने मुखमें रक्खे हुए प्रियतमके अधरको अपने होठोंसे नायिका जब कोमलता पूर्वक ग्रहण करती है और अपने हाथोंसे नायककी आंखें बन्द कर, धीरे धीरे स्पर्श करती है, तब उसे घट्टितक चुम्बन कहते हैं। इन तीन चुम्बनोंका प्रयोग नवोढ़ा नायिका द्वारा ही होता है।

(४) अपने सामने मुख रखकर अधरोष्ट ग्रहण करनेको समचुम्बन कहते हैं (५) मुँह घुमाकर अधरोंको वर्तूलाकार कर ग्रहण करनेको तिर्यक या वक्र चुम्बन कहते हैं। (६) यदि ठोढी और मस्तक पकड़, मुख घुमा कर अधरोष्ट ग्रहण किये जाते हैं, तो उसे उद्भ्रान्त चुम्बन कहते हैं। (७) उसी अवस्थामें अवपीड़ित कर चुम्बन करनेको अवपीड़ितक चुम्बन कहते हैं और (८) यदि हाथ द्वारा ओष्टको गोल बनाकर अधरों द्वारा अवपीड़ित किया जाता है, तो उसे पञ्चम अवपीड़ितक कहते हैं।

यह चुम्बनके आठ प्रधान भेद हैं। इनके अतिरिक्त बिघटित, अरद, उत्तराख्य, संपुटाख्य, अनुवदन, अन्वर्थ

संक्रान्तक, जिह्वा युद्ध, वदनयुद्ध, अन्तर्मुख चुम्बन, दशन चुम्बन, जिह्वा चुम्बन, तालुचुम्बन और अधरपान आदि चुम्बनके और भी अनेक भेद हैं। इन सबोंका विस्तृत विवरण देना अनावश्यक है। इनके नामसे साधारणतया इनका जितना परिचय मिलता है, वही पाठकोंके लिये पर्याप्त है।

ऊपर जो चुम्बन बतलाये गये हैं, वह केवल मुखके ही लिये नहीं हैं। मुख या अधरोष्टपर उनका जिस प्रकार प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार अन्यान्य स्थानोंमें भी—स्थानके अनुसार उनका प्रयोग किया जा सकता है। उरुसन्धि, कक्ष और वक्षस्थलमें सम चुम्बन; कपोल, कर्णमूल और नाभिमूलमें पीड़ित चुम्बन; ललाट, ठोढी और कक्ष पर्यन्तके प्रदेशमें अञ्चित चुम्बन तथा ललाट और नेत्रमें मृदुचुम्बन अधिक रुचिकर प्रतीत होता है।

यही चुम्बन अवस्था-भेदसे दूसरे नामोंसे पुकारे जाते हैं। यथा—(१) सोते हुए नायकका मुख देख कर नायिका अपना प्रेम जतानेके लिये; जो चुम्बन करती है, उसे रागदीपन कहते हैं (२) गीत और आलेख्य आदिमें लगे हुए नायकका प्रमाद छुड़ानेके लिये; नायिकासे विवाद हो जाने पर उस विवादको छुड़ानेके लिये; किसी

दूसरी ओर देखते हुए नायकका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये या निद्राभिभूत होनेकी तैयारी करते हुए नायककी निद्रामें व्याघात डालनेके लिये जो चुम्बन किया जाता है, उसे चलितक कहते हैं (३) असमयमें या रात्रिको विलम्बसे आने पर, अपना अभिप्राय व्यक्त करनेके लिये नायक जब सोती हुई नायिकाको चुम्बन करता है, तब उसे प्रतिबोधिक चुम्बन कहते हैं। वात्स्यायन मुनि लिखते हैं, कि नायकका अनुराग जाननेके लिये, उसके आनेके समय नायिका यदि सोनेका बहाना कर झूठमूठ सो रहे और नायक आकर प्रतिबोधित चुम्बन करे तो समझना चाहिये कि नायक अनुरक्त है (४) अपना अनुराग दिखानेके लिये दर्पण, दीवार परकी छाया या जलमें पड़े हुए प्रतिबिम्बको, गोदीके बच्चे या चित्रको, निकटस्थ नायककी हस्ताङ्गुलि या पदाङ्गुलियोंको, और सोते हुए नायककी जंघा पर शिर रख कर, उसके उरु देशको चुम्बन करनेका भी विधान है। इन्हें आभियोगिक चुम्बन कहते हैं।

यही चुम्बनके प्रधान भेद हैं। जिस समय चुम्बन व्यापार चल रहा हो, उस समय वात्स्यायन मुनिने (चुम्बनकी) द्यूतक्रीड़ा करनेका आदेश दिया है। द्यूतक्रीड़ासे नायक नायिकामें प्रेम कलह उत्पन्न होता है,

नायकको नख और दशन प्रयोग करनेका अवसर मिलता है और इसके फलस्वरूप अनुराग वृद्धि होती है। द्यूत-क्रीड़ाकी विधि यह है :—

नायक और नायिकाको आपसमें चुम्बनके सम्बन्धमें कोई बात तय कर लेनी चाहिये, कि जो ऐसा कर ले जायगा वह जीता और जो न कर पायगा, वह हारा हुआ समझा जायगा। बादको उन्हें चुम्बन कार्य सम्पादन करना चाहिये। उस समय विवाद बढ़ानेके लिये, नायिका यदि जीत भी जाय, तो बारंबार अपनी जीत बतला कर उसे चिढ़ाना चाहिये। ज्यों ज्यों वह चिढ़े, त्यों त्यों उसे अधिकाधिक चिढ़ानेकी चेष्टा करनी चाहिये। इससे कलह बढ़ेगा और नायकको नख दशन प्रयोग करनेका मौका मिलेगा। कलह न बढ़नेसे कोई लाभ न होगा, इसलिये जिन बातोंसे कलह बढ़े, वही बातें कहनी चाहिये। यही द्यूतक्रीड़ा है। इसमें केवल उन्हीं लोगोंको सफलता मिलती हैं, जो बड़ी चञ्चल प्रकृतिके होते हैं। इसलिये ढीलीढाली तबियतके लोगोंको इसका आयोजन न करना चाहिये।

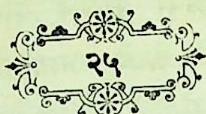
अन्तमें हम अपने पाठकोंको एक बार फिर बतला देना चाहते हैं, कि अनुराग प्रदर्शन या उसकी वृद्धिके लिये ही

चुम्बनकी सृष्टि हुई है। बहुधा चुम्बनोंका प्रयोग पुरुष ही करते हैं, परन्तु जब स्त्रियां पुरुषसे :परिचित हो जाती हैं, तब वे भी इसका प्रयोग करने लगती हैं। यों तो वे स्वभावसे ही लज्जाशील होती हैं, परन्तु जब अनुराग उत्पन्न होता है, तब थोड़ी देरके लिये लज्जाका लोप हो जाता है। उस समय यदि नायिका चुम्बन आदि करे, तो पुरुषको उसका उत्तर अवश्य देना चाहिये। ऐसा न करनेसे स्त्रियां खिन्न हो जाती हैं और पुरुषको अरसिक मान लेती हैं। वात्स्यायन मुनिने इस सम्बन्धमें लिखा है कि :—

कृते प्रतिकृतं कुर्यात्ताडिते प्रति ताड़ितम्।
करणेन च तेनैव चुम्बिते प्रति चुम्बितम्॥

अर्थात् नायिका साम्प्रयोगिक या आभियोगिक आदि चुम्बनोंका प्रयोग करे तो उसका प्रतिकार करना चाहिये। ताड़ित या चुम्बित करनेपर उसी प्रकार प्रतिताड़ित या प्रतिचुम्बित करना चाहिये—नायिका जिस प्रकार ताड़न या चुम्बन करे, उसी प्रकार नायकको भी ताड़न और चुम्बन करना चाहिये। अन्यथा नायिका नायकको जड़ समझ कर विरक्त हो जायगी। पाठकोंको इन सब बातों पर ध्यान रख, यत्नपूर्वक चुम्बनका प्रयोग करना चाहिये।

—



नख और दशन-प्रयोग

यह पहले ही बतलाया जा चुका है, कि आलिङ्गन और चुम्बनसे नायक तथा नायिकाका रागदीपन होता है। उस बढ़े हुए अनुरागको और अधिक बढ़ानेके लिये नख और दशन-प्रयोगका विधान है। नख-प्रयोगको नख विलेखन या नखछेद्य और दशन-प्रयोगको दशन विलेखन या दशनछेद्य कहते हैं। इस अध्यायमें इन दोनोंके सम्बन्धकी आवश्यक बातें क्रमशः हम अंकित करते हैं।

नख-विलेखन।

नख विलेखनके सम्बन्धमें सर्व प्रथम विचारणीय यह है, कि इसका प्रयोग किस समय और किसके ऊपर होना चाहिये ? वात्स्यायन मुनिके कथनानुसार प्रथम समागम कालमें, प्रवाससे वापस आनेपर, प्रवासके लिये जाते

समय, क्रुद्ध नायिकाके प्रसन्न होनेपर तथा मद्यपानादि द्वारा मत्त बनी हुई नायिका परही इसका प्रयोग होना चाहिये। साथ ही यह भी जान रखना चाहिये, कि मन्द और मध्यवेग पात्रोंपर इसका प्रयोग नित्य होना ठीक नहीं। वे इसे सहन नहीं कर सकते। चण्डवेग नायक नायिकाओंके लिये इसका आयोजन सदैव आवश्यक है।

नख विलेखनकी कला नखोंपर निर्भर करती है, इसलिये वात्स्यायन मुनिने नखोंके सम्बन्धमें कई बातें बतलायी हैं। उनका कथन है, कि चण्डवेग नायक नायिकाओंके नखोंमें दो तीन रेखायें (करौंतीके दांतकी तरह) होनी चाहिये। मध्यवेग नायक नायिकाओंके नाखून शुकाकृति (चंचुकी तरह तीक्ष्ण) और मन्दवेग नायक नायिकाओंके नाखून अर्धचन्द्राकार होने चाहिये। जिन नखोंमें विविध वर्णकी रेखायें दिखायी देती हैं, जिनका पृष्ठदेश समान होता है, जो उज्ज्वल होते हैं, जो विस्फुटित नहीं होते, जो वर्धनशील, मृदु और देखनेमें सुन्दर मालूम होते है, वे अच्छे गिने जाते है और उनके प्रयोगसे नायक नायिकाकी अनुराग वृद्धि होती है।

नख बिलेखनके आठ भेद हैं। यथा (१) आच्छूरितक (२) अर्धचन्द्रक (३) मण्डल (४) रेखा (५) व्याघ्रनख (६)

मयूर पदक (७) शशप्लूतक और (८) उत्पल पत्रक।
इनके प्रयोग-स्थान यह हैं :—

ग्रीवा पार्श्वोरु कक्षेषु कटिपृष्ठस्तनेषु च।
सम्प्रयोगे प्रयुञ्जीत नखच्छेद्यानियोषिताम्॥

अर्थात् दोनों बगल, दोनों स्तन, कण्ठदेश, पृष्ठदेश, जघनस्थल (कटि और नितम्ब सहित) तथा दोनों उरु— यह नख विलेखनके स्थान हैं। यद्यपि उपरोक्त आठो प्रकारके नख बिलेखन अवस्थाके अनुसार उपरोक्त सभी स्थानोंमें प्रयोग किये जा सकते हैं, तथापि भिन्न भिन्न प्रकारके नख विलेखन बहुधा भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रयुक्त होते हैं। नख विलेखनोंकी व्याख्या और उनके मुख्य स्थान हम नीचे अंकित करते हैं।

(१) किसी स्थानपर पांचों नख रखकर धीरेसे खरोंचनेको आच्छूरितक कहते हैं। यह क्रिया इतने हलके हाथसे होनी चाहिये, कि रेखा या क्षत न हो। केवल अंगस्पर्शही इसका उद्देश है। खरोंचते समय एक प्रकारका शब्द भी होता है। नायक और नायिका दोनों इसका :प्रयोग कर सकते हैं। अवस्थाके अनुसार सर्वत्र इसका प्रयोग हो सकता है, किन्तु हनुदेश, अधरप्रान्त तथा हृदय इसके लिये अधिक उपयुक्त स्थान हैं।

(२) किसी स्थान पर किञ्चित वक्रभावसे ⌒ इस प्रकार नख गड़ा देनेको अर्धचन्द्रक कहते हैं। कण्ठ और स्तनपृष्ठ इसके लिये अधिक उपयुक्त स्थान माने गये हैं। कण्ठमें यह बहिर्मुख और स्तनपृष्ठमें ऊर्ध्वमुख रहते हैं। कनिष्ठा, मध्यमा या अंगूठेके पासवाली उंगलीसे अर्धचन्द्रक निष्पादित होता है।

(३) दो अर्धचन्द्र जब एक दूसरेके सामने निष्पादित होते हैं तब ( ) इस प्रकारकी आकृति बन जाती है। इसे मण्डल कहते हैं। नाभिमूल, नितम्बोंका ऊपरी भाग और उच्च सन्धिस्थान इसके लिये अधिक उपयुक्त माने गये हैं।

(४) व्याघ्रकी तरह एक स्थानसे दूसरे स्थान तक खरोंच कर रेखायें बना देनेको व्याघ्रनख कहते है। स्तन मण्डल इसके लिये अधिक उपयुक्त स्थान माना गया है।

(५) अंगूठेको एक स्थानपर स्थिर रख शेष चारों उंगलियोंके नख मांसल स्थानमें दबा कर दाग बना देनेको मयूर पदक कहते हैं। मोरके पंजेका सा आकार बन जानेके कारण ही यह नाम पड़ा है।

(६) किसी स्थानपर पांचो नख स्थापित कर बल पूर्वक उस स्थानको पकड़नेसे जो रेखायें अंकित हो जाती हैं, उसे शशप्लूतक कहते हैं।

(७) कमल पत्रकी भांति जो रेखायें अंकित की जाती हैं, उन्हें उत्पलपत्रक कहते हैं। कटि प्रदेश और हृदय मण्डल इसके लिये उपयुक्त स्थान माने गये हैं।

(८) उरु या हृदयपर तीनचार रेखायें अंकित करनेको रेखा कहते हैं। इनका प्रयोग प्रवासके लिये बाहर जाते समय किया जाता है, ताकि बहुत दिनोंतक नायक या नायिकाको स्मरण बना रहे। इसीलिये इसे स्मारणीयक भी कहते हैं। नायक और नायिका दोनों इसका प्रयोग कर सकते हैं।

वात्स्यायन मुनि इन आठ प्रकारके नख विलेखनोंका वर्णन करनेके बाद लिखते हैं, कि नख विलेखनके यह आठ ही प्रकार नहीं हैं, पक्षी, फल फूल, कलश और लतापत्रके आकार भी उपरोक्त स्थानोंमें आलेखित किये जा सकते हैं। नायक नायिका जब प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं, तब वे न जाने कितनी प्रकारकी आकृतियां अंकित करते हैं। उन सबोंको गिनाना या उनका आकार बतलाना असम्भव है। अतएव लोगोंको अपने अभ्यास और कौशलसे यह कार्य निष्पादित करना चाहिये। यह न समझना चाहिये, कि यह कार्य बड़ा सहज है। यदि बुद्धिबलसे इसमें वैचित्र्य लानेकी चेष्टा की जाती है, तो प्रयोगकर्त्ताको आश्चर्यजनक

सफलता प्राप्त होती है। अन्तमें नखविलेखनके लाभ बतलाते हुए वात्स्यायन मुनिने लिखा है कि :—

नख क्षतानि पश्यन्त्या गूढ़स्थानेषु योषितः।
चिरोत्सृष्टाप्यभिनवा प्रीतिर्भवति पेशला॥
चिरोत्सृष्टेषु रागेषु, प्रीतिर्गच्छेत् पराभवम्।
रागायतन संस्मारि यदि न स्यान्नख क्षतम्॥
पश्यतो युवतिः दूरान्नखोच्छिष्ट पयोधराम्।
बहुमानः परस्यापि रागयोगश्च जायते॥
पुरुषश्च प्रदेशेषु नख चिन्हैर्विचिन्हितः।
चित्तं स्थिरमपि प्रायश्चलयत्येव योषितः॥

अर्थात्—गूढ़स्थानमें नखक्षत देखकर स्त्रियोंकी बहुत पुरानी प्रीति भी नयी हो उठती है। अनुरागका मूल कारण रूप, गुण और यौवन होता है। दीर्घकालतक परित्यक्त रहनेसे वह अनुराग नष्ट हो जानेकी सम्भावना रहती है, परन्तु नखक्षत ही उस समय रूप गुण और यौवनका स्मरण दिलाकर अनुरागको जाग्रत रखते हैं। किसी युवतीके पयोधर पर नखक्षत देखकर अपरिचित पुरुषके हृदयमें भी अनुराग उत्पन्न होता है और पुरुषके अंगपर नखक्षत देख संयमित मनकी स्त्रियोंका भी चित्त चंचल हो उठता है। तात्पर्य यह कि जब नखक्षत देखकर अपरिचित स्त्री

पुरुषोंके हृदयमें भी अनुराग उत्पन्न होता है, तब परिचित नरनारियोंके हृदयमें—उन नरनारियोंके हृदयमें जो परिणय सूत्रमें आबद्ध हो चुके हैं—अनुराग उत्पन्न होना कौन बड़ी बात है ?

नख विलेखनके सम्बन्धमें कामसूत्र प्रभृति प्राचीन पुस्तकोंमें जो बातें बतलायी गयी हैं, वे हम अपने पाठकोंको संक्षेपमें बतला चुके। अब हम दशनछेद्यके भेद अंकित करते हैं।

दशन-छेद्य।

वात्स्यायन मुनिने नख विलेखनका वर्णन करते समय जिस प्रकार नखोंका वर्णन किया है, उसी प्रकार दशन प्रयोगका निर्देश करते समय दशनके गुण दोषपर भी विचार किया है। उन्होंने लिखा है, कि समान, चिकने, रागग्राही (पान आदि खानेसे जिनपर रंग चढ़ जाय) उपयुक्त प्रमाण (छोटे बड़े या टेढ़े मेढ़े नहीं) निश्छिद्र (जिनके बीचमें फांक न हो) और तीक्ष्ण दशन अच्छे होते हैं। ऐसे दांत देखनेमें भी अच्छे होते है और इनका प्रयोग भी राग वर्द्धक होता है।

कुण्ठित (काले, कीड़े लगे हुए इत्यादि) फटे हुए,

विषम (जो ऊँचे नीचे हों—समान न हों) परुष (जो चिकने न हों) विरल (जिनके बीचमें फांक हो) और असमतल दांत अच्छे नहीं होते। ऐसे दांतोंसे न मुखकी शोभा ही बढ़ती है न अनुराग वृद्धिके लिये इनका प्रयोग ही सुविधा जनक प्रतीत होता है।

दन्तच्छेद्यके भी आठ प्रकार हैं। यथा—(१) गूढ़क (२) उच्छूनक (३) विन्दु (४) बिन्दुमाला (५) प्रवालमणि (६) मणिमाला (७) खण्डाभ्रक (८) वराह चर्वितक। उत्तरोष्ठ और अन्तर्मुख—जिह्वा और नयन इन स्थानोंको छोड़कर समस्त अंगोंमें दन्तप्रयोग किया जा सकता है, परन्तु ललाट, अधर, ओष्ट, ग्रीवा, कपोल, वक्षस्थल, उरुसंन्धि बाहु और नाभिमूल यह स्थान इसके लिये अधिक उपयुक्त हैं। उपरोक्त आठ प्रकारके नख विलेखनोंके लक्षण क्रमशः नीचे दिये जाते हैं :—

(१) केवल राग प्रदर्शनके लिये जो अनतिलोहित चिन्ह—ऐसा चिन्ह जो अधिक लाल न हो—किया जाता है, उसे गूढक कहते हैं। यह क्रिया किसी एक ही दांतसे निष्पादित करनी चाहिये।

(२) यही क्रिया जब अधिक जोरसे की जाती है और दाग फूल उठता है, तब उसे उच्छूनक कहते हैं।

(३) ऊपरी होठ और निचले दांत द्वारा त्वकको किञ्चित पकड़ कर दशन करनेको विन्दु कहते हैं।

(४) यही क्रिया जब समस्त दांतों द्वारा की जाती हैं, तब उसे बिन्दुमाला कहते हैं।

(५) दांत और होंठसे बारंबार ग्रहण कर पीड़ित करनेको प्रवालमणि कहते हैं। इसमें क्षत न होना चाहिये। ग्रहीत स्थान केवल लाल होकर रह जाना चाहिये।

(६) इसी क्रियाको पास पास कई बार करनेसे जो मालाकार बन जाता है, उसे मणिमाला कहते हैं।

(७) किसी स्थानमें चारों ओर दन्तक्षत कर गोल-मण्डल बनानेको खण्डाभ्रक कहते हैं।

(८) किसी स्थानको चारो ओरसे चिबा चिबा कर उसका मध्यस्थ भाग जब लोहितवर्णका कर दिया जाता है, तब उसे बराह चर्वितक कहते हैं।

गूढकके लिये अधर ; उच्छूनकके लिये अधर और कपोल; विन्दुके लिये अधर ; बिन्दु मालाके लिये कण्ठ, कक्ष, वंक्षणदेश, ललाट और उरु ; मणिमालाके लिये कण्ठ, कक्ष और वंक्षणदेश, तथा खण्डाभ्रक और बराह चर्वितकके लिये स्तन प्रदेश अधिक उपयुक्त माना गया है। अन्तिम दो

छेद्योंका प्रयोग केवल चण्डवेग नायक नायिकाओंके लिये ही करनेकी सलाह दी गयी है। यही दशन छेद्यकी ज्ञातव्य बातें हैं। जो लाभ नख क्षतसे होते हैं, वही लाभ दशन छेद्यसे भी होते हैं। वात्स्यायन मुनि नख और दशन प्रयोगको राग-वृद्धिका सबसे उत्तम साधन बतलाते हैं। इस सम्बन्धमें उन्होंने लिखा है कि :—

नान्यत् पटुतरं किञ्चिदस्ति राग विवर्द्धनम्।
नखदन्ते समुत्थानां कर्मणां गतयो यथा॥

अर्थात् नख और दशन प्रयोगसे जितनी राग वृद्धि होती है उतनी और किसी कर्म (उपचार) से नहीं होती। इसीलिये हमने धृष्टता पूर्वक इस विषयको यहां अंकित किया है, क्योंकि अनुराग (दाम्पत्य-प्रेम) ही मानव जीवनको सुखी बनानेका मूलमन्त्र है। पाठकोंको इससे लाभ उठानेकी चेष्टा करनी चाहिये।





आसन

किसी खास प्रकारसे शरीरको स्थित रखने—बैठे खड़े या पड़े रहनेके तरीकेको आसन कहते हैं। आसनोंकी सृष्टि इसलिये हुई है, ताकि एक ही अवस्थामें खड़े, पड़े या बैठे रहनेसे कष्ट न हो और अधिक समय तक उस अवस्थामें स्थित रहा जा सके। हठ योगमें ८४ आसनोंका वर्णन है। योगीयती उन आसनों-को काममें लाते हैं। इससे उन्हें तपश्चर्या या योग साधना करनेमें आराम मिलता है। आसनोंके समुचित प्रयोगसे वे न केवल एक अवस्थामें अधिक समय तक स्थित ही रह सकते हैं, बल्कि स्वास्थ्य और दीर्घायुष्य भी प्राप्त करते हैं।

योगकी भाँति किसीने भोगके आसनोंकी भी कल्पना

की है। लोग उनकी संख्या भी ८४ बतलाते हैं। मन चले नवयुवक उन आसनोंकी बड़ी खोजमें रहते हैं और उनके पीछे कुछ रुपये खरचने पड़ें, तो उसके लिये भी तैयार रहते हैं। कभी कभी इसीके पीछे ठगे भी जाते हैं। चालाक विज्ञापनदाता "८४ आसनों" का नाम लेकर बड़ी आसानीसे उन्हें अपना शिकार बनाते हैं। परन्तु अन्तमें उन युवकोंको निराश होना पड़ता है। "आसनोंकी सुन्दर तस्वीरें" देखनेके लिये वे जिन पुस्तकों-को मँगाते हैं, उनमें उनका नाम निशान भी नहीं होता। किसी पुस्तकमें भोगके बदले योगके ८४ आसन होते हैं, किसीमें केवल उनके नाम ही गिना दिये जाते हैं और किसीमें कसम खानेके लिये भी कुछ नहीं होता।

जयपुर आदि देशी राज्योंमें ऐसे अश्लील चित्रोंका बड़ा प्रचार है। यद्यपि वहाँ भी यह चित्र सरेआम नहीं बिकते, परन्तु दुकानदार मन चले युवकोंको देखकर उनसे किसी न किसी तरह सौदा कर लिया करते हैं। कभी कभी यह गन्दगी ब्रिटिश भारतमें भी आ जाती है और यहाँ भी लोग ऐसे चित्र बेचते हुए पकड़े जाते हैं। कलकत्ते जैसे शहरोंमें 'पेरिस पिक्चर' नामसे बन्द लिफाफोंमें दिगम्बर नरनारियोंके कार्ड बिकते हैं और फेरीवाले बड़ी

सरगर्मीसे नवयुवकोंको फंसानेकी चेष्टामें लगे रहते हैं। यह बड़े खेदकी बात है, कि नवयुवकोंकी कुरुचिके कारण उन्हें इस घृणित व्यवसायमें अनुचित प्रोत्साहन मिलता है।

नवयुवक ऐसे चित्रों या आसनोंकी खोजमें क्यों रहते है, यह समझना कठिन नहीं है। नीच प्रकृतिके लोग नाना प्रकारकी बातें सुना कर उनके हृदयमें कुरुचि उत्पन्न कर देते हैं। इससे युवकगण यह समझने लगते हैं, कि आसनोंके चित्र देख कर हम भी वैसा ही करेंगे और इससे विशेष आनन्दकी प्राप्ति होगी। परन्तु उनकी यह धारणा बहुत ही भ्रमपूर्ण होती है। आसनोंके चित्र देखने या उनका वर्णन पढ़नेसे कोई लाभ नहीं हो सकता, बल्कि इससे अनाचारकी वृद्धि ही होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। इसीलिये भारत सरकारने राजनियमों द्वारा ऐसे चित्रोंका प्रचार रोक दिया है।

स्त्री पुरुषके सहवासका प्रधान उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति और गौण उद्देश्य आनन्द प्राप्ति है। सन्तानोत्पत्तिका उद्देश्य पूर्ण करनेके लिये वही आसन उपयुक्त है, जिससे भली भांति गर्भाधान हो सके और आनन्द प्राप्तिके लिये भी वही आसन उपयुक्त है, जिससे किसी प्रकारका शारीरिक कष्ट न हो। हम समझते हैं, कि इस प्रकारके आसन

किसीको बतलाने नहीं पड़ते। सभी लोग इन कार्यों के लिये उपयुक्त आसनोंका प्रयोग करते हैं। उन्हें आप ही आप इनकी शिक्षा मिल जाती है।

प्रचलित आसनोंके अतिरिक्त जो लोग उलटे सीधे आसनोंकी खोजमें रहते हैं, उन्हें यह समझ रखना चाहिये, कि ऐसे आसनोंसे न तो गर्भाधान ही होता है, न आनन्द ही मिलता है। काया-कष्ट अवश्य बढ़ जाता है और इसके फल स्वरूप पति पत्नीमें मनोमालिन्य भी हो जाता है। दम्पतियोंके दाम्पत्य-संयोगसे जहां प्रेम बढ़ना चाहिये, वहां ऐसी कुचेष्टाओंसे विरक्ति उत्पन्न हो जाती है और इसका परिणाम कभी कभी बहुत भयंकर हो पड़ता है। यहां तक देखा गया है, कि पुरुषोंकी इन कुरुचियोंसे संत्रस्त होकर स्त्रियां गृह त्यागिनी हो गयी हैं, किसी दूसरे पुरुषसे विवाह कर लिया है या नदी नालेमें डूब मरी हैं। हमारा यह दृढ़ मन्तव्य है, कि गृहस्थोंकी गृह-देवियां किंवा कुल-वती महिलायें कष्टकर आसनोंको नापसन्द करती हैं और जो पुरुष वैसे आसनोंका प्रयोग करते हैं उनसे वे घृणा करने लगती हैं। इसलिये हम अपने पाठकोंको ऐसे आसनोंसे दूर ही रहनेको सलाह देते हैं।

परन्तु साथ ही हम अपने पाठकोंसे यह भी बतला देना

चाहते हैं, कि 'आसन' शब्द बुरा नही है। इस शब्दसे वे घृणा न करें। जिस प्रकार प्रत्येक वस्तुमें गुण दोष होते हैं, उसी प्रकार आसनके सम्बन्धमें भी समझना चाहिये। जब आसनोंका दुरुपयोग होता है या बेढंगे आसन काममें लाये जाते हैं, तब जहां एक ओर पति पत्नीमें कलहका बीजारोपण होता है, वहां दूसरी ओर, जब इनका रहस्य समझ कर उचित प्रयोग होता है, तब इनसे दाम्पत्य प्रेममें वृद्धि भी होती है। हम अपने पाठकोंको ऐसी दो चार बातें बतला देना उचित समझते हैं, जिनके ज्ञानसे सिवा लाभके हानि नहीं हो सकती।

आसनोंका यह उद्देश्य नहीं है, कि पति उनका प्रयोग कर स्त्रीको बुरी तरह तङ्ग करे, बल्कि उनका उद्देश्य है—स्त्री पुरुषोंमें साम्य उत्पन्न कर उन्हें सुख पहुंचाना। सम्बन्ध निर्णय नामक अध्यायमें हम बतला चुके हैं, कि पद्मिनीसे शशकका, चित्रिणीसे मृगका, शंखिनीसे वृषभका और हस्तिनीसे अश्व जातिके पुरुषका सम्बन्ध होना उपयुक्त माना गया है। वात्स्यायन मुनिने मृगी या हरिणीके लिये शशक, बड़वाके लिये वृषभ ओर हस्तिनीके लिये अश्वको उपयुक्त बताया है, क्योंकि इनकी जननेन्द्रियोंमें साम्य होता है। प्राचीन पण्डितोंके कथनानुसार स्त्रियोंमें

पद्मिनी, चित्रिणी, शंखिनी और हस्तिनी या मृगी, बड़वा और हस्तिनी तथा पुरुषोंमें शशक, मृग, वृषभ और अश्व या शशक, वृषभ और अश्व—इनकी जननेन्द्रियां उत्तरोत्तर एक दूसरेसे बड़ी होती हैं। जब दोनोंकी इन्द्रियां समान होती हैं, तब उनके संयोगको समरति कहते हैं। जब स्त्रीकी जननेन्द्रिय छोटी और पुरुषकी बड़ी होती है, तब उसे उच्च-रति कहते है और जब स्त्रीकी जननेन्द्रिय बड़ी और पुरुषकी छोटी होती है, तब उसे नीच रति कहते हैं। कामसूत्रमें इनके अनेक भेदोंका वर्णन किया गया है और बतलाया गया है, कि सम-रतिमें स्त्री पुरुष दोनोंको आनन्द नीच-रतिमें दोनोंको निरानन्द और उच्च-रतिमें शीघ्र तृप्तिके साथ ही स्त्रीको कष्टकी भी प्राप्ति होती है। इसलिये दाम्पत्य-संयोगके समय स्त्रीको इस प्रकार रहना चाहिये, जिससे विषमता दूर होकर आनन्दकी अनुभूति हो। वात्स्यायन के कामसूत्रकी टीकामें यशोधरने इस सम्बन्धमें निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया है :—

विवृतोरुकमुच्चैस्तु नीचैः स्यात् सम्वृतोरुकम्।
यथा स्थितोरुकं चापि समपृष्टं समेरते॥

अर्थात उच्चरतिमें स्त्रीको अपनी जंघायें फैली हुई, नीच रतिमें सिकुड़ी हुई और समरतिमें समान रखनी चाहिये।

यही आसनोंका मूल सिद्धान्त है। इससे विषमता दूर होकर दोनोंमें साम्य होता है। इसी सिद्धान्तको लेकर अनेकानेक आसनोंकी सृष्टि हुई है और यह बतलाया गया है, कि किस रतिमें कितने आसन उपयुक्त होते हैं, परन्तु वह सब जानना व्यर्थ है। पाठकोंको केवल मूल सिद्धान्त पर ध्यान रखना चाहिये। संसारके बहुत ही कम स्त्रीपुरुषोंमें साम्य होता है। यदि आसनोंके उपरोक्त सिद्धान्तको वे समझ लें, तो इससे उनका जीवन आनन्द-मय हो सकता है। स्त्री पुरुषोंमें साम्य न होनेके कारण आसनका यह सिद्धान्त जान लेनेसे उनकी :विरक्ति दूर हो सकती है। स्त्री और पुरुष दोनोंको सन्तोष प्राप्त हो सकता है और इससे दाम्पत्यप्रेममें वृद्धि हो सकती है। बेढंगे आसनोंसे आनन्दकी प्राप्ति और दाम्पत्यप्रेममें वृद्धि होना तो दूर रहा, कभी कभी उन :दोनोंमें सम्बन्ध बिच्छेद तक हो जाता है. इसलिये वे सर्वथा त्याज्य हैं।

एक बात और ध्यानमें रखने योग्य है। वैज्ञानिकोंका कथन हैं, कि जब मनुष्य खड़ा रहता है, तब उसके समस्त स्नायुओंको परिश्रम पड़ता है, जब वह बैठता है, तब उन स्नायुओंको कम परिश्रम पड़ता है और जब लेट रहता है, तब उन्हें बहुत आराम मिलता है। यही कारण है, कि

मनुष्यको खड़े रहनेमें तकलीफ, बैठनेमें आराम और लेट रहनेमें अत्यधिक आराम मिलता है। संयोगके समय शरीरके समस्त यंत्रोंको कुछ न कुछ परिश्रम पड़ता है, ऐसी अवस्थामें यदि मनुष्य खड़ा रहता है, तो वह परिश्रम बढ़ जाता है और बैठा या पड़ा रहता है, तो उसमें अधिक वृद्धि नहीं होती। जो लोग इस सिद्धान्तपर ध्यान रख आसनोंका प्रयोग करेंगे, उन्हें आराम मिलेगा। संयोगके बाद उन्हें अधिक थकावट या शिथिलता न मालूम होगी। परन्तु जो इसके विपरीत करेंगे, उन्हें शारीरिक कष्ट भोगना पड़ेगा और कुछ ही दिनोंमें उनके समस्त शारीरिक यन्त्र ढीले पड़ जायँगे। यहां तक देखा गया है, कि जिन्होंने खड़े रहकर अपनी पशुवृत्ति चरितार्थ की है, उनका दो दो तीन तीन दिन तक शरीर कांपता रहा है।

एक बात और भी ध्यानमें रखनी चाहिये। कितनेही लोग अपनी कुरुचिके कारण विपरीत रति करते हैं। स्त्रीको ऊपर रखकर रति करनेको विपरीत रति कहते हैं। कामसूत्रमें इसकी उपयोगिताका भी वर्णन किया गया है, परन्तु हम अपने पाठकोंको सदैव इससे दूर रहनेकी सलाह देते हैं, क्योंकि विपरीत रतिसे जो सन्तान उत्पन्न होती है, उसमें विपरीत अर्थात् कन्यामें पुत्रके और पुत्रमें

कन्याके लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं। इसीलिये यह त्याज्य है।

अन्तमें हम अपने पाठकोंको फिर सावधान कर देना चाहते हैं, कि अश्लील चित्र और आसनोंके अश्लील वर्णन देखने और पढ़नेसे चरित्र दूषित होता है। ऐसे चित्र बेचना या ऐसा वर्णन लिखना राजनियमके विरुद्ध है, अतः झूठे विज्ञापन-दाताओंसे बचें और इस अध्यायमें बतलाई हुई बातोंको ध्यानमें रख अपना दाम्पत्य-जीवन सुखी बनायें।



२७

रति-अवसान

विवाह होनेके बाद किस प्रकार नववधूसे घनिष्ठता बढ़ानी चाहिये, किसप्रकार बातचीतमें लगाकर उसे विश्वास दिलाना चाहिये और किस प्रकार अनुराग उत्पन्न कर आसन विस्तार करना चाहिये—यह सब पिछले अध्यायोंमें बतलाया जा चुका है। इसके बादकी बातें अकथनीय हैं। हां, क्रिया-समाप्ति होनेपर स्त्री पुरुषोंको क्या करना चाहिये यह बतलाया जा सकता है। हम काम-सूत्रके आधार पर यह विषय अंकित करेंगे और अपने पाठकोंको बतलायेंगे, कि उस समय किस प्रकारका आचरण करनेसे उनके दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि हो सकती है और वे

अपने जीवनको सुखी बना सकते हैं। वात्स्यायन मुनिने इस सम्बन्धमें लिखा है कि :—

"रतावसानिकं रागमति वाह्या संस्तयोरिव सव्रीड़योः परस्परमपश्यतोः पृथक पृथगाचार भूमि गमनम्। प्रति निवृत्य चा व्रीड़ायमानयोरुचित देशो पविष्टयोस्ताम्बूल ग्रहणमच्छीकृतं चन्दन मन्यद्वानुलेपनं तस्या गात्रे स्वयमेव निवेशयेत्। सव्येन बाहुना चैनां परिरभ्य चषकहस्तः सान्त्वयन पाययेत्। जलानुपानं वा खण्डखाद्यक मन्यद्वा प्रकृति सात्म्य युक्तमुभावप्युप युञ्जीयाताम्। अच्छरसकयूषमम्लयवागूं भृष्ट मांसोपदंशानि पानकानि चूतफलानि शुष्क मासं मातुलुङ्ग चुक्रकाणि स शर्कराणि च यथा देशसात्म्यं च। तत्र मधुरमिदं मृदु विशदमिति च विदश्य विदश्य तत्तदुपाहरेत्। हर्म्यतलस्थितयोर्वा चन्द्रिका सेवनार्थमासनम्। तत्रानुकूलाभिः कथाभिरनुवर्त्तेत। तदंक संलीनायाश्चन्द्रमसं पश्यन्त्या नक्षत्र पंक्ति व्यक्तीकरणम्। अरुन्धती ध्रुव सप्तर्षि माला दर्शनं च।"

वात्स्यायन मुनि इस सूत्रमें लिखते हैं, कि क्रिया समाप्ति होने पर स्त्री और पुरुषको अपरिचित व्यक्तियोंकी भांति सलज्ज भावसे एक दूसरेको बिना देखे ही भिन्न भिन्न स्थानोंमें जाकर शौच कार्यसे निवृत्त होना चाहिये। निवृत्त

होकर वापस आने पर निर्लज्ज भावसे परिचित व्यक्तियोंकी भांति किसी उपयुक्त स्थानमें बैठ कर ताम्बूल भक्षण और चन्दनादि अवलेपन करना चाहिये। वात्स्यायन मुनिने सलाह दी है, कि पुरुषको अपने ही हाथसे स्त्रीके शरीरमें अवलेपन कर देना चाहिये। इसके बाद हाथमें गिलास लेकर सुरापान या जलपान करना चाहिये या मिठाई किंवा कोई और वस्तु (कोई पाक या मेवा आदि) खानो चाहिये। खातेपीते समय केवल उन्हीं वस्तुओंका उपयोग करना चाहिये, जो अपनी प्रकृतिके अनुकूल हों। जिस वस्तुके खानपान या व्यवहारसे स्वास्थ्य नष्ट होनेकी सम्भावना हो, उस वस्तुका उपयोग भूल कर भी न करना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिने इस समय मांस और शर्करासे बनी हुई चीजें और फलोंका उपयोग करनेकी सलाह दी है, क्योंकि इन चीजोंके सेवनसे तुरन्त शक्ति प्राप्त होती है। हमलोगोंके भी यहां इस समय साधारणतया दूध पिया जाता है। यह प्रथा बहुत ही अच्छी और प्रशंसनीय है। तिब्बे अकबरीमें भी लिखा है कि दाम्पत्य-संयोगके बाद कोई भी मीठा पदार्थ खाना तो लाभदायक है ही, किन्तु गाय या भैंसका दूध सर्वोत्तम है। यदि इस दूधमें जरा सी सोंठ भी डाल दी जाय तो बहुत ही अच्छा है। इसको सभी

व्यवहार कर सकते हैं। खानेकी चीजोंमें कोई पाक, पकान्न या मेवा अच्छी चीजें हैं, परन्तु इनका व्यवहार अपनी अवस्था और प्रकृति आदि देख कर ही करना चाहिये।

यह चीजें खाते समय जिस तरह शबरीने रामचन्द्रजीको बेर खिलाये थे, उसी तरह पुरुषको एक एक चीज हाथमें लेकर, उसे जरा चख कर "यह बहुत मीठी है, बहुत ही अच्छी है, जरा देखो तो !" आदि शब्दोंके साथ आग्रह पूर्वक स्त्रीको देनी चाहिये। यदि शय्या छायामें (बन्द कमरे आदिमें) पिछी हुई हो, तो चन्द्रिका सेवनके लिये बाहर चाँदनीमें निकल आना चाहिये और वहां समयानुकूल बातें छेड़नी चाहिये। उस वक्त रात्रिका समय होता है, चारों ओर चांदनी छिटकी हुई होती है और आकाशमें फूलोंकी तरह तारागण बिखरे होते हैं, इसलिये नायिकाका ध्यान बहुधा चन्द्रकी ही ओर आकर्षित होता है और वह उसके दर्शन करने लगती है। नायकको चाहिये, कि उस समय वह नायिकाको भिन्न भिन्न तारे दिखा कर उनका परिचय दे और किस तारेको अरुन्धती कहते हैं, किसे ध्रुव कहते हैं, किसे सप्तर्षि मण्डल कहते हैं, उनमें क्या विशेषता है और कौन अधिक तेजस्वी है—इत्यादि बातोंकी चर्चा करे। इससे नायिका प्रसन्न होती है और पतिके प्रति उसे अनुराग

उत्पन्न होता है। वात्स्यायन मुनि इस विषयका उपसंहार लिखते हुए कहते हैं कि :

अवसानेऽपि च प्रीति रुपचारैरुपस्कृता।
सविस्रम्भ कथा योगै रतिं जनयते पराम्॥
परस्पर प्रीति करैरात्म भावानुवर्त्तनैः।
क्षणात् क्रोध परावृत्तैः क्षणात् प्रीति विलोकितैः॥
हल्लीसक क्रीडनकैर्गायनैर्लाट रासकैः।
राग लोलार्द्र नयनैश्चन्द्र मण्डल वीक्षणैः॥
आद्ये संदर्शने जाते पूर्वेयेस्युर्मनोरथाः।
पुनर्वियोगे दुःखं च तस्य सर्वस्य कीर्तनैः॥
कीर्तनान्ते च रागेन परिष्वङ्गै स चुम्बनैः।
तैस्तैश्च भावैः संयुक्तो यूनो रागो विवर्द्धते॥

अर्थात् रति अवसानके समय उपकरण परिष्कृत होनेसे अत्यन्त अनुराग उत्पन्न होता है। यदि उन बातोंके साथ विश्वासकी भावना मिली हुई रहती है, तो वह पराकाष्ठाको पहुंच जाता है। एक दूसरेको भले मालूम होनेवाले मनोभावके अनुरूप अर्थात् आलिङ्गन चुम्बनादि कार्य करनेसे, बारंबार रूठने—कृत्रिम क्रोध दिखाने या असन्तोष प्रकट करनेसे, बारंबार :एक दूसरेको प्रेमपूर्ण दृष्टिसे देखनेसे, देशकी प्रथानुसार किसी खेलमें प्रवृत्त :होने और गीत

गानेसे, अनुरागपूर्ण दृष्टिसे चन्द्र और नक्षत्र मण्डलादि मनोहर वस्तुओंको देखनेसे, तथा प्रथम दर्शन या व्याहके समय मनमें जो मनोरथ उत्पन्न हुए थे और वियोग होनेपर जो दुःख और व्यथा होगी उसकी चर्चा कर प्रेमपूर्वक आलिङ्गन और चुम्बन करनेसे दाम्पत्य-प्रेममें वृद्धि होती है। अतएव रति अवसानके समय स्त्री पुरुषोंको इन उपायोंसे काम लेना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रमें रति अवसानके समय स्त्री पुरुषोंका जो कर्तव्य निर्धारित किया है, वह हम अंकित कर चुके। रति अवसानके बाद स्त्री पुरुषोंका दाम्पत्य-संयोगके सम्बन्ध कोई कार्य शेष नहीं रहता। यहांसे वे फिर पीछेको लौट जाते हैं और पुनः उसी पथ पर धीरे धीरे अग्रसर होते हैं। इसलिये रति अवसानके बाद उन्हें कोई बात जाननेकी आवश्यकता नहीं रहती। इसलिये यही अध्याय हमारे इस ग्रन्थका अन्तिम अध्याय होना उचित था, परन्तु हमारी समझमें अभी कुछ ऐसी बातें लिखनेको रह गयी हैं, जिनका उल्लेख होना इस पुस्तकमें परमावश्यक है। वे सभी स्त्री पुरुषोंके कर्त्तव्यसे सम्बन्ध रखती हैं। जबतक स्त्री पुरुष अपना कर्तव्य नहीं समझेंगे और एक दूसरेके प्रति वफादार न रहेंगे, तबतक वे अपनी

पशु-वृत्ति भले ही चरितार्थ कर लें, किन्तु उनमें वास्तविक दाम्पत्य प्रेम नहीं उत्पन्न हो सकता। इसलिये यहीं ग्रन्थ समाप्तिका परदा न डाल कर हम कुछ अध्याय और लिखने जा रहे हैं। पाठकगण यदि उन्हें ध्यानसे पढ़ कर अपना कर्त्तव्य स्थिर करेंगे, तो निःसन्देह उन्हे बड़ा लाभ होगा और वे दाम्पत्य-प्रेमकी सुशीतल छायामें विश्राम करनेके अधिकारी होंगे।





२८

गृहिणी-कर्त्तव्य

संसारमें केवल विवाह करनेसे ही कोई सुखी नहीं हो सकता। हम पहले ही कह चुके हैं कि दाम्पत्य-जीवनका समस्त सुख और आनन्द दाम्पत्य-प्रेम पर निर्भर करता है। यदि पति और पत्नीमें प्रेम होता है, तो उनकी गृहस्थी नन्दन कानन बन जाती है अन्यथा वही नरकसे बढ़कर यातनामय प्रतीत होने लगती है। परन्तु जिस प्रकार ताली एक हाथसे नहीं बज सकती, उसी प्रकार दाम्पत्य प्रेम केवल पति या केवल पत्नीकी चेष्टासे स्थापित नहीं हो सकता। इसके लिये दोनोंको चेष्टा करनी पड़ती है। यदि पत्नी विचारशील होती है और उसे अपने कर्तव्योंका ज्ञान होता है, तो वह समुचित उपायों द्वारा विरक्त पतिको भी शीघ्र ही अपने वशमें कर लेती है।

वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रमें भार्याधिकार नामक अध्यायमें गृहिणीके उन कर्त्तव्योंका उल्लेख किया है, जिनके पालन द्वारा वह पतिका प्रेम सम्पादन कर सकती है। वात्स्यायन मुनिने इस अध्यायमें जो बातें बतलायी है, वे निःसन्देह बड़ी उपयोगी और गृहस्थमात्रके घरमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित कर रखने योग्य हैं। पाठकोंके हितार्थ उनका सार हम नीचे अंकित कर रहे हैं।

स्त्रियां दो प्रकारकी होती हैं—(१) एकचारिणी और (२) सपत्नीका। एकचारिणी उसे कहते हैं, जो किसी पुरुषकी एकमात्र स्त्री होती है और सपत्नीका उसे कहते हैं, जिसके सौत या सौतें होती हैं। वात्स्यायन मुनिने इन दोनों प्रकारकी स्त्रियोंके कर्त्तव्योंका निरूपण किया है। इनमेंसे पहले हम एकचारिणीके कर्त्तव्य अंकित करते हैं।

(१) एकचारिणी स्त्रीको अपने पति पर गूढ़ विश्वास रखना चाहिये। उसे देव तुल्य समझना चाहिये और उसकी इच्छानुसार आचरण करना चाहिये—पतिकी हित चिन्ता करनेके बाद ही अपने हित पर ध्यान देना चाहिये।

(२) पतिके आदेशानुसार ही गृहकार्य सम्पन्न करने

चाहिये। घर सदा साफ सुथरा, पवित्र और सुशोभित रखना चाहिये। घरकी जमीन लिपीपुती या धुली हुई, रहनी चाहिये। समूचा घर ऐसा रखना चाहिये, कि उसे देखते ही हृदय प्रफुल्लित हो उठे। घरमें जो देवमूर्त्तियाँ आदि हों, उनकी यथा समय पूजा आदि होते रहना चाहिये। गोनर्दीयका कथन है, कि संसारमें एक गृहस्थके लिये इन बातोंसे बढ़कर चित्ताकर्षक और कुछ नहीं है।

(३) श्वसुर आदि गुरुजन, नौकर चाकर—दास दासी, ननँद, देवरानी, जेठानी और उनके पति आदि जो जिस लायक हों, उनके साथ वैसे ही वचन और कार्यों का अनुष्ठान कर उनकी रक्षा करनी चाहिये।

(४) घरमें यदि स्थान हो, तो हल्दी, धनिया, पुदीना, अदरख, तरह तरहके शाक, जीरा, अजवाईन, तमाल और लताआदिका रोपन करना चाहिये।

(५) वृक्ष वाटिकामें मल्लिका, चम्पा, चमेली, जुही, बेला, हजारा आदि पुष्पोंके वृक्ष तथा बहुतायतसे फूल देनेवाले अन्यान्य वृक्षोंको भी रोपन करना चाहिये। बगीचेके ढंग पर अलग अलग क्यारियोंमें फूलोंको लगाने, स्थान स्थान पर लताओंके कुञ्ज और दरवाजे बनाने तथा जमीन पर हरी दूब लगानेसे वाटिकाका दृश्य बड़ा ही नेत्ररञ्जक और

सुहावना होता है। हो सके तो जलकी सुविधाके लिये बीचमें एक कुआँ भी बनवा लेना चाहिये।

(६) भिखारिनें, जोगिनें, कुलटा, खेल तमाशे दिखानेवाली, और वशीकरण आदि करनेवाली स्त्रियोंसे सदा दूर रहना चाहिये।

(७) भोजनके सम्बन्धमें यह सदा ध्यान रखना चाहिये, कि पतिकी किस वस्तु पर विशेष रुचि है, कौन वस्तु हानिकारक है, और कौन वस्तु पथ्य किंवा कुपथ्य है। इन बातोंका ज्ञान रहनेसे नायकको इच्छानुकूल भोजन कराया जा सकेगा।

(८) पति बाहरसे घर आये या बुलाये तो सब काम छोड़ कर तुरन्त उसकी सेवामें उपस्थित हो जाना चाहिये और सावधानीसे जो कार्य करना आवश्यक हो, वह करने लगना चाहिये।

(९) पैर धोनेका काम पड़े, तो नौकरको हटा कर स्वयं धोने लगना चाहिये।

(१०) बिना वस्त्राभूषणोंसे सज्जित हुए, जहाँ तक हो सके पतिके निकट न जाना चाहिये, क्योंकि मलीन वेशमें देख कर उसके हृदयमें विरक्ति या वैराग्य उत्पन्न हो जानेकी संभावना रहती है।

(११) पति यदि अतिव्यय (अधिक खर्च) या अपव्यय (फिजूल खर्च) करता हो, तो उसे एकान्तमें समझाना चाहिये।

(१२) किसीके यहाँ व्याह शादीमें, किसी उत्सवमें, किसी सखीके यहाँ या देव-दर्शनके लिये भी जाना हो, तो पतिकी आज्ञा लेकर जाना चाहिये।

(१३) त्योहारके दिन पतिकी इच्छानुसार उसीके साथ हँसी खुशी और आनन्दसे दिन व्यतीत करना चाहिये।

(१४) पतिके सोनेके बाद सोये और सुबह उसके उठनेके पहले उठे। यदि दिनको पति सो जाय, तो जब तक वह न उठे, तबतक कहीं जाना न चाहिये—पतिकी सेवा शुश्रूषा आदि करते रहना चाहिये।

(१५) रसोई-घर साफ सुथरा, दर्शनीय और प्रकाश पूर्ण होना चाहिये। सभी चीजें उसमें सजा कर रखनी चाहिये, ऐसा न हो कि कोई चीज इधर पड़ी हो और कोई उधर।

(१६) यदि पति कोई अपराध कर बैठे, तो कुछ न कहना न चाहिये। मुँहसे यह शब्द भी न निकालने चाहिये कि तुमने यह बुरा किया।

(१७) यदि पतिको उलाहना ही देना हो, तो एकान्तमें देना चाहिये। यदि वह मित्रोंके पास बैठा हो, तो मौका देख कर इशारेसे समझाना चाहिये।

(१८) कभी वशीकरण आदि करानेके फेरमें न पड़ना चाहिये। इससे पतिका वश होना तो दूर रहा, जान लेने पर उलटा उसे अविश्वास हो जाता है।

(१९) दुर्वचन, बुरी तरह देखना और मुँह ढँक कर बोलना यह तीन बातें विरक्ति उत्पन्न करनेवाली हैं, अतः इनका त्याग करना चाहिये। इसी तरह दरवाजे या खिड़कीसे झांकते रहना, गृह-वाटिकामें किसी स्त्रीके साथ मन्त्रणा करते रहना, एकान्तमें बहुत देर :तक बैठ रहना आदि बातें भी सन्देहजनक और अप्रिय होती हैं अतः इनका भी त्याग करना चाहिये।

(२०) पसीना, दांतोंका मैल और दुर्गन्ध भी पतिके मनमें वैराग्य उत्पन्न कर देती है, अतः इन्हें दूर करते रहना चाहिये।

(२१) विविध भूषण, विविध पुष्प, अनुलेपन और उज्ज्वल वस्त्र अभिगमनके समय शोभा देते हैं। साधारण अवस्थामें केवल दो कपड़े, जो बहुत ही हलके और बारीक हों, थोड़े आभूषण, सुगन्धि, थोड़ा अनुलेपन और सफेद

फूल—इनका धारण करना प्रिय मालूम होता है। बिहार—घूमनेके फिरनेके समयमें भी यही वेश उपयुक्त होता है।

(२२) पति जो जो व्रत या उपवास करता हो, वही एकचारिणी स्त्रीको भी करने चाहियें। यदि पति मना करे, तो उससे यह कह कर कि आप इस सम्बन्धमें कुछ न कहें, उसकी बात न माननी चाहिये।

(२३) बरतन वगैरह कोई चीज यदि किसी समय सुलभ मूल्यमें मिलती हो, और भविष्यमें उसके भाव चढ़नेकी सम्भावना हो, तो उसे उस समय लेकर जब भाव चढ़े तब बेच देना चाहिये।

(२४) घी, तेल, नमक, गन्ध द्रव्य, औषधियाँ आदि जो चीजें दुर्लभ प्रतीत हों, उन्हें घरमें यत्न पूर्वक छिपा कर रखना चाहिये। संभव है, कि आवश्यकता पड़ने पर वे तत्काल :बजारमें न मिल सकें। यदि घरमें संचित होंगी तो काम देंगी।

(२५) घरमें जो धन हो, वह किसीको बतलाना न चाहिये। उसी तरह पति जो मन्त्रणा करे या जो बात कहे, उसे भी किसीके निकट प्रकट न करना चाहिये।

(२६) यदि कोई स्त्री ऐसी हो, जिसकी ओर पतिका ध्यान आकर्षित होनेकी सम्भावना हो, तो अपने कौशल,

अपनी उज्ज्वलता, अपनी मनस्विता तथा अन्यान्य उपचारों द्वारा पतिके निकट उसे हीन सिद्ध करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(२७) आयके अनुसार खर्च करना चाहिये।

(२८) यदि खाने पीनेसे दूध बचे, तो उससे घी तैयार करना चाहिये। चरखा चला कर कपाससे सूत और सूतसे कपड़े तैयार करना चाहिये। इसी तरह घर गृहस्थीमें काम आनेवाली रस्सी आदि चीजें संग्रह करनी चाहिये। अन्नको काममें लाने योग्य बनाते समय, चूनी, चोकर, भूसी और कण आदि जो कुछ निकले उसका सदु-पयोग करना चाहिये। नौकर चाकरोंका वेतन कितना होना चाहिये, खेती बारीका काम कैसा चलता है, घरके पलाऊ पशु पक्षी किस अवस्थामें हैं आदि सभी बातों पर ध्यान रखना चाहिये। इसके अतिरिक्त दैनिक आय और खर्चका हिसाब रखना यह भी गृहिणीका एक आवश्यक कर्त्तव्य है।

(२९) पतिके छोड़े हुए कपड़े धुला कर साफ करवा लेने चाहियें और उन्हें नौकर चाकरोंको देने या कन्था आदि बनानेके काममें लाना चाहिये।

(३०) यदि पति मादक द्रव्योंका उपयोग करता हो,

तो उन्हें यत्नपूर्वक छिपा कर रखना चाहिये और काम पड़ने पर बाहर निकालना चाहिये।

(३१) पतिके मित्रोंको न्यायानुसार माल्य, अनुलेपन और ताम्बूल आदि चीजें देकर उनका आदर सत्कार करना चाहिये। सास ससुरकी सेवा करनी चाहिये। उनकी अधीनतामें रहना चाहिये और उनसे वादाविवाद न करना चाहिये। उनसे धीमे स्वरमें, बहुत थोड़ी बातें करना चाहिये और उनके सामने उच्च स्वरमें बोलना या हँसना न चाहिये। परिजनोंमें सरलता दिखानी चाहिये। घरके काममें नौकर चाकरोंको लगाये रखना चाहिये और तिथि त्यौहार या उत्सवके दिन उन्हें खिला पिला कर सन्तुष्ट करना चाहिये।

यही एकचारिणी स्त्रीके कर्त्तव्य हैं। जो स्त्री इन कर्त्तव्योंका पालन करेगी उसका पति भला क्यों न प्रसन्न होगा? पतिके विदेश गमन करने पर स्त्रीको क्या करना चाहिये यह बतलानेके लिये कामसूत्रमें वात्स्यायन मुनिने प्रवासचर्याका भी उल्लेख किया है। उन्होंने लिखा है, कि जिस स्त्रीका पति परदेश गया हो, उसे निम्नलिखित नियमोंका पालन करना चाहिये।

(१) जिस समय पति विदेशमें हो, उस समय स्त्रीको

केवल चूड़ियां आदि सौभाग्य सूचक आभूषण ही धारण करने चाहिये। देवताओंको प्रसन्न रखनेके लिये व्रत उपवासादि करते रहना चाहिये। पतिके समाचार प्राप्त करनेमें यत्नवान रहना चाहिये और अपने गृह-कार्यमें संलग्न रहना चाहिये।

(२) सास ससुर आदि गुरुजनोंके निकट शयन करना चाहिये और उन्हींके आदेशानुसार आचरण करना चाहिये। पति अर्थोपार्जनके लिये ही परदेश गया है यह समझ कर, सदा ऐसे कार्य करते रहना चाहिये, जिससे उसे अपने कार्यमें प्रोत्साहन मिल सके।

(३) नित्य और :नैमित्तिक कर्म तथा पति जो कर्म करता रहा हो, उन्हें योग्यता पूर्वक सम्पादन करते रहना चाहिये।

(४) जब तक पति विदेशमें रहे, तब तक न तो मायके जाना चाहिये न उत्सव और व्यसनोंमें ही भाग लेना चाहिये। यदि यह कार्य किये बिना काम न चले, तो ससुरालके आदमियोंको साथ रख कर करना चाहिये और उत्सवादिमें अधिक समय तक न ठहरना चाहिये। साथ ही, किसी भी अवस्थामें प्रवास वेश न बदलना चाहिये अर्थात् उत्सवादिमें भी उसी सादे वेशमें योग देना चाहिये।

(५) गुरुजनोंके आदेशानुसार उपवास करना चाहिये। सेवकोंकी सहायतासे :किसी वस्तुका खरीद बेच या लेन-देन कर धनकी वृद्धि करना चाहिये और खर्चको जहांतक हो सके घटा देना चाहिये।

(६) पति घर आने पर पहले प्रवास वेशमें ही उसका दर्शन करना चाहिये। बादको परिजनों सहित देवपूजा और दानादि कर, वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित हो पतिकी सेवामें उपस्थित होना चाहिये।

यह सब एकचारिणी स्त्रीके कर्त्तव्य हैं। कोक-शास्त्र किंवा रति-रहस्यके रचयिता कोक्कोक (कोका) ने भी बड़े श्रुति मधुर श्लोकोंमें यह विषय वर्णन किया है। गृहस्थ मात्रको यह बातें अपनी बहू बेटियोंको स्त्रोत्रकी तरह कण्ठस्थ करा देनी चाहिये और अपने घरमें स्वर्णाक्षरोंसे अंकित कर रखनी चाहिये।

सपत्नीका वृत्त।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि स्त्रियां दो प्रकारकी होती है—एकचारिणी और सपत्नीका। एकचारिणी किसे कहते हैं और उसे पतिप्रेम सम्पादन करनेके लिये क्या करना चाहिये, यह ऊपर बतलाया जा चुका है। सपत्नीका उसे कहते हैं, जिसके सौत या सौतें होती हैं।

एक कहावत है, कि स्त्रियां काठकी भी सौत देखना नहीं चाहतीं। यह उक्ति बिलकुल ठीक है। निःसन्देह जिन स्त्रियोंके सौत होती है, वे सदा दुःखित बनी रहती हैं। सौत उनकी आंखोंमें शूलकी भांति चुभा करती है। उन्हें यह अच्छा नहीं लगता, कि उनके पतिके प्रेमका कोई दूसरा अधिकारी हो। वे चाहती हैं, कि पतिके तन मन पर उनका निष्कण्टक एकाधिपत्य हो। उनका यह चाहना उचित भी है। जब पुरुष अपनी स्त्रीसे यह आशा रखता है, कि वह किसी दूसरे पुरुषसे सम्बन्ध न रक्खे, तब स्त्रियां यदि पुरुषोंके सम्बन्धमें दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध न रखनेकी आशा रक्खें, तो वह सर्वथा स्वाभाविक है। हम नहीं समझ सकते, कि जो पुरुष स्त्रियोंको पातिव्रतका उपदेश देते हैं, उन्हें सीता और सावित्री बनाना चाहते हैं, उनसे यह आशा रखते हैं, कि वे दूसरे पुरुषको आंख उठा कर देखना भी पाप समझें, उन्हें क्या अधिकार है, कि वे एक स्त्रीके होते हुए दूसरा विवाह करें या दूसरी स्त्रीसे सम्बन्ध रक्खें ? वे अपनी स्त्रियोंको सीता बनाना चाहते हैं, तो स्वयं राम क्यों नहीं बनते ? स्त्रियोंको सावित्री बनाना चाहते हैं, तो स्वयं सत्यवान क्यों नहीं बनते ? उन्हें पातिव्रतका उपदेश देते हैं, तो स्वयं एक पत्नीव्रत क्यों नहीं धारण करते ?

यह परम सौभाग्यकी बात है, कि सर्वसाधारणमें अब बहु-विवाहकी प्रथा निन्दनीय माने जाने लगी है और दिन प्रति दिन इसका लोप होता जा रहा है। फिर भी प्रत्येक समाजमें कुलीन कहलानेवाले लोगोंमें, विषय लोलुप धनवानों और राजा महाराजोंमें अब भी इस प्रथाका प्रचार है। अब भी वे एक स्त्रीके रहते हुए दूसरी और दूसरीके रहते हुए तीसरीसे विवाह कर लेते हैं। यह कहना व्यर्थ है, कि जो पुरुष एकसे अधिक विवाह करते हैं, उन्हें दाम्पत्य-प्रेम और उससे प्राप्त होनेवाले वास्तविक सुखोंसे वञ्चित रहना पड़ता है। ऐसे लोगोंके यहां सदैव कलह हुआ करता है और कभी कभी ऐसे षडयन्त्र और प्रपञ्च होते हैं, कि उनके कारण जीवन मरणका प्रश्न तक उपस्थित हो जाता है। बहु विवाहकी प्रथाको इसीलिये हम निन्दनीय समझते हैं और चाहते हैं, कि जो वास्तविक दाम्पत्य-प्रेमका रसास्वादन करना चाहते हों, वे भूलकर भी एक स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह न करें।

हम कन्याओंके माता पिता और बन्धु वान्धवोंको भी यह सलाह देंगे, कि यदि वे एक कन्याका विवाह—यदि वे उसे सुखी करना चाहते हों, तो ऐसे पुरुषसे कदापि न करें, जिसके घरमें दूसरी स्त्री हो या जो दूसरी स्त्रियोंसे

सम्बन्ध रखता हो। जो स्त्रियां स्वयं पुरुषकी पसन्दगी करें, उन्हें भी सबसे पहले इस विषय पर विचार कर लेना चाहिये। क्योंकि विवाहित जीवनका आनन्द दाम्पत्य-प्रेम पर निर्भर होता है और जहाँ एकसे अधिक स्त्रियां होती हैं, वहां एक स्त्रीके लिये, पतिको अधिकारमें कर, दाम्पत्य प्रेम स्थापन करना बहुत ही कठिन हो पडता है।

परन्तु दुर्भाग्यवश यदि कोई स्त्री ऐसे ही घरमें जा पड़ी हो, जहां उसे सौतोंके बीच रहना और गुजारा करना हो, तो उस स्त्रीको कैसे उपायों द्वारा अपने पतिका प्रेम सम्पादन कर अपने जीवनको सुखी बनाना चाहिये, यह बतलानेके लिये वात्स्यायन मुनिने अपने: कामसूत्रमें सपत्नी-काके कर्त्तव्य अंकित किये हैं। पाठकोंके अभिज्ञानार्थ उस अध्यायकी आवश्यक बातें हम भी संक्षेपमें अंकित कर देना उचित समझते हैं।

ज्येष्ठा वृत्त—सौतें दो प्रकारकी होती हैं—ज्येष्ठा और कनिष्ठा। पूर्व विवाहिता या बड़ी स्त्रीको ज्येष्ठा कहते हैं और जो बादको विवाह कर लायी जाती है, उसे कनिष्ठा कहते हैं। इनमेंसे ज्येष्ठा को निम्नलिखित उपायोंसे अपने पतिको हाथमें रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

(१) मूर्खता, बुरा स्वभाव, दौर्भाग्य, वन्ध्यत्व, केवल कन्या ही कन्यायें उत्पन्न होने या पुरुषकी चपलताके कारण, स्त्रियोंको सौतका दुःख देखना पड़ता है। इसलिये चतुर स्त्रीको :पहले हीसे इन कारणोंको दूर कर घरमें सौतका आना रोकना चाहिये। हां, यदि सन्तान न होती हो और पति दूसरा विवाह करना चाहता हो, तो जब यह मालूम हो, कि वह अवश्य विवाह करेगा, तब अपनी ओरसे भी उसे विवाह करनेकी सलाह दी जा सकती है।

(२) जब घरमें सौत आ जाय, तब ज्येष्ठाको अपनी शक्ति और बुद्धिके अनुसार इस बातकी चेष्टा करनी चाहिये, कि सब सौतोंमें उसीको श्रेष्ठता प्राप्त हो और पति उसीके अधिकारमें रहे।

(३) सौत आनेपर ज्येष्ठाको उसे बहिनकी तरह देखना चाहिये और नायक जान सके इस तरह परिचारिका द्वारा उसका रजनी कर्तव्य सम्पादन कराना चाहिये। इसके लिये अपने मनमें किसी प्रकारके विकार या गर्वको स्थान न देना चाहिये।

(४) यदि कनिष्ठा कोई भूल कर बैठे, तो उसे आदर पूर्वक शिक्षा देना चाहिये, कि देखो, अब कभी ऐसी भूल

न करना। यदि :नायक यह बात सुन ले, तो उसे सब बातें जरा भी घटाये बढ़ाये बिना बतला देनी चाहिये।

(५) यदि कनिष्ठाके पुत्र उत्पन्न हो, तो उस पर अनन्त प्रेम दिखाना चाहिये। स्वजनों पर विशेष प्रीति रखनी चाहिये। पतिके मित्रों पर भी वैसा ही प्रेमभाव रखना चाहिये। नायकेके आदमियोंकी अपेक्षा ससुराल के आदमियों पर अधिक प्रेम दिखलाना चाहिये।

(६) यदि बहुत सौतें हो, तो उसे अपना विवाह होनेके बाद जो सौतें आयी हों अर्थात् जो अपनेसे छोटी हों उन्हींसे सम्बन्ध रखना चाहिये—उन्हींसे स्पर्धा करनी चाहिये। बड़ी सौतोंसे नहीं।

(७) नायक जिस सौतको खूब चाहता हो, उसके साथ उस सौतसे झगड़ा करा देना चाहिये, जो पहले बहुत सम्मानिता रही हो।

(८) झगड़ा हो जाने पर पूर्व सम्मानिताके प्रति समवेदना प्रकट करनी चाहिये। ऐसा करनेसे झगड़ा और भी बढ़ेगा।

(९) इसके बाद झगडेको घटा कर, जिस स्त्री पर नायकका अधिक प्रेम हो, नायकके निकट उसीको दोषी सिद्ध करना चाहिये।

(१०) यदि नायक पक्षपातके कारण पूर्व सम्मानिताकी उपेक्षा करे, तो उससे नायकको प्रत्युत्तर दिला कर झगड़ा बढ़ा देना चाहिये।

(११) नायक और कनिष्ठामें कलह होनेसे ज्येष्ठाका सम्मान बढ़ता है, अतः ज्येष्ठाको उन दोनोंमें किसी न किसी तरह कलह कराते रहना चाहिये। जब कभी कलह मन्द पड़े, तब उसमें आहुति देकर उसे बढ़ा देना चाहिये।

(१२) यदि यह सब करने पर भी नायकका कनिष्ठा पर प्रेम बना रहे, तो फिर उन दोनोंमें स्वयं सन्धि करानेकी चेष्टा करनी चाहिये।

इन सब बातोंसे नायकका ज्येष्ठा पर प्रेम बना रहता है और वह अपना हृदय संपूर्ण रूपसे किसी कनिष्ठाको नहीं सौंपता। कनिष्ठाको सब तरहसे हीन और अपनेको श्रेष्ठ सिद्ध करना—यही ज्येष्ठाका प्रधान कर्त्तव्य होना चाहिये।

कनिष्ठा वृत्त—कनिष्ठा उसे कहते हैं, जो अन्यान्य सौतोंसे छोटी होती है अर्थात् जो बादको विवाह कर लायी जाती है। कनिष्ठाको श्रेष्टता और पति प्रेम सम्पादन करनेके लिये निम्नलिखित उपायोंसे काम लेनेका वात्स्यायन मुनिने आदेश दिया है :—

—काम-विज्ञान—

(१) कनिष्ठा नायिकाको चाहिये, कि वह ज्येष्ठाको माताकी तरह देखे ।

(२) पिताके यहांसे जो धन या गहने आदि मिले हों, उन्हें इस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, जिससे वे ज्येष्ठासे छिपे न रहें ।

(३) समस्त कार्य ज्येष्ठाकी अनुमति और सलाहसे ही करने चाहिये ।

(४) ज्येष्ठाकी अनुमति प्राप्त कर पतिके निकट शयन करने जाना चाहिये ।

(५) ज्येष्ठासे सम्बन्ध रखनेवाली भली या बुरी बातें किसीसे न कहनी चाहिये ।

(६) ज्येष्ठाके बच्चोंको अपने बच्चोंकी अपेक्षा अधिक प्रेम करना चाहिये ।

(७) एकान्तमें अन्यान्य सौतोंकी अपेक्षा पतिकी अधिक सेवा शुश्रूषा करनी चाहिये ।

(८) यदि सौतोंकी ओरसे कोई कष्ट मिल रहा हो, तो वह पतिसे भूल कर भी न कहना चाहिये ।

(९) पतिके निकट अन्य स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक अकपट मान प्राप्त करनेकी इच्छा करनी चाहिये ।

(१०) पति द्वारा प्राप्त सम्मान हीको अपना जीवन सर्वस्व समझना चाहिये।

(११) सौतोंसे चिढ़ कर अपने सम्मानकी बात भूल कर भी किसीके निकट अभिमान या श्लाघापूर्वक न करनी चाहिये।

(१२) पतिका कोई रहस्य—छिपी बात प्रकट न करनी चाहिये। करनेसे पति असन्तुष्ट हो जाता है।

(१३) पति द्वारा जो सम्मान मिले, उसे ज्येष्ठासे छिपा रखना चाहिये। प्रकट करनेसे कलह होता है।

(१४) यदि ज्येष्ठा पर पतिका प्रेम न हो या वह निःसन्तान हो, तो उसके प्रति स्वयं सहानुभूति प्रकट करनी चाहिये और पतिसे भी करानी चाहिये।

(१५) जिस प्रकार ज्येष्ठाका अनुग्रह प्राप्त हो, वही काम करना चाहिये।

(१६) जब पति अपने अधिकारमें आ जाय, तब ज्येष्ठा-से सम्बन्ध विच्छेद करा कर, एकचारिणीकी भांति आचरण करना चाहिये।

यही कनिष्ठाके कर्तव्य हैं। इनमें ध्यान रखने योग्य यह है, कि कनिष्ठाका एक भी कर्त्तव्य ऐसा न होना चाहिये, जिससे ज्येष्ठा असन्तुष्ट हो जाय। उसे भरसक

ज्येष्ठाको सन्तुष्ट ही रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये, क्योंकि उसके असन्तुष्ट होनेसे सारा गुड़ गोवर हो जानेकी सम्भावना रहती है।

पुनर्भू वृत्त—जिसका एक बार विवाह हो चुका हो और पतिके मर जाने या किसी दूसरे कारणसे जिसने दुबारा विवाह किया हो, उसे पुनर्भू कहते हैं। पुनर्भू दो प्रकारकी होती हैं—अक्षतयोनि और क्षतयोनि। अक्षतयोनिका यथाविधि पाणिग्रहण संस्कार हो सकता हैं अतः उसे कन्या ही समझना चाहिये। क्षतयोनिके लिये धर्मशास्त्रमें संस्कारकी व्यवस्था नहीं है, अतः उसका केवल स्वीकार ही हो सकता है। वशिष्ट मुनिने इन्हें (१) मनोदत्ता—जो अपना मन किसीको दे चुकी हो (२) वचोदत्ता—जो किसीको विवाहका वचन दे चुकी हो (३) कृत कौतुक मङ्गला—जिसके विवाहका मङ्गलाचार हो चुका हो (४) उदक स्पर्शिका—जिसके ऊपर विवाहके कलशका जल पड़ चुका हो (५) पाणि गृहीतिका—जिसका पाणिग्रहण हो चुका हो (६) अग्नि परिगता—जो भांवरे फिर चुकी हो और (७) प्रसवा—जो पति समागम कर चुकी हो—इन सात भागोंमें विभक्त किया

है। * इनमें पहली छः प्रकारकी पुनर्भू अक्षतयोनि होनेके कारण कन्यामें परिगणित की गयी हैं। सातवीं प्रसवा किंवा क्षतयोनि ही वास्तवमें पुनर्भू है। वात्स्यायन मुनिने उसकी व्याख्या करते हुए लिखा है, कि "विधवा त्विन्द्रिय दौर्बल्यादातुरा भोगिनं गुणसम्पन्नं च या पुनर्विन्देत सा पुनर्भूः" अर्थात् जो विधवा इन्द्रिय दौर्बल्य (भोग लिप्सा) के कारण कामार्त होकर भोगी और गुण सम्पन्न पुरुषसे दुबारा विवाह करती है, उसे पुनर्भू कहते हैं। † पुनर्भू का कर्त्तव्य वात्स्यायन मुनिने इस प्रकार निर्धारित किया है :—

(१) पुनर्भू को नायककी धर्मानुसार विवाहित कुल स्त्रियोंके साथ स्नेह पूर्वक व्यवहार करते हुए जीवन निर्वाह करना चाहिये।

(२) नायकके परिजनोंके प्रति दया दाक्षिण्य दिखलाना चाहिये। मित्रोंके साथ सपरिहास व्यवहार करना चाहिये।

---

* मनोदत्ता वचोदत्ता या च संगेच्छु याचिका।
उदक स्पर्शिता चैव या च पाणि ग्रहीतिका॥
अग्नि परिगता चैव पुनर्भूः प्रसवा चया।
—जय मंगला टीकाकार द्वारा उद्धृत।

† जिस पुनर्भू का संस्कार न होकर केवल स्वीकार ही होता है, उसे आजकल लोग "रखेली" कहते हैं।

सदा कलाकौशल दिखाते रहना चाहिये और कलाओंका अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करते रहना चाहिये।

(३) यदि नायक संचित द्रव्योंका अपव्यय करे, व्यभिचार करे, रातको घरमें न रहे, तो नायकका तिरस्कार करना चाहिये।

(४) एकान्तमें चौसठ कलाओंका अनुवर्तन करना चाहिये। सौतों पर उपकार करते रहना चाहिये। सौतोंके लड़कोंको वस्त्राभूषण देते रहना चाहिये। जिस तरह पति उनका प्यार करता हो, उसी तरह प्यार करना चाहिये। वस्त्राभूषण और पुष्पादि अच्छी तरह धारण करना चाहिये। नायकके परिजन और मित्रोंको अधिक मात्रामें दान देते रहना चाहिये। बातचीत, खानपान, विहार और यात्रादि विषयोंमें यत्न शील रहना चाहिये।

दुर्भगा वृत्त—दुर्भगा अर्थात् अभागिनी उस स्त्रीको कहते हैं, जिस पर पतिका प्रेम नहीं होता—पति जिसका अनादर करता है। ऐसी स्त्रियोंको किस प्रकार पति प्रेम सम्पादन करना चाहिये, यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनिने निम्नलिखित बाते अंकित की हैं :—

(१) यदि दुर्भगाके कई सौते हों, तो उसे उस सौतका आश्रय ग्रहण करना चाहिये, जो पतिके निकट अधिक

मात्रामें उपचार प्रदर्शन कर सकती हो। इसके बाद उसे समय समय पर अपना कला कौशल दिखाते रहना चाहिये।

(२) रसिकता प्रदर्शित करनेसे बढ़कर पति प्रेम सम्पादन करनेका और कोई उपाय नहीं है।

(३) नायकके बच्चोंको दासीकी तरह तेल उबटन आदि लगाना और स्नानादि कराना चाहिये।

(४) श्राद्धादि धर्म कृत्योंमें प्रारम्भिका अर्थात् सबसे आगे रहना चाहिये और उपवासादिमें तत्परता दिखानी चाहिये।

(५) नायकके परिजनोंमें दया दाक्षिण्य दिखाना चाहिये। सौतों वा परिजनोंमें किसी प्रकारका बड़प्पन दिखानेकी चेष्टा न करनी चाहिये।

(६) शयनके समय नायककी इच्छानुसार आचरण करना चाहिये।

(७) किसी बातमें अनिच्छा होने पर भी, नायककी इच्छा पूर्तिके लिये उसे व्यक्त न करना चाहिये।

(८) नायकसे यह कभी न कहना चाहिये, कि "तुम मुझे प्यार नहीं करते" न अपने अङ्गोंको छिपा कर प्रतिकूलता ही प्रकट करनी चाहिये।

(९) जिस नायिकासे पतिका झगड़ा हो जाय, उस नायिकासे पुनः उसका प्रेम करा देना चाहिये।

(१०) स्वामी बुरा भला जो कुछ कहे, वह मान लेना चाहिये। जिस प्रकार हो उसकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करनी चाहिये और उसकी गुप्त रखने योग्य सभी बातें गुप्त रखनी चाहिये।

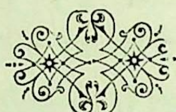
(११) पति जिस प्रकार उसे पतिव्रता और चतुरा समझे उसी प्रकार दुर्भगाको आचरण करना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रमें इसी प्रकार एकचारिणी, सपत्नीका—ज्येष्ठा, कनिष्ठा, पुनर्भू, और दुर्भगा के कर्त्तव्य अंकित किये है। इन कर्त्तव्योंका पालन करनेसे क्या फल होता है, यह उन्हींके शब्दोंमें बतला कर हम यह अध्याय पूर्ण करेंगे। उन्होंने लिखा हैं कि :—

सद्वृत्तमनुवर्त्तेत नायकस्य हितैषिणी।
कुलयोषा पुनर्भूर्वा वेश्या वाप्येक चारिणी॥
धर्ममर्थं तथा कामं लभन्ते स्थान मेव च।
निःसपत्नश्च भर्त्तारं नार्याः सद् वृत्तमाश्रिताः॥
युवतिश्च जित क्रोधा यथा शास्त्र प्रवर्त्तिनी।
करोति वश्य भर्त्तारं सपत्नीश्चाधितिष्ठति॥

अर्थात् कुल स्त्री, पुनर्भू, वेश्या और एकचारिणी सभी

स्त्रियोंको नायकका हितचिन्तन कर सद् वृत्तका अनुवर्तन करना चाहिये। सद् वृत्तका अवलम्बन करनेसे धर्म, अर्थ, काम, स्थान और पति पर एकाधिपत्य प्राप्त होता है। यदि कोई स्त्री क्रोध पर विजय प्राप्त कर यथाशास्त्र आचरण करती हैं, तो वह अपने पतिको वशमें कर लेती है और सब सौतोंमें उसे प्रधानता प्राप्त होती है।



२६

गृहिणी-रक्षा

संसारमें सब मनुष्य सदाचारी नहीं होते। यों तो स्त्रियां भी दुराचारिणी होती है, परन्तु पुरुषोंको मानव-समाजमें कुछ ऐसे अधिकार दे रक्खे गये हैं, कि वे सच्चरित्रता या एक-पत्नीव्रतको कुछ समझते ही नहीं। वे बड़े अभिमानके साथ रस भोगी भौंरेके साथ अपनी तुलना करते हैं, जो सुबहसे शाम तक न जाने कितने फूलों पर बैठता है और उनका रसास्वादन करता है। स्त्रियोंको वे उपभोगकी एक सामग्री समझते हैं और उन्हें पापपूर्ण दृष्टिसे देखते हैं। यद्यपि हम यह जानते हैं, कि बहुतसे पुरुष सच्चरित्र भी होते हैं,—यहां तक कि परस्त्रीकी ओर आंख उठा कर देखना भी पाप समझते हैं, परन्तु अधिकांश पुरुषोंकी प्रकृति ऐसी नहीं होती। वे न केवल बाहरी स्त्रियोंको ही कुदृष्टिसे देखते हैं, बल्कि कभी कभी अपने

मित्र, गुरु या किसी निकट सम्बन्धीकी बहिन बेटी पर भी हाथ फेर देते हैं। कभी कभी तो पिता अपनी पुत्रीसे, श्वसुर अपनी बहूसे, भाई अपनी बहिनसे, पुत्र अपनी माता या विमातासे, नौकर अपनी मालकिनसे और देवर या जेठ अपनी भाभीसे अनुचित सम्बन्ध रखते हुए पाये जाते हैं। यही व्यभिचार है।

व्यभिचारी पुरुष समाजके लिये बहुत ही भयंकर होते हैं। उन्हें आस्तीनमें छिपे हुए सांप समझना चाहिये। वे न जाने कब किस पर वार कर बैठें। यद्यपि समाजमें ऐसे मनुष्योंकी बहुत निन्दा होती है, परन्तु केवल निन्दा ही इनके लिये पर्याप्त नहीं होती। निन्दाके भयसे यह कुकर्म करनेसे बाज़ नहीं आते। इन्हें इसके लिये कड़ेसे कड़ा दण्ड देना चाहिये। क्योंकि :किसी भी पुरुषको न्यायतः और धर्मतः अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़ कर किसी दूसरी स्त्रीसे अनुचित सम्बन्ध रखनेका कोई अधिकार नहीं है। जो लोग परस्त्री गमन या वेश्या गमन करते हैं, वे सभी तरहसे निन्दनीय हैं। ऐसे पुरुष चाहे जितने धनी, चाहे जितने प्रतिष्ठित और चाहे जितने कुलीन हों, उन्हें हीन दृष्टिसे ही देखना चाहिये और जहां तक हो सके, अपनी बहू बेटियोंको इनसे बचाना चाहिये।

केवल पुरुष ही चञ्चल प्रकृतिके या व्यभिचारी नहीं होते, बल्कि स्त्रियां भो पुंश्चली और दुश्चरित्रा होती हैं, किन्तु पुरुषोंकी अपेक्षा इनकी संख्या बहुत कम होती है। परन्तु स्त्रियां पुंश्चली होने पर भी शायद ही कभी अपना मनोभाव बाहरी पुरुषोंके निकट प्रकाशित करती हैं, किन्तु पुरुषोंको स्त्रियोंके निकट प्रेम याचना करते देर नहीं लगती। इसलिये व्यभिचारमें पुरुषोंका हाथ अधिक रहता है और इसीलिये वे स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक दोषी ठहराये जा सकते हैं। परन्तु मानव-समाजकी यह विचित्रता है, कि एक व्यभिचारिणी स्त्री घरसे निकाल दी जाती है—उस पर चारो ओरसे धिक्कारकी वर्षा होती है, परन्तु व्यभिचारी पुरुषको कोई कुछ नहीं कहता। हमारी समझमें व्यभिचारी मनुष्य—चाहे वह स्त्री हो या :पुरुष—समान रूपसे निन्दा पात्र है और समाजकी ओरसे दोनोंको समान ही दण्ड मिलना चाहिये। यदि ऐसा नहीं होता, तो यह अन्याय है—अधर्म है। पुरुषोंका अनुचित पक्षपात है।

व्यभिचारी मनुष्य—स्त्री और पुरुष दोनों—समाजके लिये भयंकर होते हैं, परन्तु हम पहले ही कह चुके हैं, कि स्त्रियां अपने आप बहुधा इस पथकी ओर अग्रसर नहीं होतीं। इसलिये पुरुषोंको ही हम व्यभिचारके प्रचारक

मानते हैं और उन्हींसे विशेष सावधान रहनेका आदेश देते हैं। इस अध्यायमें हम अपने पाठकोंको कुछ ऐसी बातें बतलायेंगे, जिनसे वे यह समझ सकेंगे, कि उपरोक्त प्रकारके नरपिशाच किस प्रकार भोलीभाली स्त्रियोंको अपना शिकार बनाते हैं और किस प्रकार व्यभिचारके गहरे दल-दलमें उन्हें फँसा कर उनका सर्वनाश करते हैं। ऐसे स्त्री पुरुषोंके दांव पेंच जान रखनेसे हमारे पाठकोंको यह लाभ होगा, कि उनके निकट ऐसे लोगोंकी दाल न गलेगी और उन्हें अपनी बहू बेटियोंकी रक्षा करनेमें सुविधा होगी। इसी लिये इस विषय पर हम विशेष रूपसे प्रकाश डालने जा रहे हैं।

स्त्रियां दो प्रकारकी होती हैं। एक तो वे जो अपने पतिको ही अपना जीवन धन समझती हैं और पति भिन्न किसी पुरुषकी ओर उनका ध्यान ही नहीं जाता। ऐसी स्त्रियां बहुधा सदाचारिणी होती हैं और यह किसी पर-पुरुषकी बातोंमें जल्दी नहीं आतीं। दूसरी स्त्रियां वे होती हैं, जो किसी कारणसे अपने पतिसे असन्तुष्ट रहती हैं। ऐसी स्त्रियां सदाचारिणी होने पर भी अधिक समय तक अपना चरित्र पवित्र नहीं रख सकतीं। व्यभिचारी मनुष्य दोनों प्रकारकी स्त्रियोंको हस्तगत करनेकी चेष्टा करते हैं,

परन्तु वहुधा दूसरे ही प्रकारकी स्त्रियां उनकी शिकार होती हैं। इसलिये यदि पुरुष अपनी गृहिणियोंको सुरक्षित रखना चाहते हों, तो उनका सबसे पहला कर्तव्य यह होना चाहिये, कि वे स्त्रियोंको अपनी ओरसे एक भी ऐसा कारण न मिलने दें, जिससे वे व्यभिचारियोंके शिकंजेमें जा फँसे या पाप पंथकी ओर अग्रसर हों। स्त्रियां किन कारणोंसे ऐसा करती हैं, यह भी जान रखना आवश्यक है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इस सम्बन्धमें जो बतलाया गया है वह हम नीचे अंकित करते हैं।

स्वातन्त्र्यं पितृ मन्दिरे निवसतिर्यात्रोत्सवे सङ्गति—
गोंष्ठी पूरुषसन्निधाव नियमो वासो विदेशे तथा ॥
संसर्गः सह पुंश्चलीभिरसकृद्वृत्तेर्निजाया क्षतिः।
पत्युर्वार्द्धकमीर्षितं प्रवसनं नाशस्य हेतु स्त्रियाः ॥

अर्थात्—निरंकुशता, मायकेमें रहना, उत्सवोंमें सम्मिलित होना, पुरुषोंसे बातचीत करना, नियम या मर्यादाका न होना, परदेशमें रहना, व्यभिचारिणी स्त्रियोंकी संगति, आचार विचारकी कमी, पतिका बुढ़ापा, पतिसे ईर्ष्या या पतिका परदेशमें रहना—यही स्त्रियोंके सर्वनाशके मुख्य कारण हैं। वात्स्यायन मुनिने भी अपने एक सूत्रमें यही बात कही है। यथा:—

"अतिगोष्ठी निरंकुशत्वं भर्त्तु: स्वैरता: पुरुषै: सहा-नियन्त्रणता। प्रवासेऽवस्थानं विदेशे निवास: स्ववृत्युपघात: स्वैरिणी संसर्ग: पत्युरीर्ष्यालुता चेति स्त्रीणां विनाश कारणानि।"

अर्थात् पुरुषोंके साथ अत्यन्त बातचीत करनेसे, निरंकुशतासे, पतिके यथेच्छ व्यवहारसे, किसी पुरुषसे मिलने जुलने बातचीत करने आदिमें नियन्त्रण न रहनेसे, प्रवासमें अवस्थान और विदेशमें निवास करनेसे, जीविकाका उपयुक्त साधन न रहनेसे, स्वैरिणी अर्थात् कुलटा स्त्रियोंके संसर्गसे और पति पर ईर्ष्या उत्पन्न होनेसे स्त्रियोंका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है।

रति-रहस्यके उपरोक्त श्लोक और कामसूत्रके इस सूत्रमें स्त्रियोंके विनाशके जो कारण बतलाये गये हैं, उन पर हमारे पाठकोंको भली भांति विचार करना चाहिये। यह तो मानी हुई बात है, कि पुरुषोंके साथ अधिक बातचीत करनेसे, निरंकुशता अर्थात् बड़े बूढ़ोंका नियन्त्रण न रहनेसे, कुलटा स्त्रियोंके संसर्गसे और आचार विचारकी कमीसे स्त्रियां बहुधा पतित हो जाती हैं। किसी विद्वानने ठीक ही कहा है, कि पुरुष अंगारेके समान और स्त्रियां घृतकुम्भके समान होती हैं। इन दोनोंका मेल होते ही आग लग

जाती है। अन्य एक विद्वानका कथन है, कि स्त्रियां किसी भी सुन्दर पुरुषको – फिर चाहे वह उनका भाई, लड़का या पिता ही क्यों न हो—देखते ही विचलित हो उठती हैं, अतः किसी स्त्रीको किसी पुरुषसे एकान्तमें न मिलना चाहिये। वास्तवमें यह बातें बिलकुल ठीक हैं। पवित्रसे पवित्र मनोभाववाले स्त्री पुरुष भी जब बहुत दिनों तक एकान्तमें मिलते जुलते या बातचीत करते रहते हैं, तब उनके मनमें विकार उत्पन्न होते देर नहीं लगती। यद्यपि अनेक बार ऐसे स्त्री पुरुष सुविधाके अभाव, मनोबल या किसी अन्य कारणसे प्रत्यक्ष रूपसे पाप पंकमें लिप्त नहीं होते, तथापि यह तो निश्चित है, कि वे अपने मनको पहलेकी तरह पवित्र नहीं रख सकते। इसी प्रकार कुलटाओंके संसर्ग, आचार-हीनता और निरंकुशताके कारण भी स्त्रियां पतित हो जाती हैं।

पतिका यथेच्छ व्यवहार और पतिसे ईर्ष्या—यह दो कारण भी बड़े प्रबल हैं। स्त्रियां जब देखती हैं, कि उनका पति वेश्यागमन करता है या पर स्त्रीसे सम्बन्ध रखता है, तब उनके हृदयमें एक प्रकारकी ईर्ष्या उत्पन्न होती है और वह उन्हें पाप पथकी ओर अग्रसर होनेके लिये उत्साहित करती है। स्त्रियां यह समझने लगती हैं, कि जब

उनका पति उनके पातिव्रत, उनकी सेवा और उनके प्रेमको ठुकरा कर अपना हृदय किसी दूसरेको सौंप रहा है, तब वे अपना तन मन किसी दूसरेको सौंप कर उनसे बदला क्यों न लें ? क्यों न दिखादें, कि अगर तुम हमें न चाहोगे, हमारी परवा न करोगे, तो हम भी तुम्हें न चाहेंगी—हम भी तुम्हारी परवा न करेंगी। जो पुरुष परस्त्रीसे सम्बन्ध रखते हैं, उनकी स्त्रियोंके हृदयमें ऐसे विचारोंका उत्पन्न होना स्वाभाविक है। यही कारण है, कि व्यभिचारी पुरुषोंकी स्त्रियां प्रायः किसी परपुरुषसे फँसी होती हैं। उपरोक्त परिस्थितिमें बहुत कम स्त्रियोंको यह विचार आता है, कि पतिदेवको कुमार्गसे सुमार्ग पर लानेका प्रकृत उपाय विरुद्धाचरण नहीं, बल्कि पति सेवा, मधुर वचन और सदुपदेश है। ऐसा करनेके बदले वे धैर्य खो बैठती हैं और पतिसे बदला लेनेको तैयार हो जाती हैं। इसलिये पुरुषोंको—यदि वे चाहते हों कि हमारी स्त्री सदाचारिणी बनी रहे, तो भूल कर भी पर स्त्रीसे सम्बन्ध न रखना चाहिये।

इसी प्रकार परदेशमें, जब किसी बड़े बूढ़ेका नियन्त्रण नहीं होता, और मायकेमें—क्योंकि वहां सबके साथ अधिक स्वतन्त्रतासे बातचीत करनेका मौका मिलता है—स्त्रियां खराब हो जाती हैं। यह भी सत्य ही है, कि

अनेक बार स्त्रियोंको जब जीविकाका कोई साधन नहीं रहता, तब वे उदरपूर्त्ति के लिये अपना सतीत्व बेचनेको तैयार हो जाती हैं। पतिका बुढ़ापा और मर्यादाका अभाव भी इसी प्रकार स्त्रियोंको पतित बनानेका कारण होता है। कहना व्यर्थ है, कि जिन स्त्रियोंमें यह बातें पायी जाती हैं, उन्हीं स्त्रियों पर व्यभिचारी पुरुष अपना फन्दा फेकते हैं और वही स्त्रियां आसानीसे उनका शिकार होती हैं। इसीलिये पुरुषोंको जहां तक हो सके स्त्रियोंको उपरोक्त परिस्थितियोंमें न रहने देना चाहिये।

वात्स्यायन मुनिने अपने कामसूत्रमें यह भी बतलाया है, कि कैसी स्त्रियां और कैसे पुरुष मनोविकारके सुलभ शिकार होते हैं। स्त्रियोंके सम्बन्धमें उन्होंने बतलाया है कि (१) जो स्त्री दरवाजे पर खड़ी रहती है (२) जो मकानकी खिड़कियोंसे राह चलते :पुरुषोंको देखा करती है (३) जिस स्थान पर नवयुवक बातें करने बैठते हैं उस स्थानके पास ही जो स्त्रियोंसे बातें करने बैठती है (४) जो स्त्री सतत सतृष्ण दृष्टिसे देखा करती है (५) किसी पुरुषको अपनी ओर देखते देख कर जो आसपास देखने लगती है [यह जाननेके लिये कि कोई देख तो नहीं रहा] (६) जिस स्त्रीमें कोई खास दोष न होनेपर भी, उसका पति दूसरी

स्त्रीसे व्याह कर लेता है (७) जो अपने दूषित स्वभावके कारण पतिसे द्वेष रखती है (८) जो परिहार्य विषयमें भी परिहार नहीं करती है (९) जो निःसन्तान होती है (१०) जो सदा नाते रिश्तेदारोंके यहां रहती है (११) जिसके बच्चे मर मर जाते हैं (१२) जो अपने या पराये घरमें बैठ कर गप्पें लड़ाती है (१३) जो जिस तिससे प्रीति करती हैं (१४) जो नाचने गानेवालेकी स्त्री होती है (१५) जो बाल विधवा होती है (१६) जो दरिद्र होकर बहुत सुखोपभोग प्राप्त करती है (१७) जिसके बहुत देवर होते हैं (१८) जो अपनेको बहुत गौरवान्वित और पतिको हीन समझती है (१९) जो अपने कौशलके लिये अभिमान रखती है और पतिकी मूर्खताके कारण खिन्न रहती है (२०) जो लोभी स्वभावकी होती है (२१) जो स्वभावसे ही किसीकी पक्षपातिनी होती है (२२) जो बिना किसी अपराधके ही पति द्वारा अपमानित होती है (२३) जो सौत द्वारा तिरस्कृत होती है (२४) जिसका पति सदा विदेशमें रहता है (२५) जिसका पति अकारण ही उससे ईर्ष्या करता है (२६) जिसका पति मैला कुचैला रहता है (२७) जिसका पति नपुंसक, आलसी, कायर, कुबड़ा, वामन या कुरूप होता है (२८) जिसका पति वृद्ध

या रोगी होता है (२९) जो स्त्री देहातकी रहनेवाली होती है और (३०) जिस स्त्रीका विवाह इच्छित पुरुषके बदले किसी दूसरेसे कर दिया जाता है, उसके मनमें विकार उत्पन्न होते देर नहीं लगती। वात्स्यायन मुनिने लिखा हैं, कि ऐसी स्त्रियोंको लम्पट पुरुष बड़ी आसानीसे अपना शिकार बना लेते हैं। इसलिये हमलोगोंको ऐसी स्त्रियों पर विशेष रूपसे दृष्टि रखनी चाहिये और इस बातका ख्याल रखना चाहिये, कि किसी प्रकार उनका :चरित्र दूषित न हो जाय। जो स्त्रियां उपरोक्त अवस्थामें होती हैं या जिनमें :उपरोक्त प्रकारके दुर्गुण दिखाई देते हैं, उनका सतीवृत्व-रत्न मानों रास्तेमें अनात्त अवस्थामें पड़ा रहता हैं और इसीलिये नर पिशाचोंको उसका अपहरण करनेमें देर नहीं लगती। सज्जनोंको चाहिये, कि जिसकी बहू बेटी इस अवस्थामें दिखाई दे, उसको वे इस बातकी सूचना दे दें, ताकि संसारमें व्यभिचारका बाजार गर्म न हो और मनुष्य निरे पशु न बन जांय।

स्त्रियोंकी तरह कुछ पुरुष भी ऐसे होते हैं, जिन पर व्यभिचारकी संक्रामक व्याधि विशेष रूपसे आक्रमण करती हैं। यह पुरुष अपने किसी खास गुण या दुर्गुणके कारण उपरोक्त प्रकारकी स्त्रियोंको हस्तगत करनेमें बड़ी सफलता

प्राप्त करते हैं और उनका सतीत्व अपहरण कर, सदाके लिये उन्हें कलंकित बना देते हैं। वात्स्यायन मुनिने इस सम्बन्धमें निम्नलिखित पुरुषोंका नामोल्लेख किया है :—

(१) जो काम-शास्त्रके ज्ञाता होते हैं (२) जो किस्से कहानी कहनेमें कुशल होते हैं (३) जो बाल्यावस्थासे ही संसर्गमें रहते हैं (४) जिनकी चढ़ती जवानी होती है (५) जो क्रीड़ा आदि द्वारा विश्वास सम्पादन कर लेते हैं (६) जो सेवककी तरह नायिकाकी आज्ञा शिरोधार्य करते हैं (७) जो उचित सम्भाषण कर सकते हैं (८) जो नायिकाकी अभिलाषा पूर्ण कर सकते हैं (९) जो किसी दूसरेका दूत कार्य किये होते हैं (१०) जो मर्मज्ञ होते हैं (११) जो किसी उत्तमा स्त्री द्वारा प्रार्थित होते हैं (१२) जो गुप्त रीतिसे नायिकाकी सखीसे संसर्ग रखते हैं (१३) जो ख्याति और सौभाग्यको नष्ट किये बिना व्यवहार सञ्चालनमें समर्थ होते हैं (१४) जो नायिकाके साथ ही लालित पालित होते हैं (१५) जो कामशील होते हुए पड़ोसमें रहते हैं (१६) जो कामशील होते हुए घरमें परिचायकका कार्य करते हैं (१७) जिसका विवाह हुए अधिक समय नहीं हुआ होता (१८) जो नाच रङ्ग देखना पसन्द करते हैं (१९) जिसे बगीचेकी सैर अच्छी लगती है (२०)

जिसमें त्यागशीलताके साथ साथ कामशीलता भी होती है (२१) जो पुरुष अपने सामर्थ्यके कारण प्रसिद्ध होता है (२२) जो लम्पटताके कारण प्रसिद्ध होता है (२३) जो साहसी, शूरवीर और नायिकाके पतिकी अपेक्षा विद्या आदि गुणोंमें बढ़ा चढ़ा होता है और (२४) जिस पुरुषका वेष और उपचार (भोग्य द्रव्यादि) उज्ज्वल एवम् मनोहर होता है, उसे स्त्रियोंको अपने प्रेम-जालमें फँसाते देर नहीं लगती। इसलिये कुलवधुओंको—खास कर उन बहू-बेटियों-को जो उपरोक्त अवस्थामें हों—ऐसे पुरुषोंके संसर्गसे सदा दूर रखना चाहिये।

यद्यपि इस प्रकारके स्त्री-पुरुषोंका योग हो जाने पर वे प्रायः व्यभिचारमें लिप्त हो जाते हैं, परन्तु कभी कभी ऐसा नहीं होता। स्त्रियां अनेक बार अनेक बातोंका विचार कर ऐसे पुरुषोंकी प्रेम-याचनाको ठुकरा देती हैं और इच्छा या अनिच्छापूर्वक इस महापापसे दूर रहतीं है। ऐसी स्त्रियां किन किन विचारोंके कारण पुरुषोंसे दूर रहती हैं, यह बतलाते हुए वात्स्यायन मुनिने लिखा है कि (१) अपने पति पर अनुराग होना (२) दुधमुंहे बच्चेका मोह (३) अपनी उम्रका बड़ा होना (४) घरमें किसी प्रकार-का दुःख न होना (५) कभी पति-विरह न होना (६)

अभियोग करनेवाले पर क्रोध आना (७) चित्तका दुःखित रहना (८) नायक अधिक दिन न रहेगा यह विचार (९) (१०) किसी दूसरी ओर ध्यान लगा होना (११) नायक सबसे मेरी बातें करता फिरेगा यह भय (१२) स्नेहियोंकी अनुमति बिना कोई काम न करनेकी आदत (१३) स्वामीका भय (१४) शारीरिक कष्ट होनेकी आशंका (१५) लज्जा (१६) नायक नीच जातिका होने पर गौरव हानिकी चिन्ता (१७) नायक विदेशी होने पर उसके आचार विचारोंकी विभिन्नता (१८) संकेत न समझनेके कारण नायकके प्रति धिक्कारका भाव (१९) मनस्तुष्टि न होनेकी आशंका (२०) नायक पर कोई विपत्ति न आ पड़े, यह चिन्ता (२१) अपने शरीरमें दुर्गन्ध आदि देख कर वैराग्य उत्पन्न होना (२२) बात खुल जाने पर घरवाले त्याग कर देंगे, यह भय (२३) नायक वृद्ध होनेके कारण अनादरका भाव (२४) मैं सती हूं कि नहीं यह जाननेके लिये पतिने परीक्षा लेनेके लिये शायद इसे नियुक्त किया हो, यह सन्देह और (२५) धर्म भीरुता—इन सब कारणोंसे स्त्रियोंको पाप पथमें अग्रसर होते संकोच होता है। परन्तु उन्हें व्यभिचारके दलदलमें फँसानेकी इच्छा रखनेवाले नरपिशाच ऐसे उद्यमी होते हैं, कि वे इन बातोंकी जरा भी परवा नहीं करते। वे बड़ी

मुस्तैदीसे इन बाधक कारणोंका निरीक्षण करते हैं और कारण मालूम हों जाने पर उन्हें दूर करनेकी चेष्टा करते हैं। यदि नायिका उन पर अविश्वास करती है, तो उसके विश्वासपात्र बनते हैं, नायिका भय करती है, तों वे उसका निवारण करते हैं और नायिकाको किसी प्रकारका सन्देह होता है, तो उसे निवृत्त करनेकी चेष्टा करते हैं। चतुर मनुष्यको चाहिये, कि अपनी सन्दिग्ध बहू बेटियों पर उनके संसर्गमें आनेवाले पुरुषों पर भली भांति ध्यान रक्खें और यदि उनमें उपरोक्त प्रकारके :लक्षण दिखाई दें, तो उनका सम्बन्ध विच्छेद करा दें। इससे व्यभिचार रुकेगा और गृहदेवियां सुरक्षित रह सकेंगी।

परन्तु इससे कोई यह न समझ ले, कि इतने हीसे सब काम हो जायगा और गृहदेवियोंके पतित होनेका भय न रहेगा, क्योंकि व्यभिचारी मनुष्य इतने हीसे हताश नहीं होते। वे भविष्यमें भी नाना प्रकारके उपायों द्वारा उन्हें हस्तगत करनेकी चेष्टा करते हैं। हम अपने पाठकोंको उन उपायोंसे भी अवगत कर देना उचित समझते हैं, ताकि वे अन्ततक कुलदेवियोंकी रक्षा और व्यभिचारियोंके प्रयत्नों-को निष्फल करनेमें सफल हों।

वात्स्यायन मुनिने लिखा है और अनुभवसे भी जाना

गया है, कि व्यभिचारी पुरुष, जब किसी परदाराको हस्तगत करना चाहते हैं और उन्हें उसके उपरोक्त लक्षणोंसे विश्वास हो जाता है, कि चेष्टा करने पर वह अवश्य बात मान लेगी, तब सर्व प्रथम वे उससे परिचय प्राप्त करनेकी चेष्टा करते हैं। इसके लिये, यदि नायिका कभी अपने घर आती है, तो अपने घरमें अन्यथा वह किसी मित्र, ज्ञाति बन्धु, विवाहादि उत्सव या बगीचे आदि स्थानोंमें जाती है, तो वहां उससे चार आंखें करते हैं। नायिकासे देखादेखी होने पर उसे अपना मनोभाव व्यक्त करनेके लिये अनेक प्रकारके उपायोंको काममें लाते हैं। कभी भावसूचक दृष्टिसे नायिकाको देखते हैं, कभी शिखा खोल कर बांधते है, कभी नखसे अपना शरीर खुजलाते हैं, कभी जेवरोंसे आवाज करते हैं, कभी अपने होठोंको मसलते हैं, कभी समवयस्कोंसे हँसी दिल्लगी करते हैं, कभी सांकेतिक शब्द कहते हैं, कभी अपने गुणोंकी डींग मारते हैं, कभी मित्रकी गोदीमें ढुलकते हुए जँभाई लेते हैं, कभी गदगद होकर बातें कहते हैं, कभी ध्यानसे नायिकाको बातें सुनते हैं, कभी किसी छोटे बच्चेको गोदीमें लेकर खूब चुम्बन और आलिङ्गन करते हैं, कभी नायिकाको सुनानेके लिये किसी दूसरे होसे अनेक बातें करते हैं, कभी

नायिकाकी गोदीसे बच्चेको लेकर खेलाते हैं और कभी इसी तरहके अन्य उपायोंसे नायिकासे परिचय प्राप्त करते हैं। परिचय हो जाने पर नाना प्रकारसे वे उसके यहां आने जाने लगते हैं और उससे खूब घनिष्टता उत्पन्न कर बोल चाल और वस्तुओंके लेन देनका व्यवहार स्थापित कर लेते हैं।

Exactly so.

घनिष्टता और विश्वास सम्पादन करनेके बाद वे उसपर अभियोग करना आरम्भ करते हैं। अभियोग ठीक उसी प्रकारके होते हैं, जैसे किसी कुमारिकाको हस्तगत करनेके लिये किये जाते हैं। परन्तु यह उससे बहुत हलके होते हैं। धीरे धीरे जब नायिकाका भय दूर हो जाता है, तब एकान्त मिलन और आलिङ्गन चुम्बन भी होने लगते हैं और इसी प्रकार उसका सतीत्व नष्ट कर सदाके लिये उसे कलंकिनी बना दिया जाता है।

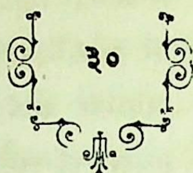
अनेक स्त्रियां तो इतने हीमें अपना सतीत्व खो बैठती हैं, परन्तु अनेक स्त्रियां ऐसी भी होती हैं, जो इन बातोंकी उपेक्षा कर जाती हैं। ऐसी अवस्थामें व्यभिचारी मनुष्य नायिकाके निकट किसी विधवा, दासी, भिक्षुकी या मालिन आदि शिल्पकारिकाको दूतीके रूपमें भेजते हैं। कभी कभी यह काम अबोध बालिकाओं और अपनी स्त्रियोंसे

भी लिया जाता है। यह दूतिकायें नायिकाको नायकके प्रेमपत्र और सन्देश पहुंचाती हैं और नायिकाके पतिकी जी भर कर निन्दा और जिसकी ओरसे वे भेजी जाती हैं उसकी भूरिभूरि प्रशंसा करती हैं। अभागिनी स्त्रियां उस समय यह नहीं समझ सकतीं, कि केवल उनका सतीत्व अपहरण करनेके लिये ही उन्हें यह सब्ज बाग दिखाये जा रहे हैं और वे उनकी बातोंमें आ जाती हैं। कभी कभी उन्हें फसानेके लिये उनकी सखियाँ या घरकी बड़ी बूढ़ी औरतें भी हाथमें कर ली जाती हैं। ऐसी अवस्थामें उनका अधःपतन होनेमें देर नहीं लगती। मानव मन सदा कमजोर रहता है। अज्ञान स्त्रियोंकी अवस्था तो और भी बुरी होती है। उनको फसानेके लिये जब चारों ओरसे जाल बिछा दिये जाते हैं, पग पग पर प्रलोभन रख दिये जाते हैं, तब एक न एक दिन वे फस ही जाती हैं। अधःपतन होनेके बाद उन्हें पश्चाताप अवश्य होता है, परन्तु फिर लाभ ही क्या हो सकता है। मोतीका पानी उतर जानेके बाद फिर नहीं चढ़ता। सतीत्व नष्ट होनेके कारण जो कलंक-कालिमा लग जाती है, वह फिर कभी नहीं छूटती। निःसन्देह, वे स्त्रियां परम अभागिनी हैं, जो अपना सतीत्व खोकर, पश्चातापमें जीवन व्यतीत करती

हैं। संसारका कोई भी पदार्थ उनके कलुषित और दग्ध हृदयको शीतल नहीं कर सकता।

संसारमें दाम्पत्य-प्रेम ही दम्पतियोंका सर्वस्व है। दाम्पत्य-प्रेम ही उन दोनोंको क्षीर और नीरकी तरह एक दूसरेसे मिला देता है। परन्तु व्यभिचार, चाहे स्त्रीमें हो चाहे पुरुषमें, खटाईका काम करता है। खटाई जैसे दूधको फाड़ देती है, वैसे ही व्यभिचार स्त्री-पुरुषोंके अभिन्न हृदयोंको एक दूसरेसे अलग कर देता है। इसलिये, इस पाप पंकमें स्त्री या पुरुषको लिप्त न होना चाहिये। यदि दोमेंसे एक विचलित होगा, तो वह दूसरेको भी ले डूबेगा। फिर उस घरमें शान्ति न रहेगी—कलहका साम्राज्य होगा और संसारमें हँसी होगी।

व्यभिचारियोंकी समस्त प्रवृत्तियोंका हमने संक्षेपमें दिग्दर्शन कराया है। इन प्रवृत्तियोंको जान रखनेसे व्यभिचारियोंके कार्यमें बाधा दी जा सकेगी। जिनमें इन बातोंको समझनेकी क्षमता आ जायगी, उनके निकट व्यभिचारियोंकी दाल न गल सकेगी। इसीलिये यह सब बातें हमने अंकित की हैं। आशा हैं, कि इससे कुलदेवियोंकी रक्षा करनेमें पाठकोंको सहायता मिलेगी और वे व्यभिचारी पुरुष तथा उनके दूत दूतियोंकी चालबाजियोंसे उन्हें बचा सकेंगे।



वेश्यागमन

नायिका निर्णय नामक अध्यायमें बतलाया चुका है, कि वात्स्यायन प्रभृति आचार्यों ने कन्या, पुनर्भू और परदाराकी भांति वेश्याको भी नायिका माना है। इसका तात्पर्य यह नहीं है, कि लोग कन्या और पुनर्भूकी भांति परदारा या वेश्यासे भी दाम्पत्य-सम्बन्ध रख सकते हैं और उनमें सन्तानोत्पादन कर सकते हैं। हम पहले ही कह चुके हैं, कि परस्त्री गमनको हम व्यभिचार और वेश्यागमनको दुराचार समझते हैं। हमारी समझमें यह दोनों निन्दनीय हैं। जिस प्रकार किसीको अपने मनोविकारकी शान्तिके लिये परस्त्रीसे सम्बन्ध रखनेकी

सलाह नहीं दी जा सकती, उसी तरह वेश्यागमनके लिये भी अनुमति नहीं दी जा सकती। समाज और धर्म दोनोंकी दृष्टिमें यह बहुत ही बुरे और निन्दनीय कार्य हैं।

यौवनमें जब मनुष्यका अपने मन पर अधिकार नहीं रहता, जब उसकी समस्त इन्द्रियाँ विषयवासनाके कारण चञ्चल हो उठती हैं और जब मानव मन नाना प्रकारके तूफान उठनेसे अशान्त हो जाता है, तब मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तिको जहां मौका मिलता है, वहीं चरितार्थ करनेकी चेष्टा करता हैं और कर भी लेता है, परन्तु इससे उसके हृदयको वास्तविक शान्ति नहीं मिलती। हम बारं-बार बतला चुके हैं, कि वास्तविक शान्ति दाम्पत्य-प्रेमसे मिलती है, परन्तु यह न तो परदाराओंके ही पास होता है न वेश्याओंके ही पास। परदारायें किन कारणोंसे पर-पुरुषकी आकांक्षा करती है, यह गत अध्यायमें बतलाया जा चुका है। उनकी आकांक्षा निःस्वार्थ नहीं होती। वे किसी न किसी कारणसे ही परपुरुषसे सम्बन्ध स्थापित करती हैं। ज्यों ही वह कारण नष्ट हो जाते हैं, ज्यों ही उनका स्वार्थ सिद्ध हो जाता है या ज्यों ही उनकी इच्छा पूर्ण हो जाती हैं, त्यों ही वे पर पुरुषसे अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेती है। सामाजिक, धार्मिक और राज-

नियम भी ऐसे नहीं हैं, कि कोई स्त्री परपुरुषसे चिरकाल तक अविछिन्न सन्बन्ध रख सके। इसलिये उसे कुछ दिनोंके बाद इस पाप वृत्तिसे मुंह मोड़ना ही पड़ता है और उस अवस्थामें यह कब सम्भव है, कि उससे सम्बन्ध रखनेवालेको शान्ति उपलब्ध हो? शान्ति मिलना तो दूर रहा, कभी कभी परस्त्रीसे सम्बन्ध रखनेका परिणाम इतना भयंकर होता है, कि धन दौलत, इज्जत आबरू और अन्तमें प्राण तकसे हाथ धोना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें क्या किसीको वास्तविक शान्ति मिल सकती है?

परन्तु उन लोगोंकी अवस्था इनसे भी अधिक भयंकर होती है, जो वेश्याओंके यहां अपना सर्वस्व नष्ट करते फिरते हैं। वेश्यायें कौन हैं और उनका क्या व्यवसाय है, यह किसीसे छिपा नहीं है। यह मानी हुई बात है, कि वे किसीसे प्रेम करनेके लिये, किसीके दग्ध हृदयको शीतल करनेके लिये बाजारमें नहीं बैठतीं। उनका एक मात्र उद्देश्य होता है—रुपया कमाना और इसीके लिये वे अपने आत्म-गौरव व लज्जाको जलाञ्जलि दे रूप, यौवन और सतीत्व बेचने बैठती हैं। उनके लिये रुपया ही धर्म, रुपया ही कर्म और रुपया ही जीवन सर्वस्व होता है। लोग उनके पास चाहे जिस वस्तुकी तलाशमें जायँ, पर वे

केवल रुपया खोजती हैं। उनकी नस नसमें स्वार्थपरता भरी रहती हैं और ऐसा होना स्वाभाविक भीं है। वे रुपये हीके लिये तो सब करती हैं। रुपया न मिलने पर उनको अपने जीवन और व्यवसायके प्रति ठीक उसी प्रकारकी घृणा उत्पन्न हो सकती है, जैसे एक पढ़े लिखे बी० ए० पासको नौकरी न मिलने पर उत्पन्न होती है।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि वेश्यायें केवल रुपया कमानेके लिये ही बाजारमें बैठती हैं। ऐसी अवस्थामें उनके यहां केवल उसीका आदर हो सकता है, जो रुपया देकर उन्हें सन्तुष्ट कर सके। रुपया न होने पर वे किसीको भी अपना प्रेमपात्र नहीं बना सकतीं। लोग उनके यहां ऐसी चीज खोजने जाते हैं, जिससे उनके हृदयको शान्ति मिल सके, परन्तु वे केवल रुपया खोजती हैं। जो लोग उनके यहां जाते हैं, उनके पास रुपये रहते हैं, इसलिये वेश्यायें तो उनसे रुपया प्राप्त कर लेती है, परन्तु वेश्याओंके पास वह चीज नहीं होती, जो मानव मनको वास्तविक शान्ति दे सके, इसलिये उन अभागे पुरुषोंको हाहाकार करते हुए वहांसे खाली हाथ लौटना पड़ता है। वे रुपये खो बैठते हैं पर उन्हें शान्ति नहीं मिलती।

वास्तविक शान्ति केवल दाम्पत्य-प्रेम हीसे मिल

सकती है और दाम्पत्य-प्रेमका उद्गम केवल विवाहिता पत्नीके ही हृदयमें होता है। विवाहिता पत्नी हृदयके बदले हृदय, बाहुपाशके बदले बाहुपाश और आलिङ्गनके बदले आलिङ्गनकी ही अभिलाषिणी होती है। उसे किसी अन्य वस्तुकी अपेक्षा नहीं होती। इसीलिये वह हृदयके बदले हृदय दे सकती है। वेश्याओंको केवल रुपयोंकी चाह होती है, इसलिये जबतक उन्हें रुपया मिलता है, तभी तक वे अपना हृदय पुरुषको देती हैं। यदि वे सदाके लिये अपना हृदय किसीको दे दें, तो फिर उनका व्यवसाय कैसे चले? और सच बात तो यह है, कि वे अपना हृदय किसीको देती भी नहीं, केवल देनेका दिखाव भर करती हैं। ऐसी अवस्थामें जो लोग उनके यहां शान्ति खोजने जाते हैं, वे मानों सवारीके लिये सिंहको पकड़नेकी चेष्टा करते हैं। वे जो चाहते हैं, वह तो उन्हें मिलता नहीं और जो गांठमें होता है, उसे अनायास खो बैठते हैं।

इसीलिये वेश्यागमन निन्दनीय है। इससे मनुष्यको उस फलकी प्राप्ति नहीं होती, तो दाम्पत्य-संयोग होने पर होनी चाहिये। उलटे, वेश्यागमन करनेवालोंको सूजाक और गरमी आदि ऐसे रोग उपहार मिलते हैं, जिनके कारण न केवल उन्हींका जीवन भार हो पड़ता है, बल्कि सात

पुश्त तक भावी सन्तानको भी उसका फल भोग करना पड़ता है। हम यहां उन रोगोंकी भयंकरताका वर्णन कर पुस्तककी कलेवर वृद्धि करना नहीं चाहते। जो लोग इस पापमें लिप्त होते हैं, उन्हें इन रोगोंका शिकार अवश्य होना पड़ता है। दूसरे लोगोंके लिये यही सबसे अच्छे प्रमाण हो सकते हैं। जिनको इस सम्बन्धमें तनिक भी सन्देह हो, वे किसी रोगीसे पूछताछ कर अपना सन्देह निवारण कर सकते हैं। हम तो केवल यही बतलाना चाहते हैं, कि वेश्याओंके यहां जो कुछ होता है, वह केवल रुपयोंके लिये होता है और उनके यहां उस वस्तुका पूर्णरूपसे अभाव होता है, जो मानव मनको वास्तविक शान्ति प्रदान करती है। इसलिये किसीको भूल कर भी वेश्यागमनके फेरमें न पड़ना चाहिये।

वेश्याओंका एक स्वतन्त्र शास्त्र होता है। उन्हें उसीकी शिक्षा दी जाती है और उसीके अनुसार आचरण कर वे धनोपार्जन करती हैं। प्राचीनकालमें वाभ्रव्यने इस शास्त्रकी रचना की थी। दत्तक मुनिने भी उसका निर्माण किया था और वात्स्यायन मुनिने भी अपने कामसूत्रमें उसका सार संकलित किया है। पाठकोंकी जानकारीके लिये हम उसे संक्षेपमें अंकित करते हैं। इससे हमारे पाठ-

कोंको भली भांति विदित हो जायगा, कि वेश्याओंके समस्त कार्य कितने रहस्य पूर्ण होते हैं और किस प्रकार पुरुषोंका सर्वनाश कर वे अपना स्वार्थ साधन किया करती हैं।

वेश्याओंके सम्बन्धमें सबसे पहली जानने योग्य बात यह है, कि वे एक प्रकारसे अपना रूप और यौवन बेचने बैठती हैं, इसलिये उन्हें स्वाभाविक लज्जाको—उस लज्जाको जो स्त्रियोंकी भूषण मानी गयी है, सर्व प्रथम जलाञ्जलि देनी होती है। वे बन ठन कर शिकारको फँसानेके लिये कोठे, झरोखे और छज्जों पर इस तरह बैठती हैं, कि जिससे उधरसे जाने आनेवालोंकी दृष्टि उन पर आसानीसे पड़ सके। इसके विपरीत कभी कभी वे अपनेको छिपाती हैं, परन्तु यह कार्य वे केवल इसीलिये करती हैं, कि जो मनुष्य उन्हें एक बार देख कर मुग्ध हो चुके हों, वे उनकी दर्शन लालसासे व्याकुल हो उठें और शीघ्र ही उनके सुनहले जालमें आ फसें।

परन्तु इस तरह कोठे पर बैठनेसे ही लोग उनके जालमें फसने नहीं लगते। उन्हें इसके लिये और भी चेष्टायें करनी होती हैं। बहुधा वे इस कार्यके लिये ऐसे आदमियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करती हैं, जो रसिकोंको फसा कर उनके पास ले आयें। धर्मज्ञ, ज्योतिषी, पहलवान,

शूरवीर, विद्वान, कलाग्राही, पीठ मर्द, विट, विदूषक, माली, अत्तार, शोण्डिक, धोबी, नाई और भिक्षुक—यही प्रायः इस कार्य पर नियुक्त किये जाते हैं, क्योंकि यह लोग नित्य नये पात्रोंसे मिलते जुलते रहते हैं और लोगोंके यहां जाने आनेमें उन्हें किसी प्रकारकी रोक टोक नहीं होती। यह लोग छैल छबीलोंको खोज कर स्वपरिचित वेश्याके यहां ले जाते हैं, इन्हें किसी दूसरी वेश्याके यहां जानेसे रोकते हैं, पैसेकी जगह चार पैसे दिलवाते हैं और वेश्याओंको हर तरहसे मदद पहुंचाते हैं। लोगोंको चाहिये, कि ऐसे मनुष्योंसे सावधान रहें और उनकी बातोंमें भूल कर भी न आयें।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि वेश्यायें केवल रुपयोंके लिये यह हीन व्यवसाय करती हैं। ऐसी वेश्यायें बहुत कम होती हैं, जो आन्तरिक प्रेमके कारण किसीको गले लगाती हैं। इसलिये यह और इनके दलाल सर्वदा ऐसे ही पात्रोंकी खोजमें रहते हैं, जो आंखके अन्धे और गांठके पूरे हों। वात्स्यायन मुनि इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि :—

स्वतन्त्रः पूर्व्वे वयसि वर्त्तमानो वित्तवान परोक्ष वृत्तिरधिकरण वान कृच्छ्राधिगतवित्तः। संघर्षवान् सन्ततायः सुभगमानी श्लाघनकः पण्डकश्च पुंशब्दार्थो। समान

स्पर्द्धी स्वभावतस्त्यागी। राजनि महामात्रे वा सिद्धो दैव प्रमाणो वित्तावमानी गुरुणां शासनातिगः सजातानां लक्ष्यभूतः सवित्त एकपुत्रो लिङ्गी प्रच्छन्नकामः शूरो वैद्यश्चेति।

अर्थात् धन प्राप्तिके लिये ऐसे पुरुषको फसाना चाहिये, जो परम स्वतन्त्र हो, युवक हो, धनवान हो, जिसकी आमदनी नित्यकी हो, जिसको कमाई पसीनेकी न हो—जिसे अपने बाहुबल द्वारा सम्पत्ति एकत्रित न करनी पड़ी हो, जिसकी वृत्तियां जगत प्रसिद्ध हों, जो अभागा होकर भी अपनेको सौभाग्यवान समझता हो, जो अहंकारी हो, जो कायर होने पर भी वीर कहलानेका अभिलाषी हो, जो कुल, धन, विद्या या अवस्थाका अभिमान रखता हो, जो स्वभावसे ही दानशील हो, जिसकी बात सरकार दरबारमें सुनी जाती हो, जो प्रारब्धवादी हो—जो ऐसा समझता हो कि धन भाग्यके ही कारण क्षय होता है, उड़ानेसे नहीं, जिसे धनका मोह न हो, जो बड़े बूढ़ोंकी आज्ञा न मानता हो, जो अपनी जातिमें अगुआ गिना जाता हो, जो धनवान पिताका एकमात्र पुत्र हो, जो बगुला भगत हो, जो शूर हो और जो वैद्य हो। यह लोग वेश्याओंको खूब देते हैं और देते समय इन्हें कोई रोकनेवाला नहीं होता। इसलिये

वेश्याओंकी शनि दृष्टि सर्व प्रथम ऐसे ही पुरुषों पर पड़ती है।

इस प्रकारका जब एकाध मनुष्य वेश्याओंके कपटजालमें फँस जाता है, तब वेश्यायें उससे रुपये ऐंठनेके लिये नाना प्रकारके उपायोंको काममें लाती हैं। सर्व प्रथम वे अपने उपरोक्त दलालों द्वारा नायकके शील स्वभाव, गुण दोष, भाव अभाव, प्रीति अप्रीति और आसक्ति अनासक्ति प्रभृति बातोंका पता लगाती हैं। इससे उनको बड़ा लाभ होता है। वे सदैव नायककी इच्छानुकूल कार्य करती हैं और इस बात पर ध्यान रखती हैं, कि कोई कार्य उनसे ऐसा न हो जाय, जिससे नायककी उनसे विरक्ति हो जाय। वेश्याके इस कपट-आचरणसे लोग धोखेमें पड़ जाते हैं। वे समझने लगते हैं, कि इसका स्वभाव मेरे स्वभावके अनुकूल है, अतएव वे उसके यहां पहलेकी अपेक्षा अधिक आने जाने लगते हैं और उसे अधिकाधिक धन देने लगते हैं।

इस प्रकार किसीको अपनी मुट्ठीमें कर लेनेके बाद उसपर पूर्ण रूपसे हाथ फेरनेसे लिये वेश्यायें नाना प्रकारके उपायोंसे काम लेती हैं। वे अपने प्रत्येक कार्यसे यह बतलानेकी चेष्टा करती हैं, कि मानो अब उनका जीवन-

सर्वस्व वही है। नायक जब अन्यमनस्क हो जाता है, तब उसकी ओर टकटकी लगा कर देखती हैं। वह जिससे द्वेष करता है, उसीसे वे भी द्वेष करने लगती हैं। नायक जिससे प्रेम करता है, उसीसे वे भी प्रेम करती हैं। वह जिसे रमणीय समझता है, वे भी उस पर अनुराग प्रकट करती है। नायक यदि प्रसन्न या दुःखी होता है, तो वे भी वैसा ही मनोभाव बना लेती हैं। नायकके बनवाये हुए देव मन्दिर या तड़ाग आदिकी प्रशंसा करती हैं। नायक जब कोई बात कहता है, तब बड़े ध्यानसे सुनती हैं। यदि उनसे कोई अपराध हो जाता है और नायक वह जान लेता है, तो वे नायकके निकट खेद, पश्चाताप या उपवासादि कर उसके मनोमालिन्यको दूर करनेकी चेष्टा करती हैं। नायकका पुत्र या भाई आदि कोई आत्मीय मर जाता है, तब आभूषण आदि पहनना छोड़ देती हैं। नायकको यदि धन या स्वास्थ्य लाभ होता है तो कहती हैं, कि हम इसके लिये ईश्वरसे प्रार्थना किया करतीं थीं! यदि किसी प्रकारसे नायकके मनमें ग्लानि उत्पन्न होती है, तो वे अपने हाथोंसे उसका हाथ लेकर अपने हृदय और शिर पर रखती हैं। उसके हस्त-स्पर्शका सुख अनुभव कर नायकके हृदयस्थल या उसकी जंघाओं

पर शिर रख कर सो जाती हैं, (यह कपट :निद्रा ही होती है) और भय, जाड़ा गर्मी तथा वर्षा आदिकी उपेक्षा कर नायकके अभिप्रेत, भाव और रस आदिका अनुसरण करती हैं।

कहना व्यर्थ है, कि वेश्याओंके इन कार्यों को देख कर चतुरसे चतुर मनुष्यको भी बेवकूफ बननेमें देर :नहीं लगती। वे समझने लगते हैं, कि जैसे मैं इस पर अनुरक्त हूं, वैसे ही यह हम पर अनुरक्त है। वेश्यायें इस अवस्थामें उसे और भी बेवकूफ बनाती हैं। इस कार्यमें उन्हें अपनी मातासे बड़ी सहायता मिलती है। जिन वेश्याओंके माता नहीं होती, वे किसी वृद्धाको कुछ समयके लिये माता बना लेती हैं। माताका स्वभाव बहुत ही क्रूर और लालची होता है। न होने पर भी वे अपने स्वभावको स्वार्थ-वश ऐसा बना लेती हैं। नायिका सदैव अपनी माताके अधीन रहती है। माता नायिकाके प्रेमीसे अधिक प्रेम नहीं रखती। वह थोड़े थोड़े समयके अन्तरसे नायिकाको वर्तमान नायकसे छुड़ा कर किसी दूसरे नायकके निकट भेजती है या भेजनेका दिखाव करती है। इससे नायिका नायकके निकट लज्जा और वैराग्य प्रकट करती है। कहती है, कि मैं अब कौन मुँह लेकर तुम्हारे पास आऊँ। कभी

कभी वह ऐसी बातें कहती है, कि मानो अपनी मातासे बहुत ही डरती हो। किन्तु कभी माताकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं करती (क्योंकि सब मामला पहले ही से सधाबधा रहता है) कभी कभी यह मां-बेटियाँ दोनों साथ मिल कर नायकको बेवकूफ बनाती हैं। नायिका अपनी मातासे कलह (कपट विवाद) करती है और कहती है, कि मैं नायकके साथ जहां चाहूंगी, चली जाऊँगी। यदि तुम बलपूर्वक मुझे रोक रक्खोगी, तो मैं अन्न जल त्याग दूँगी, जहर पी लूँगी, छूरा भोंक लूँगी या फांसी लगा कर मर जाऊँगी। नायक जब यह बातें सुनता है, तब उसके हृदय पर बहुत प्रभाव पड़ता है। वह नायिकाके इस कृत्रिम दुःखसे दुःखी होता है और उसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रकट करता है। नायिका उस समय नायकको सुना कर अपने व्यवसाय—वेश्या वृत्तिकी निन्दा करती है। कहती है—वेश्या वृत्ति कितनी कुत्सित है, कि जिसे हम जीजानसे चाहती हैं, उसे छोड़ कर रुपयोंके लिये अपनी इच्छा विरुद्ध दूसरेसे प्रेम करना पड़ता है—इत्यादि। पाठकोंको शायद ही बतलाना होगा कि उनकी सब बातें असत्य होती हैं। केवल प्रदर्शन करनेके लिये ही वे इनका उच्चारण करती हैं। परन्तु इसमें सन्देह नहीं, कि इससे

पुरुष दिन प्रतिदिन गहरे दलदलमें फसते जाते हैं, और उनका सर्वनाश निकट आता जाता है।

वेश्यायें अपने जालमें फसे हुए पुरुषोंसे धन भी बड़ी युक्तिसे वसूल करती हैं। धन वसूल करनेका तरीका कभी सीधा और कभी टेढ़ा होता है। बहुधा वे गहने कपड़े, खाने पीनेकी चीजें—मिठाई और शराब इत्यादि, गन्ध, माल्य, पान सुपारी, पशु-पक्षी और बरतन प्रभृति वस्तुओंके विक्रेताओंको बुला कर उनसे संकेत कर रखती हैं और बादको उन्हें यह कह कर नायकसे धन दिलाती हैं, कि इनसे अमुक समय अमुक चीजें ली थीं और उसके रुपये देने हैं। कभी कभी वे जब बगीचेकी सैर या देव दर्शन करने जाती हैं, तब बहाना करती हैं, कि रास्तेमें हमारा अमुक गहना खो गया या चोरने चुरा लिया। कभी कभी घरमें चोरी या सेंध लग जानेका बहाना करती हैं। कभी अपनी माताको दोष देती हैं, कि उसकी असावधानीसे अमुक चीजें चोरीमें चली गयीं। कहना व्यर्थ है, कि जब तक नायक उन्हें यह चीज बनवा नहीं देता, तब तक वे उसे चैनसे बैठने नहीं देती। कभी कभी अपने नौकरसे नायकको कहलाती हैं, कि तुम्हारे आमोद प्रमोदके कारण अमुक गहने बेच देने पड़े हैं। कभी नायकके नाम पर ऋण

लेतो हैं और बादको उसे चुकानेके लिये नायकको मजबूर करती हैं। कभी अपनी किसी सखीके यहां किसी उत्सवादि माङ्गलिक प्रसङ्ग पर जानेकी इच्छा व्यक्त करती हैं। परन्तु कहती हैं कि हमारे यहां जब ऐसा प्रसंग उपस्थित हुआ था, तब उसने हमारे यहां बहुत सी चीजें उपहार भेजी थीं। हमारे पास तो रुपये नहीं हैं, हम किस तरह जायं? इस तरह कहनेसे नायक अवश्य ही धन देता है। यदि नहीं देता, तो सचमुच वे नहीं जातीं और इस प्रकार नायकको लज्जित करती हैं। कभी कभी मकान या कोई चीज बनवानेके बहाने रुपये ऐंठती हैं। कभी वैद्य, ज्योतिषी या किसी दूसरेको देनेके बहाने रुपये निकलवाती हैं। कभी नायकका कोई मित्र बीमार पड़ता है या किसी विपत्तिमें आ पड़ता है, तो उसे सहायता दिलवाती हैं, ताकि बादको इस उपकारके बदले वह नायकसे उन्हें धन दिलानेमें सहायता पहुंचाये। कभी कभी अपने या अपनी सखीके लड़कोंको गहने बनवानेके बहाने रुपये मांगती हैं। कभी किसी सखीके संकटका वर्णन कर उसे आर्थिक सहायता देनेको समझाती हैं और रुपये लेकर अपनी जेबमें रखती हैं। कभी खर्चके लिये रुपयोंकी कमी बता कर किसी सधेबधे दूकानदारको बुला कर वे नायकके दिये हुए

गहने या बरतन आदि बेचनेकी बात चीत चलाती हैं या बेच देती हैं। नौकरसे अन्यान्य वेश्याओंको उनके प्रेमी क्या क्या देते हैं सो कहला कर बादको स्वयं कुछ लज्जित होकर वही बातचीत चलाती हैं और नायकसे ऐसी ऐसी बातें करती हैं, जिससे वह शानमें आकर उन्हें अपना सर्वस्व अर्पण करनेको तैयार हो जाय।

जो लोग वेश्याओं पर तनमनसे अनुरक्त होते हैं, उनसे इसी तरह धन वसूल किया जाता है, परन्तु बहुतसे लोग ऐसे भी होते हैं, जो जितना देना चाहिये उतना नहीं देते, कहते हैं कुछ और करते हैं कुछ—एक कामके बहाने दूसरा काम करते हैं, पहले देनेका वादा करते हैं, परन्तु याद दिलाने पर आश्चर्यसे कहते हैं, कि हमने तो यह चीज देनेका वादा नहीं किया था, मित्रोंसे संकेतमें बातें करते है, किसी मित्रका काम करनेके बहाने अन्य नायिकाके यहां जाकर शयन करते हैं या पूर्व परिचित नायिकाके परिजनोंसे एकान्तमें बातें करते हैं। ऐसे लोगोंको हम "विरक्त" नायक कह सकते हैं। वेश्यायें उनके यह कार्य देख कर समझ जाती हैं, कि अब यह चिड़िया हमारे हाथमें अधिक समय तक नहीं रह सकती। परन्तु यह जानते हुए भी वे अपने आचरणमें किञ्चित भी अन्तर नहीं पड़ने देतीं।

बल्कि पहलेसे भी अधिक हाव भाव और प्रेम दिखा कर उनसे गहरी रकम वसूल करनेकी चेष्टा करती हैं।

इस अवस्थामें नायकसे धन प्राप्त करनेका तरीका बिलकुल नया और निराला होता है। बहुधा वे स्वयं नायकको फुसला कर उसकी कोई बहुमूल्य चीज अपने पास रख लेती हैं और बादको झगड़ा कर उसे धता बताती हैं। यदि स्वयं कृतकार्य नहीं होतीं, तो वे इस कार्यके लिये किसी दूसरेको नियुक्त करती हैं। वह छल या बल द्वारा नायककी कोई चीज हस्तगत कर लेता है। कभी कभी तो इस कार्यके लिये भयंकर गुण्डे नियुक्त किये जाते हैं और वे नायकको शराब आदि पिला कर बेहोशीमें अथवा योंही साधारण अवस्थामें आक्रमण कर उसका सर्वस्व अपहरण कर लेते हैं। नायक जब इसके लिये चीखता चिल्लाता है, तो वे उसे पुलिसमें दे देती हैं या गुण्डे ही डरा धमका कर उसे निकाल बाहर करते हैं।

जो लोग विरक्त होते हैं, केवल वही वेश्याओंके यहांसे नहीं निकाले जाते, बल्कि जो अनुरक्त होते हैं, वह भी—जब वे पर्याप्त धन नहीं दे सकते—निकाल बाहर किये जाते हैं। परन्तु इनके निकालनेका तरीका कुछ और ही होता है। वेश्यायें उन पर मिथ्या दोषारोपण करती है। नाना प्रकारके

षड्यन्त्रोंसे काम लेती हैं। कभी कभी स्पष्ट कह देती हैं, कि तुम्हारे पास रुपये नहीं हैं तो यहां क्यों आते हो? इसके अतिरिक्त और भी अनेक उपायोंसे काम लेती हैं। नायकके मनमें विरक्ति उत्पन्न करनेके लिये, जो बातें उसे अच्छी नहीं लगतीं, उन्हींका अनुष्ठान करती हैं। तिनके तोड़ना, उँगलियां चमकाना और होठ चिबाना आदि घृणोत्पादक कार्य बारंबार नायकके सम्मुख करती है। पैर पटकती हैं। नायक जिन बातोंके सम्बन्धमें विन्दु विसर्ग भी नहीं जानता, उनकी चर्चा कर लोगोंके सम्मुख उसे लज्जित करती हैं। दूसरोंको उत्साहित कर उसके सर्वनाशका आयोजन करती हैं। सदा अन्यान्य लोगोंके साथ रहने लगती हैं। नायकके निकट लापरवाही दिखाती हैं। नगण्य दोषके लिये भी उसकी घोर निन्दा करती हैं। तरह तरहके ताने मारती हैं। ऐसी ऐसी बातें कहती हैं जो तीरकी तरह चुभ जाती हैं। हर तरहसे नीचा दिखानेकी चेष्टा करती हैं। जब नायक आता है, तब उसके सामने तक नहीं आतीं। न मिल सके ऐसी चीजें मांगती हैं और हर तरहसे अपमानित करती हैं। उनके इस व्यवहारसे लोग आप ही आप उनके यहां जाना छोड़ देते हैं। यदि नहीं छोड़ते, तो वे स्पष्ट कह देती

हैं कि तुम्हारा हमारे यहां काम नहीं हैं। लोग उनकी यह बात सुन कर अपना सा मुँह लिये चले आते हैं।

वेश्याओंके सम्बन्धमें इसी प्रकारकी और भी अनेक बातें हैं, जिसके कारण वेश्या वृत्तिकी घोर निन्दा की जा सकती है और भले आदमियोंको उनसे दूर रहनेकी सलाह दी जा सकती है। खास कर जब यह एक ही समय दो तीन आदमियों पर हाथ साफ करती हैं, तब इनका कपट व्यवहार वास्तवमें देखने लायक होता है। उस समय उनका दिमाग जो काम करता है, उसे देख कर बड़ेसे बड़े विद्वानोंकी बुद्धि भी चकरा जाती है। हमारे पास उन सब बातोंका वर्णन करनेके लिये स्थान और समय दोनोंका अभाव है। पाठक यदि इस सम्बन्धमें अधिक जानाना चाहते हों, तो एक बार "वाराङ्गना-रहस्य" नामक पुस्तक (पण्डित चन्द्रशेखर पाठक लिखित और पाठक कम्पनी द्वारा प्रकाशित) पढ़ डालें। उन्हें उससे इस सम्बन्धकी बहुत सी जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

अधिक क्या लिखें? वेश्याओंका धर्म उनका शास्त्र और उनकी बातें हमलोगोंके धर्म शास्त्रसे एकदम निराली हैं। "टका धर्म टका कर्म टकाहि परमंतपः" यह उक्ति प्रायः लोभियोंके लिये काममें लाई जाती है, परन्तु लोभियों-

की अपेक्षा वेश्याओंके लिये यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है। यह चाहे जो काम करें, परन्तु इनका मुख्य कर्तव्य यही होता है:—

परीक्ष्य गम्यैः संयोगः संयुक्तस्यानुरञ्जनम्।
रक्तादर्थस्य चादानमन्ते मोक्षश्च वैशिकम्॥

अर्थात् शिकार पसन्द करना, फिर उसे फसाना—उससे मिलना, मिलनेके बाद उसे अनुरञ्जित करना, अनुरक्त होने पर उससे रुपये वसूल करना और जब रुपये शेष हो जायें, तब उसे निकाल बाहर करना। बतलाइये, ऐसी अवस्थामें जो लोग वेश्याओंके यहां सुख-शान्तिकी खोज करने जाते हैं और उन्हें आनन्दकी खान समझते हैं, उन्हें उनके यहां क्या कभी प्रकृत सुख या आनन्द प्राप्त हो सकता है?

हम यह अच्छी तरह जानते हैं, कि मानव समाजमें यदि वेश्यायें न हों, तो कुलवधुओंको दुराचारियोंकी कुदृष्टिसे बचाना कठिन हो जाय, परन्तु यह सब होते हुए भी किसीको किसी अवस्थामें वेश्या-गमनकी सलाह नहीं दी जा सकती, कारण वेश्याओंके यहां हृदयको प्रकृत शान्ति देनेवाली वस्तुका नितान्त अभाव होता है। वेश्याओंके यहां प्रेमपूर्ण सत्कार, अमृतोपम मधुर वचन और मानव

मनको शान्ति देनेवाले जो उपकरण या साज़ सामान रहते हैं, वे सब केवल शिकारको फांसनेके लिये ही होते हैं। मृगतृष्णाकी भांति वे भी लोगोंको भुलावेमें डाल कर उन्हें पथभ्रष्ट बना देते हैं। जो लोग इन प्रलोभनोंमें फँस जाते हैं, वे अपना धन, धर्म, स्वास्थ्य और सर्वस्व खोये बिना होशमें नहीं आते। पहले यदि कोई उन्हें समझाता भी है, तो उसकी बातें बुरी मालूम होती हैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उन्हें एक न एक दिन इसके लिये अवश्य पश्चाताप करना पड़ता है।

वेश्यागमनसे जो जो बुराइयां होती हैं, उनसे जो जो रोग उत्पन्न होते हैं, उन रोगोंसे सात पुश्त तक जो खाना खराबी होती है, उन सबका वर्णन करना हमारे लिये असम्भव हैं। हमने तो केवल अपने पाठकोंको वेश्याओंके विधि विहित कर्तव्योंका—उनके धर्म-शास्त्रके सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन मात्र कराया है। सुशील पाठकोंको इससे भी बहुत लाभ हो सकता है। इन बातोंको जान कर वे स्वयं वेश्याओंके शिकार होनेसे बच सकते हैं और अपने मित्रोंको बचा सकते हैं। अन्तमें कामसूत्रके दो श्लोक उद्धृत कर हम इस अध्यायकी परिसमाप्ति करते हैं। वे दोनों श्लोक यह हैं :—

—काम-विज्ञान—

सूक्ष्मत्वादति लोभाच्च प्रकृत्या ज्ञानतस्तथा ।
कामलक्ष्म तु :दुर्ज्ञानं स्त्रीणां तद्भावितेरपि ॥
कामयन्ते विरज्यन्ते रञ्जयन्ति त्यजन्ति च ।
कर्षयन्त्योऽपि सर्व्वार्था ज्ञायन्ते नैवयोषितः ॥

अर्थात् स्त्रियोंमें जो कामेच्छा या काम-लक्षण दिखाई देते हैं, वे स्वाभाविक हैं या अस्वाभाविक यह कहना बहुत ही कठिन है। क्योंकि काम चित्तका धर्म है, अतीतेन्द्रिय है अतएव अत्यन्त सूक्ष्म है। बाहरी हाव भाव या कार्यों द्वारा उसका ज्ञान नहीं प्राप्त किया जा सकता। इसके अतिरिक्त लुब्धा स्त्रियां (जो किसी पुरुष पर किसी कारणसे अनुरक्त होती हैं और उसे फसाना चाहती हैं) स्वाभाविक कामवासनाके समान लक्षण दिखाती हैं, इसलिये सच और झूठका पहचानना और भी कठिन हो जाता है। वे कभी कृत्रिम उपायों द्वारा पुरुषोंके हृदयमें काम उत्पन्न करती हैं, तो कभी विराग प्रकट करती हैं। कभी कृत्रिम भाव धारण कर पुरुषोंका चित्त रञ्जन करती हैं, तो कभी उन्हें निकाल बाहर करती हैं। इसलिये अपना सर्वस्व अर्पण कर देने पर भी पुरुष उनके मनोभावोंका पता नहीं पा सकते। सज्जनोंको चाहिये कि इन सब बातों पर विचार कर स्वप्नमें भी वेश्याओंके फेरमें न पड़ें।

उपसंहार



काम-शास्त्रके जिन महत्वपूर्ण अङ्गों पर हम प्रकाश डालना चाहते थे, डाल चुके। यह कोई साधारण शास्त्र नहीं है। इसी पर सृष्टिका अस्तित्व निर्भर है। इसमें न जाने कितना विज्ञान और कितनी कलायें निहित हैं। इसीलिये यह विज्ञानियोंके लिये विज्ञान और कलाविदोंके लिये श्रेष्ठ कला है। यह विषय इतना महान और इतना व्यापक है, कि मानव-जीवनके प्रत्येक कार्य इसकी सीमाके अन्दर आ सकते हैं। यदि कोई एक सर्वाङ्गपूर्ण काम-शास्त्र लिखना चाहे, तो वह हमारे जीवनके प्रत्येक कार्यकी उसमें आलोचना कर सकता है। यदि प्रत्येक कार्यकी आलोचना न की जाय और केवल साधारण काम प्रवृत्ति या दाम्पत्य-संयोग हीसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयों पर विचार किया जाय, तब भी बहुत बड़े बड़े ग्रन्थ तैयार हो सकते हैं। महादेवके अनुचर नन्दीने इसी ढंग पर अपने कामसूत्रकी रचना की थी। उनके कामसूत्रमें एक हजार अध्याय थे। औद्दालकि

श्वेतकेतुने उसे संक्षिप्त कर पांच सौ अध्यायका काम-शास्त्र बनाया था। वाभ्रव्यने उसी विषयको १५० अध्यायोंमें अंकित किया था और अन्तमें वात्स्यायन मुनिने उसे ६४ अध्यायमें लाकर छोड़ा था।

कहनेका तात्पर्य यह है, कि काम-शास्त्र बहुत बड़ा शास्त्र है। इसे संपूर्ण रूपसे अंकित करना—इसके प्रत्येक अङ्ग पर भली भांति प्रकाश डालना न तो सहज ही है, न उसके लिये दो चार सौ पृष्ठकी पुस्तिकायें ही पर्याप्त हो सकती हैं। ऐसी अवस्थामें हम यह दावा कैसे कर सकते हैं, कि हमने काम-शास्त्रके समस्त विषयोंको पूर्ण रूपसे अंकित कर दिया है। किन्तु फिर भी हमें यह देख कर हर्ष और सन्तोष होता हैं, कि बाजारमें आजकल काम-शास्त्र या कोकशास्त्रके नामसे जो पुस्तकें बिक रही हैं, उनसे कहीं अधिक और अच्छी सामग्री हम अपने पाठकोंके सम्मुख उपस्थित कर रहे हैं। 'असली' कहलानेवाले कोकशास्त्र मंगाकर जहां पाठकोंको पछताना पड़ता हैं, वहां यदि वे ध्यानसे पढ़ेंगे, तो उन्हें यह पुस्तक बहुत अच्छी जँचेगी। इसमें उन्हें काम शास्त्रके मूल और उपकारी तत्व दिखाई देंगे और उन बातोंका पता चलेगा, जिनसे वास्तवमें दाम्पत्य-जीवन सुखी बनाया जा सकता है।

— काम-विज्ञान —

हम पहले ही कह चुके हैं, कि कामशास्त्र, विज्ञानोंमें विज्ञान और कलाओंमें कला है। इसके साथ हमारे जीवन मरणका सम्बन्ध है। इसी पर हमारे जीवनका सुख दुःख निर्भर है। इसी पर सृष्टिका अस्तित्व अवलम्बित है। ऐसी अवस्थामें हम स्पष्ट कह देना चाहते हैं, कि हम इस शास्त्रको लज्जास्पद, घृणित या अश्लील नहीं मानते। हमारी दृढ़ धारणा है, कि जैसे हमारे जीवन मरण और हमारे सुख दुःखसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्यान्य शास्त्र, विज्ञान या कलाओंकी निःसंकोच भावसे आलोचना की जा सकती है, वैसे ही इस विषयकी भी आलोचना की जा सकती है। भारतके वात्स्यायन प्रभृति प्राचीन पण्डितोंने ऐसा ही किया भी है। कतिपय पाश्चात्य विद्वानोंकी भी ऐसी ही रचनायें देखनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है, परन्तु यह जानते और मानते हुए भी हमने इस पुस्तकमें एक निश्चित सीमाके अन्दर रह कर ही इस विषयका निरूपण किया है। जहां कुछ नहीं हैं, वहां इतना ही बहुत है। इस समय पाठक इतने हीसे सन्तोष करें। भविष्यमें यदि सुविधा और प्रोत्साहन मिला, तो हम उन्हें विशेष रूपसे परितुष्ट करनेकी चेष्टा करेंगे।

—काम-विज्ञान—

जब कोई पण्डित किसी विषय पर प्रकाश डालने बैठता है, तब वह उस विषयकी भली और बुरी सभी बातें बताता जाता है, परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता, कि उन सभी बातोंका प्रयोग होना ही चाहिये। वैद्यक शास्त्रमें अमृत और विष दोनोंका वर्णन मिलेगा, परन्तु किस वस्तु-का कहां प्रयोग होना चाहिये, इसका निर्णय प्रयोग करने-वालेको स्वयं करना होता है। काम शास्त्रके सम्बन्धमें भी यही बात है। इसमें भी सब बातें एक तरफसे बता दी जाती हैं, परन्तु उनका प्रयोग समझ बूझ कर करना होता है। :वात्स्यायन मुनि इस सम्बन्धमें लिखते हैं कि :—

न शास्त्रमस्तीत्येन प्रयोगो हि समीक्ष्यते।
शास्त्रार्थान् व्यापिनो विद्यात् प्रयोगास्त्वेक देशिकान् ॥

अर्थात् शास्त्रमें प्रयोगोंकी बात अंकित होनेके कारण ही प्रयोग न करना चाहिये। शास्त्र तो बहुत व्यापक होते हैं। उनमें सभी बातोंकी मीमांसा रहनी चाहिये। परन्तु प्रयोग व्यापक नहीं होते। उनका आचरण तो समझ बूझ कर उपयुक्त स्थानोंमें ही करना चाहिये।

काम शास्त्रकी रचना मनुष्यको पाशविक वृत्तिमें प्रवृत्त करनेके लिये नहीं की:गयी। यदि कोई इसे पढ़कर वैसी

३२

प्रवृत्तिमें प्रवृत्त हो, तो यही समझना चाहिये, कि वह इस शास्त्रके मर्मको—इसके तात्पर्यको नहीं समझ सका। वात्स्यायन मुनि ज़ोर देकर विश्वासपूर्वक लिखते हैं कि:—

रक्षन् धर्मार्थकामानां स्थितिं स्वां लोकवर्त्तिनीम्।
अस्य शास्त्रस्य तत्वज्ञो भवत्येव जितेन्द्रियः॥

अर्थात् इस शास्त्रके तत्वको जाननेवाले मनुष्य धर्म, अर्थ, काम और लोक मर्यादाकी रक्षा करते हुए जितेन्द्रिय ही होंगे—काम लोलुप नहीं। जो लोग ऐसे न हों, उनके लिये यही समझना चाहिये, कि वे इस शास्त्रके तत्वको नहीं समझ सके। ऐसा कहनेका एक कारण हैं। यह शास्त्र मनुष्योंको सन्मार्ग दिखानेके लिये ही रचा गया है—उन्हें पाशविक वृत्तिके गहरे दलदलमें फँसा कर उनका सर्वनाश करनेके लिये नहीं। इसकी भित्ति ब्रह्मचर्य और आत्म-संयम या इन्द्रिय निग्रह पर निर्भर करती है, पाशविक वृत्ति पर नहीं। जो ब्रह्मचर्य और आत्म-संयमके साथ काम-सेवा करेगा, वही सुखी होगा और वही दाम्पत्य-जीवनका आनन्द अनुभव करेगा। जो कामसेवाको नित्य कर्म बना लेगा, वह अपना स्वास्थ्य नष्ट कर मृत्यु-पथकी ओर अग्रसर होनेके सिवा और क्या कर सकता है?

उसे वह आनन्द और सुख नसीब हो ही नहीं सकता। इसी लिये वात्स्यायन मुनिने लिखा है कि :—

तदेतद् ब्रह्मचर्येण परेण च समाधिना।
विहितं लोकयात्रायै न रागार्थोऽस्य संविधिः॥

अर्थात् यह शास्त्र, ब्रह्मचर्य और परम समाधिको लेकर, लोक यात्राको सुचारु रूपसे चलानेके लिये विहित हुआ है (कामवासनाकी तृप्तिके लिये नहीं) इसलिये केवल रागके निमित्त इसका अनुष्ठान न होना चाहिये।

काम शास्त्र पढ़नेके बाद लोगोंको क्या करना चाहिये यह बतलाते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें लिखा है कि:—

धर्ममर्थञ्च कामञ्च प्रत्ययं लोकमेव च।
पश्यतेतस्य तत्वज्ञो न च रागात् प्रवर्त्तते॥

अर्थात् इस शास्त्रके स्वरूप या तथ्यको जाननेवाले मनुष्यको धर्म, अर्थ, काम और लोकरीति पर ध्यान रख अपना कर्तव्य निर्धारित करना चाहिये, काम वासनाके वशीभूत हो कोई काम न करना चाहिये।

कामशास्त्र एक बहुत ही उपयोगी शास्त्र है। परन्तु इस उपयोगितासे तभी लाभ उठाया जा सकता है, जब इसका उचित रूपसे उपयोग हो। दुरुपयोगसे कोई लाभ नहीं हो सकता। किन्तु यह पाठकोंके अधिकारकी बात है, कि

वे चाहे इसका दुरुपयोग करें या सदुपयोग। अन्तमें हम इतना ही कहेंगे, कि उन्हें इस बातपर सदैव ध्यान रखना चाहिये कि शरीरमें शक्ति, यौवन और सौन्दर्य हुए विना काम-सेवा नहीं हो सकती और शक्ति, यौवन तथा सौन्दर्यको चिरस्थायी रखनेके लिये ब्रह्मचर्य और आत्म-संयम बहुत ही जरूरी हैं। इसी लिये जो वास्तवमें काम-सेवा करना चाहता है, वह ब्रह्मचर्य और आत्म-संयमसे काम लेता है, ताकि वह दीर्घकाल पर्यन्त दाम्पत्य-जीवनका आनन्द उपभोग कर सके और इसीलिये वात्स्यायन मुनिने ज़ोर देकर लिखा है, कि कामशास्त्रके मर्मको समझनेवाला जितेन्द्रिय ही होता है। यह बात उपेक्षा करने योग्य नहीं है। पाठकोंसे हम अनुरोध करते हैं, कि वे इस बातको भली भांति समझें और इसके अनुसार आचरण कर धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके अधिकारी बनें।



दाम्पत्य-ग्रन्थावलीकी अपूर्व पुस्तकें

१ दाम्पत्य-विज्ञान ।

दाम्पत्य विज्ञान जीवनको सुखमय बनानेवाली एक अद्भुत वस्तु है। विवाहित स्त्री पुरुषोंके सम्मिलित जीवनके गुप्त रहस्योंको इसमें अच्छी तरह खोल दिया गया है। किस तरह विवाह कर लेने पर भी मनुष्य ज़िन्दगीका पूरा पूरा मज़ा उठा सकता है, किस तरह स्त्रीके साथ रहने पर भी यौवनको बराबर स्थायी रख सकता है, किस तरह गर्भ होना रोक कर मनुष्य संसारका आनन्द लूट सकता है, स्त्री पुरुषके सम्मिलित जीवनमें कैसे कैसे रहस्य भरे हैं—सभी बातें इसमें दे दी गयी हैं और सभी रहस्य खुलासा समझा दिये गये हैं। सभी जीवनको अपूर्व आनन्द प्राप्त करना सिखानेवाले है। लगातार कन्याएँ, दीन हीन दुर्बल अल्पायु सन्तानका उत्पन्न होना, अति-विहार होनेके कारण इन्द्रियोंका शिथिल हो जाना—प्रभृति बातें रोक कर मनचाही सन्तान उत्पन्न करनेकी विधि इसमें बतायी गयी है। समूची पुस्तक गुप्त भावसे भरी है। कुल चौदह अध्याय हैं। (१) किशोरावस्था और यौवन, (२) ब्रह्मचर्य (३) हस्त मैथुन (४) वीर्य-स्राव (५) विवाह, (६) शयनगृह (७) प्रेमोपचार (८) सहवास किंवा गर्भाधान (९) सहवास करनेवालोंकी

अवस्था (१०) ऋतुकाल (११) सहवासका समय (१२) अति-विहार (१३) वंशवृद्धि (१४) उत्तम सन्तान—प्रत्येक अध्यायमें विवाहकी इच्छा रखनेवाले और विवाहित स्त्री पुरुषोंके जानने योग्य सैकड़ों बातें लिखी हैं। इस पुस्तकको एक बार पढ़नेसे आपका दुःखी जीवन सुखी हो जायगा और इस मृत्युलोकमें रहने पर भी आप स्वर्गका सुख भोगने लगेंगे। मूल्य केवल २) रुपये।

२ जनन-विज्ञान।

चालीस चित्रोंसे सुशोभित यह पुस्तक घर घरकी शोभा बढ़ानेकी एक अद्भुत सामग्री है। आजकल स्त्रियाँ अकालमें ही कालके गालमें चली जाती हैं। वे दुबली पतली, निस्तेज, और अल्पायु होती हैं। हजारों लाखोंका जीवन तो प्रसूति गृह—सौरी घरमें ही नष्ट हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्या स्त्रियोंका जीवन सुधर नहीं सकता है? उन्हें कालके गालसे बचाया नहीं जा सकता है?—अवश्य बचाया जा सकता है और वे ही उपाय इसमें बताये गये हैं। इसमें :विवाहकी आवश्यकता, विवाह सम्बन्ध, सन्तान समस्या, बंध्यत्व और नपुंसकत्व, बन्ध्यत्वसे बचनेका उपाय, नपुंसकता और उसके कारण, मनचाही सन्तान, गर्भ सञ्चार—पुरुषका वीर्य, गर्भ कब रहता है—गर्भ लक्षण, गर्भ-वृद्धि, गर्भपात, गर्भ-रक्षा, गर्भ परीक्षा, गर्भावस्थाके रोग, गर्भिणीका शारीरिक स्वास्थ्य,

गर्भिणीका मानसिक स्वास्थ्य, गर्भकाल, प्रसूति-गृह प्रसव—प्रसवकी भिन्न भिन्न अवस्थाएँ, जोड़-बच्चे, सन्तान पालन, मनुष्यका शैशवकाल प्रभृति :स्त्रियोंसे सम्बन्ध रखने वाले, जननसे सम्बन्ध रखने वाले,—सभी विषय दे दिये गये हैं। ऊपर लिखे प्रत्येक विषयको इस तरहसे समझाया गया है, इतनी बातें एक अध्यायमें बतायी गयी हैं, कि स्त्रियोंके सम्बन्धकी कोई बात बाकी नहीं रह जाती। एक इसी पुस्तकके सहारे आप हजारों स्त्रियोंको कालके गालसे बचा सकते है। वैद्य, डाक्टर, दाई और लेडी डाक्टरोंको पैसे न देकर स्वयं ही उनका काम कर ले सकते हैं। हिन्दी संसारमें इस जोड़की दूसरी पुस्तक नहीं है। हम तो डंकेकी चोट कह सकते हैं, कि यदि आप अपनी गृहस्थीमें सदा आनन्दका फव्वारा छूटता देखना चाहते हों, सदा नीरोग, बलिष्ट, उन्नत सन्तानका खिला हुआ चेहरा देखना चाहते हों, अपनी हृदय:देवीको सदा प्रफुल्ल देखकर मनमें आनन्द भोग करना और गृहस्थीका पूरा पूरा सुख लूटना चाहते हों, तो इसे पढ़िये। ऐसी उत्तम बहुत ही दलदार लगभग ४०० पृष्ठोंकी पुस्तकका मूल्य ३)

३ नारी-विज्ञान।

स्त्रियाँ परमात्माकी सृष्टिका एक अद्भुत जीता जागता और दमकता हुआ रत्न है इसलिये इन्हें लक्ष्मीकी उपाधि है। परन्तु आजकल गृहलक्ष्मियोंकी कैसी दुरवस्था और

दुर्दशा हो रही है, यह बात किसीसे छिपी नहीं है। परमात्माकी इस विचित्र सृष्टिका यह इतना सुन्दर फूल अकालमें ही मुर्झा जाता है। कालके गालमें चला जाता है—सूख जाता है। हमारा यह नारी-विज्ञान यही बताता है, कि यह नारी रत्न, यह स्त्री रूपी आकर्षक पुष्प, कैसे सदा खिला हुआ, आकर्षक, सुन्दर और सुदृढ़ रह स..ता है। इसमें बताया :गया है, कि नारियाँ अपने यौवनको किस उपायसे सदा स्थायी रख सकती हैं—कैसे उनका मुख कमल सदा खिला रह सकता है, कैसे उनका स्वास्थ्य सुन्दर शरीर सुदृढ़, अङ्ग-प्रत्यंग सुडौल और खूबसूरत बने रह सकते हैं। साधारण अवस्थामें, रजोदर्शनके समय, गर्भावस्थामें, प्रसवके समय, बच्चा जब दूध पी रहा हो, उस समय, किन नियमोंका पालन करना चाहिये, जिससे उनकी सुन्दरता, उनका यौवन, उनका आचार व्यवहार और सौष्ठव नष्ट न हो। ये सभी उपाय इतने सरल और सुगम बताये गये हैं, कि थोड़ा सा ध्यान देने पर भी स्त्रियोंका अमोघ कल्याण हो सकता है। स्त्रियोंके बड़े कामकी चीज है मूल्य २) मिलनेका पता—

पाठक एण्ड कम्पनी,

७३ बी, वाराणसी घोष स्ट्रीट, कलकत्ता।



